एमएएचआई –605

मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

चतुर्थ सेमेस्टर

भारत का इतिहास: अठारहवीं सदी ईस्वी से उन्नीसवीं सदी ईस्वी के मध्य तक

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली
3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल
4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा
5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन-

इकाई एकः	18वींशताब्दी का भारत:राजनीतिक परिदृश्य, डॉ. राजेन उपाध्याय, इतिहास विभाग, नामची राजकीय विद्यालय, दक्षिण सिक्किम,
इकाई दो:	अंग्रेजों की भारत विजय: एक विमर्श, डॉ. राजेन उपाध्याय, इतिहास विभाग, नामची राजकीय विद्यालय, दक्षिण सिक्किम,
इकाई तीन:	ब्रिटिश सत्ता का विस्तार: विचारधारा एवं वाणिज्यवाद, डॉ. राजेन उपाध्याय, इतिहास विभाग, नामची राजकीय विद्यालय, दक्षिण सिक्किम
इकाई चार :	ब्रिटिश विस्तार की नीतियां एवं कार्यक्रम, विस्तार के उपकरण: युद्ध एवं कूटनीति, डॉ. रमा जैसवाल, गौतम बुद्ध नगर,
इकाई पांच:	आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिस्पर्धा: कर्नाटक युद्ध, प्रो. एस.बी. सिंह, प्राचार्य, सर्वोदय विद्यापीठ, पी.जी. कालेज
इकाई छह:	बंगाल में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना(प्लासी से 1772 तक), प्रो. एस.बी. सिंह, प्राचार्य, सर्वोदय विद्यापीठ, पी.जी. कालेज
इकाई सात:	आंग्ल-मराठा संघर्ष, डॉ. मिथिलेश मिश्रा, भारती कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
इकाई आठ:	लार्ड हेस्टिंग्स और ब्रिटिश सर्वोच्चता, डॉ. मिथिलेश मिश्रा, भारती कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
इकाई नौ:	विलियम बैंटिंक, डॉ. मिथिलेश मिश्रा, भारती कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

आई.एस.बी.एन.	:
कॉपीराइट	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष	:
Published by	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139
Printed at	:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

ब्लॉक एक

इकाई एकः 18वीं सदीं का भारत : राजनैतिक परिदृश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 18वीं सदी पर परिचर्चा

1.4 मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

1.4.1 मुगल वंश के पतन में औरंगजेब की भूमिका

1.4.2 औरंगजेब के कमजोर उत्तराधिकारी

1.4.3 दरबारियों में गुटबंदी

1.4.4 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

1.4.5 मराठा

1.4.5 अवध

1.4.7 सिख

1.4.8 रूहेला अथवा रोहिल्ला

1.4.9 बुन्देला

1.4.10 जाट

1.4.11 हैदराबाद और कर्नाटक

1.4.12 मैसूर

1.4.13 बंगाल

1.5 अभ्यास प्रश्न

1.6 संदर्भ ग्रंथ

1.1 प्रस्तावना

औरंगजेब की मृत्यु के बाद, विशाल मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया और कुछ ही दशकों में यह साम्राज्य दिल्ली के कुछ भू–भागों तक सिमट कर रह गया। जहाँ तक राजनैतिक परिस्थितियों का सम्बन्ध है, औरंगजेब की मौत के बाद लगभग अगले 150 वर्षों तक भारत में असुरक्षा और आशंका का माहौल बना रहा। मुगल घराने में सत्ता के वर्चस्व के लिए संघर्ष और उत्तरवर्ती सम्राटों की एय्याश प्रवृत्ति प्रसिद्ध मुगल युग के विखण्डन का कारण बनी।

साथ ही, मराठा शक्ति के अभ्युदय और दक्षिण में इसके राज्य संघ, जो हिन्दू पद पादशाही की स्थापना के लिए कटिबद्ध थे, भारतीय एकता और एकनिष्ठा के लिए एक और आघात साबित हुए। शयद इन्हीं घटनाक्रमों के मद्दे नजर, भारत के इतिहास में 18वीं सदी का एक विशेष स्थान है। विभिन्न इतिहासकारों के बीच यह सदी विशेष चर्चा का विषय भी रही है। भारत की 18वीं सदी के मुद्दे पर नजर डालने के अनेक कारण है। लेकिन, जहाँ तक राजनैतिक परिदृश्य का सम्बन्ध है, इस सदी ने एक विशाल साम्राज्य को विलुप्त होते और इस पर दूसरों का कब्जा होते देखा था। शुरूआत में, स्थानीय विरोधियों ने और बाद में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इस साम्राज्य को हथिया लिया था। समसामयिक इतिहासकारों ने इन घटनाक्रमों को अलग–अलग तरीके से देखा और इनका आकलन किया। इस यूनिट में 18वीं सदी के भारत में राजनीतिक परिदृश्य को केन्द्र बिन्दु बनाया गया है। इसमें 18वीं सदी के दौरान अन्य प्रान्तीय शक्तियों के उदय और मुगल साम्राज्य के विखण्डन को शामिल किया गया है। इस यूनिट में छात्रों को मुगल भारत के विखरने और इस पूरे उप–महाद्वीप में प्रान्तीय शक्तियों के अभ्युदय तथा उत्थान के लिए जिम्मेदार महत्वपूर्ण पहलुओं को देखने और समझने में सहायता मिलेगी।

1.2 उद्देश्य

इस यूनिट के महत्वपूर्ण उद्देश्य इस प्रकार हैं :

- 18वीं सदी पर परिचर्चा को समझना।
- मुगल साम्राज्य के पतन के लए जिम्मेदार विभिन्न कारकों को समझना।
- मुगल दरबार की राजनीति और साम्राज्य विखण्डन पर इसके प्रभाव का जायजा लेना।
- मुगलों और प्रान्तीय क्षत्रपों के बीच राजनीतिक सम्बन्धों का पता लगाना।
- मुगल साम्राज्य के विखण्डन में प्रान्तीय राजवंशों की महती भूमिका को समझना।
- अंग्रजों के उदय से पहले भारत की राजनीतिक स्थिति को समझना।

1.3 18वीं सदी पर परिचर्चा

18वीं सदी पर ज्यादातर मुगल साम्राज्य के संदर्भ में ही परिचर्चा हुई है। लेकिन, भारतीय इतिहास से जुड़े ताजा लेखों में 18वीं सदी को एक ऐसे युग के रूप में दर्शाया गया है, जिसमें कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ उभरी जो पूरी तरह से मुगल साम्राज्य के वश में नहीं थी। इसलिए, 18वीं सदी को ऐसे रूप में समझने का प्रयास किया गया है, जिसमें ऐसी कई सकारात्मक विशेषताएं मौजूद थी, जिनका लक्ष्य इस सदी को ''निराशाजनक सदी'' बताने वाली पूर्वधारणा और प्रयत्न को ध्वस्त करना था। यह सर्वविदित है कि यह चरण मध्यकाल और आधुनिक युग

के बीच का संक्रमण काल था और साथ ही यह ऐसा समय भी था जब भारतीय प्रशासन विदेशी हाथों में जा रहा था। सर जदुनाथ सरकार की सुप्रसिद्ध कृतियों ''हिस्ट्री ऑफ बंगाल वाल्यूम–**II**'' और ''दी फॉल ऑफ मुगल एम्पायर वाल्यूम–**IV**'' में 18वीं सदी के बारे में सबसे पहली व्याख्या मिलती है। इनमें इस अवधि को ब्रिटिश पूर्वकाल और ब्रिटिश काल के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

कुछ इतिहास लेखक 18वीं सदी में उत्तरवर्ती राज्यों के उदय का हवाला देते हैं और मानते है कि मुगल साम्राज्य के पतन की रूपरेखा के अन्तर्गत इन घटनाओं का परीक्षण किया जाना चाहिए। हरमन गोएट्ज ने 18वीं सदी में ''सांस्कृतिक और बौद्धिक घटनाक्रम'' पर जोर दिया है जो ''समग्र अपकर्ष'' के सिद्धान्त से बिलकुल अलग प्रतीत होता है। तथापि, हाल ही में इतिहासकारों ने उपरोक्त विचारों से अलग हटकर, उत्तरवर्ती राज्यों और नए उभरते राज्यों को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया और इन्हें मुगलों की शाही व्यवस्था से ब्रिटिश व्यवस्था में अन्तरण की जमीन तैयार करने वाले कारक के रूप में जाँचने का प्रयास किया है। 18वीं शताब्दी की राजनीति को मुगलकालीन राजनीतिक प्रक्रिया और साथ ही नई राजनीतिक परिस्थितियों से तालमेल बैठाने के लिए शुरू किए गए बदलावों के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए। इस प्रकार, यह सदी मुगलों की शाही व्यवस्था के ब्रिटिश उपनिवेशवाद में रूपान्तरण के साथ–साथ घरेलू शक्तियों की ऐसी ही पूर्ववत सामाजार्थिक गतिविधियों को भी दर्शाती है। इस सदीं में यह भी दिखाई देता है कि घरेलू शक्तियों ने अपने राजनीतिक निष्ठा का मुगलों से नाता तोड़ लिया था और अन्य बाह्य शक्तियों से हाथ मिला लिया था। ध्वस्त हो चुके मुगल साम्राज्य के अवशेष पर, लगभग स्वतंत्र हो चुके राज्यों ने, जमींदारों की मदद से राजस्व उगाहने का अपना पुराना काम जारी रखा, लेकिन इस बार, अपने दरबारियों और सेनाओं को पोषित करने के लिए इसका उपयोग किया। इस सदी में उत्तरवर्ती राज्यों से लेकर जमींदारों तक अनेक राजनीतिक स्वरूप उभरे जिन्होंने ब्रिटिश शासनकाल में रियासतों का रूप लिया।

अभ्यास :

1. आप 18वीं सदी की इस परिचर्चा से क्या समझे ?
2. क्या केवल मुगलकाल के पतन के नजरिये से 18वीं सदी पर परिचर्चा का आकलन करना उचित होगा ?

1.6 मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

1.4.1 मुगल वंश के पतन में औरंगजेब की भूमिका

इतिहास में भेद–भाव के लिए कोई जगह नहीं है। इसका सीधा–सादा फैसला यही है कि औरंगजेब के प्रपितामह अकबर ने जो विशाल साम्राज्य स्थापित किया था, उसे उसने व्यावहारिक तौर पर लगभग विखण्डित कर दिया था। साम्राज्य का अपकर्ष उसके शासनकाल

से ही शुरू हो गया था और उसकी अदूरदर्शी नीतियों ने मुगल शासन की नींव कमजोर कर दी थी। अपनी धर्मान्ध नीतियों के चलते उसने न केवल कत्लेआम मचाया बल्कि अपनी हिन्दू प्रजा पर अनुदार नीतियाँ लागू की और इन्हें उचित ठहराने के लिए नए–नए तर्क भी दिए। इसके परिणामस्वरूप, आजीवन भारत पर शासन करने के उसके प्रयास का अन्त अव्यवस्था और क्षोभ के रूप में हुआ।

राजधानी में आए दिन औरंगजेब की गैर–मौजूदगी से उन अवसरवादियों को पनपने का मौका मिला जो मुगलों को सत्ता से हटाने के लिए कटिबद्ध थे। इस आखिरी कुशल मुगल बादशाह को अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा और इन विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य की नींव हिला दी थी। आगरा में जाट विद्रोह पर उतारू थे तो दक्षिण में छत्रपति शिवाजी के नेतृत्व में स्वराज की कल्पना को बढ़ावा मिल रहा था। मराठों, जाटों और राजपूतों के प्रति औरंगजेब के सख्त जमीनी रवैये की वजह से इन विद्रोहों को बल मिला। औरंगजेब ने इन्हें क्षेत्रीय स्वायत्तता देने से इन्कार कर दिया था। औरंगजेब के सत्तावादी रवैये और पूरी तरह केन्द्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था के खिलाफ बुन्देलों और सतनामियों के विद्रोह को दबाना भी कठिन हो रहा था।

इसमें कोई शक नहीं है कि औरंगजेब एक महत्वांकक्षी शासक था और वह अपने साम्राज्य की भौगोलिक सीमाएं बढ़ाने को आतुर था। हालांकि इसके लिए उसे जन–धन की भारी हानि उठानी पड़ी थी। वह अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अच्छी और भरोसेमन्द संधिया करने में पूरी तरह असफल रहा था तथा उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। आमतौर पर बीजापुर और गोलकुन्डा पर औरंगजेब की विजय को सुन्नियों पर विजय के रूप में देखा जाता है, लेकिन अपने इस कृत्य से उसने एक ऐसी मजबूत बाधा को हटा दिया था जो मराठों की बढ़ती शक्ति को रोक सकती थी। अपनी शंकालु प्रवृत्ति के कारण वह शासन के सारे अधिकारों को अपने हाथ में लेकर निरंकुश बन गया था और इस वजह से कुलीन तथा उच्चवर्ग के अधिकारी उससे काफी नाराज थे। औरंगजेब की निरंकुशता से सही मायनों में कुलीनवश ही सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ था क्योंकि उनका दर्जा और अधिकार सभी लगभग छीन लिए गए थे।

औरंगजेब को पहले से ही अंदेशा था कि सत्ता के लिए उसके पुत्रों में खूनी संघर्ष होगा और इससे टालने के लिए उसने साम्राज्य को उनमें चार बराबर भागों में बांट दिया था। लेकिन उसकी मृत्यु से पहले से गृहयुद्ध शुरू हो गया और अन्ततः बहादुर शाह प्रथम इसमें विजयी हुआ तथा मुगल उत्तराधिकारियों में सत्ता के लिए गृहयुद्ध अनिवार्य सा हो गया था। दुश्मनी, ईष्या तथा शहजादों के बीच प्रतिद्वन्द्विता ने शानदार मुगलकालीन भारत के विखण्डन और प्रान्तीय शक्तियों के उभरने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1.4.2 औरंगजेब के कमजोर उत्तराधिकारी

मुगलों की शासन व्यवस्था निरंकुश होने की वजह से यह काफी कुछ बादशाह के व्यक्तित्व पर निर्भर थी। इसलिए, बादशाहों की कमजोरी उनके प्रशासन को प्रभावित करने लगी थी। औरंगजेब के बाद के सभी बादशाह कमजोर थे, इसलिए वे बाहरी और अन्दरूनी चुनौतियों का सामना करने में अक्षम थे। बहादुर शाह प्रथम (1702–1712) अत्यन्त वृद्ध था और साम्राज्य का गौरव बनाये रखने के काबिल नहीं था। वह सभी पक्षों को खुश रखने के लिए मुक्तहस्त से अनुदान, उपाधियाँ और ईनाम बाँटता था। उसके इस रवैये से वह शाह–ए–बेखबर जैसे उपनाम से जाना जाता था। उसके बाद जहाँदर शाह (1712–13) गद्दी पर बैठा, यह निहायत ही मूर्ख और बेतुके काम करने वाला बादशाह था। फारूखशियार अत्यन्त कायर था जबकि मुहम्मद शाह अपना ज्यादातर समय पशुओं की लड़ाई देखने में गुजारता था। शराब और औरत का शैकीन होने के कारण उसे ''रंगीला'' नाम दिया गया था। अहमद शाह एय्याशी के मामले में इससे भी दो कदम आगे था उसने अपने हरम (बादशाह की रखैलों/बीबीयों के रहने के लिए अलग से जगह) में कई–कई हफ्ते या महीने गुजार देता था। प्रशासनिक मामलों में तो उसके फैसले और भी ज्यादा मूर्खतापूर्ण होते थे। इससे साफ पता चलता है कि औरंगजेब के उत्तराधिकारी कमजोर थे और विशाल मुगल साम्रज्य को सभालना उनके वश के बाहर था।

1.4.3 दरबारियों में गुटबंदी

औरंगजेब के शासन के अन्तिम वर्षों में उसके उच्च दरबारी कुलीन अलग–अलग गुटों में बंटने लगे थे और सत्ता पर दबाव डालने लगे थे। हालांकि ये गुट अपने कुल या परिवारिक रिश्तों के आधार पर बने थे लेकिन व्यक्तिगत हित या सरोकार सर्वोपरि थे। इन गुटों ने देश में निरन्तर अशान्ति बनाए रखी। इन गुटों में एक प्रमुख गुट तूरानियों अथवा मध्य एशियाई कुलीनों का था, मुहम्मद शाह के शासनकाल में आसफ ज़ाह, निज़ाम–उल–मुल्क, कमरूद्दीन और ज़कारिया खान इस तूरानी गुट के प्रमुख नेता थे। जबकि परिशयाई गुट के प्रमुख नेता अमीर खान, इशाक खान और सादत खान थे। इन गुटों ने अपने–अपने लोगों को शामिल किया था। जिनमें ज्यादातर मध्य एशिया या परशिया से थे। मुगल या विदेशी गुटों के रूप में कहे जाने वाले इन दोनों गुटों ने हिन्दुस्तानी गुटों, उस काल के दौरान जिनके नेता सईद अब्दुल्ला खान और सैय्यद हुसैन अली जो सैय्यद बन्धु के रूप में प्रसिद्ध थे, के खिलाफ मोर्चा खोल रखा था। सैयद बन्धुओं को हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त था। प्रत्येक गुट अपने आप को बादशाह का हितैषी बताता था और एक दूसरे के खिलाफ बादशाह के कान भरता था। देश में शान्ति व्यवस्था को भंग करने वाले इन गुटों में संघर्ष होता रहा और प्रशासन की अनदेखी होती रही। विदेशी आक्रमणों के समय भी ये एकजुट नहीं हो सके, यहाँ तक कि कई बार इन्होंने विदेशी हमलावरों

के साथ षडयंत्र भी रचा। निज़ाम–उल–मुल्क (किलिच खान) और बुरहान–उल–मुल्क (सादत खान) व्यक्तिगत हितों के चलते नादिर शाह के साथ षंड़यन्त्र में भी शामिल हुए।

अभ्यास (संक्षिप्त टिप्पणी)

1. मुगल साम्राज्य के पतन के क्या प्रमुख कारण थे ?
2. मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब को जिम्मेदार ठहराना कहाँ तक उचित है ?
3. भारत में मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब के उत्तराधिकारियों की भूमिका पर प्रकाश डालें।

1.4.4 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

18वीं सदी में नए–नए राजनीतिक महत्त्वाकांक्षियों को क्षेत्र, धर्म और धर्मान्धता के आधार पर छोटी–छोटी स्थानीय रियासतें गढ़ने या मौका मिला। 18वीं सदी ने इन्हें संसाधनों को फिर से जुटाने और सैन्य विस्तार के व्यापक जरिए उपलब्ध कराए। वही दूसरी तरफ, अंग्रेजी की ईस्ट इंडिया कम्पनी जैसे विदेशी व्यापारियों, जो विस्तार तथा अपनी धन–दौलत बढ़ाने के किसी भी अवसर को छोड़ना नहीं चाहते थे, इस सदी ने आधिपत्य और दमन के एक बड़ा भू–भाग उपलब्ध कराया।

सी.ए. बायली और आन्द्रे विंक जैसे इतिहासकारों का तर्क है कि अस्त होते मुगल साम्राज्य में नए राज्यों का उदय कोई नई घटना नहीं थी, यह तो विस्तार और विकास की पहले से मौजूद प्रक्रिया की पूर्णता को दर्शा रहा था और ढुलभुल मुगल व्यवस्था इसे रोक नहीं सकती थी। ऐसे कई उदाहरण है, जहाँ आर्थिक कायापलट का लाभ उठाने वाले खुद शासक बन बैठे थे और एक दूसरे को जीतने और दमन की रस्साकसी में उलझे हुए थे। स्थानीय भावना से ओत–प्रोत इन शासकों ने प्रशासनिक शक्तियाँ अपने हाथ में ली और सैन्य विस्तार की नीतियों का अनुसरण किया। इन नीतियों के तात्कालिक परिणामस्वरूप राजस्व वसूलने और राजस्व व्यवस्था के नए–नए तरीके लागू किए गए। डेविड वाशब्रुक ने इन्हें ''सैन्य वित्तवाद'' का नाम दिया है।

इनमें से कुछ राज्यों जैसे कि बंगाल, अवध (औध) और हैदराबाद को ''उत्तराधिकार राज्य'' (सक्सेशन स्टेट्स) कहा जा सकता है। मुगलों का केन्द्रीय प्रशासन कमजोर हो जाने के फलस्वरूप मुगल प्रान्तों के गवर्नरों ने स्वयं को स्वायत्तशासी घोषित कर दिया था और इस प्रकार इन राज्यों का उदय हुआ। मुगल सत्ता के खिलाफ स्थानीय क्षत्रपों, जमीदारों और कृषकों की बगावत ने मराठा, अफगान, जाट और पंजाब राज्यों को जन्म दिया। इन दोनों प्रकार के राज्यों या क्षेत्रों में राजनीति का स्वरूप कुछ सीमा तक अलग–अलग था और साथ ही स्थानीय परिस्थितियों की वजह से इन सभी में परस्पर विवाद भी थे। इसके बावजूद, इन राज्यों ने प्रशासन के अनेक क्षेत्रों में मुगल संस्थाओं और व्यवस्थाओं को बनाए रखा। उत्तराधिकार राज्यों

और बागी राज्यों के अलावा, राजपूताना, मैसूर और त्रावणकोर जैसे कुछ अन्य राज्य भी थे जिन्हें विगत में काफी स्वायत्तता प्राप्त थी और 18वीं सदी में ये राज्य पूरी तरह से स्वतंत्र हो गए थे।

1.4.5 मराठा

औरंगजेब की मृत्यु के बाद, इसके दूसरे पुत्र और राजगद्दी के दावेदार आज़म ने शिवाजी के प्रपौत्र और सम्भाजी के पुत्र साहू को कैद से आजाद कर दिया। 1689 में सम्भाजी को फांसी द्वारा मौत के बाद साह को गिरफ्तार करके मुगल दरबार में हाजिर किया गया था। जनवरी 1708 में सतारा पहुँचने पर साहू जी का राज्यभिषेक किया गया। सम्भाजी की मृत्यु के बाद मराठों का संचालन सम्भाजी के सौतेले भाई राजाराम ने सम्भाला और वे आखिरी सांस तक मुगलों के खिलाफ संघर्ष करते रहे। उनकी विधवा ताराबाई जो एक सशक्त और दबंग महिला थी, ने अपने पुत्र की तरफ से स्वयं को प्रतिशासक घोषित कर दिया। ऐसे समय में साहू के आगमन से मराठा क्षत्रप दुविधा में पड़ गए जिसकी वजह से गृहयुद्ध की शुरूआत हुई। एक शीर्ष मराठा अधिकारी, बालाजी विश्वनाथ की सहायता और सलाह से साहू विजयी हुए। बालाजी विश्वनाथ की अमूल्य सेवाओं का सम्मान करते हुए साहू ने 1713 में उसे पेशवा यानि प्रधानमंत्री का पद दिया। अब से छत्रपति केवल मराठों का नाममात्र का शीर्ष पद रह गया। बाला जी विश्वनाथ ने अपनी योग्यता और कुशल प्रशासन क्षमता से पेशवाई को वंशानुगत बना दिया। सैय्यद बंधुओं के साथ एक समझौते के जरिए साहू को शिवाजी के गृह राज्य के राजा के रूप में मान्यता मिल गई और उन्हें दक्षिण में मुगलों के छः सूबों से चौथ तथा सरदेशमुखी वसूलने की अनुमति भी मिल गई।

उसके पुत्र और पेशवा पद के उत्तराधिकारी, बाजीराव ने मराठा शक्ति को चरम पर पहुँचा दिया था। सभी के साझा दुश्मन मुगलों के खिलाफ हिन्दु क्षत्रपों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उसने हिन्दु पद पादशाही की विचारधार को प्रचारित और लोकप्रिय किया। शिवाजी के बाद बाजीराव को गुरिल्ला युद्ध कला का महान महारथी माना जाता है। बाजीराव जिन्हें नाना साहिब नाम से प्रसिद्धि मिली थी ने, मराठा साम्राज्य का कटक से अटक तक विस्तार कर दिया था और 1760 में दिल्ली पर कब्जा कर लिया था। लेकिन मराठों की दिल्ली पर विजय ज्यादा समय तक नहीं टिकी और अफगानी हमलावार अहमद शाह अब्दाली के हाथों 1761 में पानीपत के युद्ध में उन्हें बुरी तरह हार का सामना करना पड़ा। अपनी हार के बावजूद उत्तरवत्ती पेशवाओं के नेतृत्व में मराठा अपने साम्राज्य के विस्तार और वृद्धि की नीति में अब भी काफी सक्रिय थे। पेशवा माधव राव के शासन में, महाद जी सिंधिया के नेतृत्व में मराठों ने 1771 में दिल्ली पर फिर कब्जा कर लिया। अंग्रेज–मराठा युद्ध (1776–82) में मराठाओं की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। इस युद्ध की परिणति सलबल की संधि (1782) के रूप में हुई। पेशवा बाजीराव

द्वितीय के पेशवाई (1798–1818) के दौरान, बसाइन की एक सहायक संधि (1802) पर हस्ताक्षर हुए और इसकी वजह से अंग्रेज–मराठों का दूसरा युद्ध (1803–05) हुआ। अंग्रेज और मराठों के तीसरे युद्ध (1817–18) ने मराठा शक्ति का अन्त कर दिया। पेशवा का पद समाप्त कर दिया गया और अंग्रेजों ने बाजीराव द्वितीय को थोड़ी से पेंशन मंजूर करके कानपुर के नजदीक बिठूर भेज दिया। मराठों के गौरव को संतुष्ट करने के लिए सतारा के राज्य पर नाममात्र के राजा प्रताप सिंह को गद्दी पर बैठा दिया गया।

1.4.5 अवध

मुगलों के शासनकाल में अवध सूबे में, मुख्य अवध, बनारस, इलाहाबाद के आस–पास के कुछ भाग, अवध के पश्चिम के कुछ भू–भाग और कानपुर शामिल था। 1724 में अवध के सूबेदार सादतखान की मृत्यु के बाद उसके भतीजे सफदर जंग ने इस सूबे का शासन सम्भाला। प्रशासन का काम अपने हाथ में लेने के बाद इस नए सूबेदार ने स्वतंत्ररूप से शासन करना शुरू कर दिया। 1748 में सफदर जंग को दिल्ली के बादशाह का बजीर नियुक्त किया गया लेकिन जावेद खान ने, जो दिल्ली की गद्दी के पीछे असली ताकत था, इसका विरोध किया। अफगानों ने भी उसका विरोध किया और उसे 1752 में शन्ति संधि के लिए मजबूर किया। लेकिन जल्दी ही उसने जावेद खान की हत्या करवा दी और राज्य के पूरे अधिकार अपने हाथ में लेने का प्रयास किया। अपनी अति महत्वाकांक्षा के कारण दिल्ली दरबार के कई कुलीन और बादशाह उससे नाराज हो गए। इसके बाद चले गृहयुद्ध में सफदर जंग की बुरी हार हुई और मजबूर होकर वह 1753 में अवध चला गया जहाँ जल्दी ही उसकी मौत हो गई।

उसके पुत्र सुजा–उद–दौला ने अवध के सूबेदार का पद सम्भाला। 18वीं सदी के मध्यकाल में भारतीय इतिहास में तेजी से बदलाव हुए और अवध के सूबेदार सुजा–उद–दौला ने इनमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दिल्ली के बज़ीर इमाद–उद–मुल्फ के साथ उसके रिश्ते बेहद खराब थे। इसके चलते इन दोनों के बीच नित नए षड़यंत्र रचे जाते थे। इमाद–उद–मुल्क ने बादशाह आलमगीर द्वितीय से सारी शक्तियाँ अपने हाथ में ले ली थीं और अली गौहर (बाद में शाह आलम द्वितीय) को अवध में शरण लेने के लिए मजबूर कर दिया था। बादशाह की मृत्यु के बाद अली गौहर ने अपने आप को बादशाह घोषित कर दिया और सुजा–उद–दौला को अपना बज़ीर घोषित किया।

1763 में, बंगाल के नवाब मीर कासिम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी से पराजय के बाद सुजा–उद–दौला से मुलाकात की और मदद मांगी। सुजा–उद–दौला और शाह आलम द्वितीय दोनों अंग्रेजों के खिलाफ मीर कासिम का साथ देने के लिए राजी हो गए। लेकिन बक्सर के युद्ध (1764) में अंग्रेजों ने इस संयुक्त सेना को हरा दिया। शाह आलम द्वितीय अंग्रेजों का पेंशनभोगी बन गया, सुजा–उद–दौला का सूबा अंग्रेजों के कब्जे में आ गया और मीर कासिम

को जान बचाकर भागना पड़ा। इस प्रकार अवध के सूबेदार के स्वतंत्र शासन को इस युद्ध से गहरा आघात पहुँचा।

1.4.7 सिख

अफगानों द्वारा 1708 में गुरू गोविन्द सिंह की हत्या के बाद, सिखों को बन्दा के रूप में एक नया नेता मिला और सिखों ने मुगलों के खिलाफ आजादी की लड़ाई छेड़ दी। उसने सरहिन्द में मुगलों की सेना को हराकर इस पर कब्जा कर लिया। बन्दा ने बड़ सिंह को सरहिन्द का गवर्नर तैनात किया और साथ ही सतलुज और यमुना के बीच के पूरे भू–भाग पर कब्जा कर लिया तथा सच्चा पादशाह यानि सच्चा शासक उपधि धारण की। इन घटनाक्रमों से चौकन्ना होकर, मुगल बादशाह बहादुर शाह ने बंदा के खिलाफ चढ़ाई कर दी और लोहगढ़ का घेरा डाल दिया लेकिन जल्दी ही 1712 में उसकी मृत्यु हो गई। बंदा ने बिना समय गंवाए लोहगढ़ पर फिर से कब्जा कर लिया और एक दूसरा किला गुरूदासपुर में बनवाया। बादशाह फारूखसियार ने काश्मीर के गवर्नर समद खान को सिखों के खिलाफ चढ़ाई का आदेश दिया। बन्दा की हार हुई और लगातार उसका पीछा किया गया। मजबूर होकर 17 दिसम्बर, 1715 को उसने मुगलों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और अन्त में उसे सूली पर लटका दिया गया। दिग्भ्रमित सिखों को कपूर सिंह के रूप में एक और नेतृत्व मिला और वे मुगलों को फिर से परेशान करने लगे। नादिर शाह के आक्रमण (1739) ने पंजाब में मुगलों के शासन को कमजोर का दिया था। इससे सिखों को अपने वित्तीय संसाधन बढ़ाने और सेना का विस्तार करने में मदद मिली। पहली लूट के बाद भी अब्दाली के नेतृत्व में अफगानों के आक्रमण जारी रहे। उसने चौथी बार 1756 में भारत पर आक्रमण किया, मुगल बादशाह इतना भयभीत हो गया था कि उसने पंजाब और काश्मीर, तत्ता और सरहिन्द अब्दाली को सौंप दिये। अब्दाली ने अपने पुत्र तिमूर शाह को भारतीय भू–भाग का गर्वनर और जहान खान को उसका वजीर नियुक्त किया। सिखों की हत्या के चलते सिखों ने बगावत कर दी और मराठों ने उनका साथ दिया। मराठों और सिखों की संयुक्त सेना ने अब्दाली के कब्जे वाले भू–भागों पर आक्रमण कर कई क्षेत्रों से अफगानों को खदेड़ दिया। उन्होंने सरहिन्द को लूट लिया और आक्रमणकर्ताओं को पूरी तरह कुचल दिया। भारत में अपना वर्चस्व कायम करने के लिए अब्दाली को अपने पांचवे आक्रमण में 1761 में प्लासी में मराठों से युद्ध करना पड़ा था। मराठों की पराजय के बाद अब्दाली अफगानिस्तान के लिए वापस लौट पड़ा लेकिन रास्ते में सिखों ने उसे बहुत परेशान किया। पंजाब की अशान्त परिस्थितियों से सिखों को आजादी का एक बहुत अच्छा रास्ता मिल गया। वे 1764 में अमृतसर में संगठित हुए और सिख संप्रभु राज्य की पहली घोषणा की तथा अपने सिक्के ढलवाए जिन पर देग तेग फतह अंकित था। अब्दाली के अन्तिम रूप से भारत से विदा हो जाने के बाद सिखों ने 1767 और 1773 के बीच लाहौर को कब्जे में ले लिया। अब

सिखों का अधिकार क्षेत्र पूर्व में सहारनपुर से लेकर पश्चिम में अटक तक और दक्षिण में मुल्तान से लेकर उत्तर में कांगड़ा और जमुना तक फैल गया था। बाद में, लॉर्ड डलहौजी ने 29 मार्च, 1849 को सिख राज्य छीन कर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

1.4.8 रूहेला अथवा रोहिल्ला

सोलहवीं शताब्दी में, मुगल अफगानों को हरा कर हिन्दुस्तान के मालिक बन गए थे और इन्होंने अफगानों को पूरी तरह से सत्ता से हटाकर इनका उन्मूलन कर दिया था। सत्ता से बाहर हो जाने के बावजूद, इलाहाबाद, दरभंगा, ओडिशा और सिलहट में अफगानों की कुछ बस्तियाँ थीं। ऐसी ही एक अफगान बस्ती रोहिलखण्ड अथवा रूहेलखण्ड में भी थी, जिसे दाऊद नाम एक अफगानी सैनिक ने बसाया था। दाऊद और इसके अनुयायी स्थानीय जमींदारों के भाड़े के सैनिक का काम करते थे और बाद में ये लोग उस क्षेत्र में शाही प्रशासक के लिए भी यही काम करने लगे थे। दाऊद के उत्तराधिकारी, अली मोहम्मद खान ने अपनी जागीर का विस्तार करने की एक महत्वाकांक्षी योजना को अमल में लाना शुरू कर दिया। धीरे–धीरे उसने स्थानीय जमींदारों और जागीरदारों का उन्मूलन करके बरेली जिले में एक विशाल जागीर खड़ी कर ली। 1727 में मोहम्मद सालिह की जमीन हथिया ली। यह जमीन मोहम्मद सालिह को शाही दरबार ने दी थी। मोहम्मद खान ने स्वयं को इस विशाल जागीर का नवाब घोषित कर दिया। शाही बज़ीर कमर–उद–दीन खान के दखल पर वह मोहम्मद सालिह के स्थान पर मुगल बादशाह के लिए राजस्व वसूली का काम करने के लिए राजी हो गया। अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के दौरान वह मुगलों की जमीन कब्जाने लगा और उसे राजा हरनन्द अरोड़ा की सेनाओं का सामना करना पड़ा। राजा हरनन्द अरोड़ा मुरादाबाद का गवर्नर था। एक निर्णायक लड़ाई में, अली मोहम्मद खान ने राजा हरनन्द अरोड़ा को हराकर उसे मौत के घाट उतार दिया। युद्ध से इस रोहिल्ला सरदार की ताकत और प्रतिष्ठा शिखर पर पहुँच गई और हजारों अफगान उसके नेतृत्व तले आ गए। अली मोहम्मद रोहिल्ला अब तक बरेली और बदांयू के कुछ परगनों को जीत चुका था और साथ ही पीलीभीत तथा कुमाऊँ राज्य के कुछ हिस्सों पर भी कब्जा कर चुका था। 1748 तक उसने पूरे बिजनौर पर आधिपत्य जमा लिया। मुगलों के साथ एक युद्ध में उसने मुगल बादशाह को शान्ति संधि के लिए मजबूर कर दिया। अली मोहम्मद को चार हजारी मनसबदार के तौर पर सरहिन्द का फौजदार नियुक्त किया गया। सितम्बर 1748 में अली मोहम्मद की मृत्यु के बाद अन्तर–कलह और विवाद शुरू हो गए, मुगल गवर्नर सफदर जंग ने इसका पूरा फायदा उठाया। उसने बंगश सरदार कैम खान को अफगानों को रोहेलखण्ड से खदड़ने के लिए भड़काया। अपने इस प्रयास में कैम खान हार गया और युद्ध में मारा गया तथा गंगा के पूर्वी किनारे पर बसी उसकी जागीर पर रोहिल्लों का कब्जा हो गया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई (1761) तक यथास्थिति बनी रहीं। रोहिल्ला और बंगश अफगानों ने अफगानी हमलावर अहमद शाह अब्दाली का साथ दिया और फलस्वरूप कुछ जागीरें हासिल कीं। 1761–1768 तक हाफिज रहमत खान की सरदारी में शान्तिपूर्वक रहे। हाफिज रहमत खान एक महान योद्धा और बुद्धिमान शासक था। इन घटनाक्रमों में मराठाओं और अवध के नवाब के सामने आने पर हालात बिगड़ने लगे। इसी बीच, एक तीसरा पक्ष भी मैदान में उतरा जिसका नाम ईस्ट इंडिया कम्पनी था। अवध का नवाब अंग्रेजों की मदद से रोहिल्लों के खिलाफ युद्ध में शामिल हुआ। रोहिल्लों की पराजय के बाद, अवध के नवाब ने रोहिल्लों की लगभग सारी जमीन छीन ली और अली मोहम्मद खान रोहिल्ला के पुत्र फैजल खान के लिए रामपुर में रोहिलखण्ड का एक छोटा सा भू–भाग छोड़ दिया।

1.4.9 बुन्देला

बुन्देला राज्य स्थापित करने का श्रेय छत्रसाल बुन्देला को जाता है। छत्रसाल ने औरंगजेब के आखिरी दिनों में बुन्देलखण्ड के एक भाग को अलग कर लिया था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसने मुगलों से आजाद होने का फैसला किया और दिल्ली से मिलने वाले आदेशों की अनदेखी शुरू कर दी। लेकिन जल्दी ही उसने अपना अड़ियल रवैया बदला और अपने पुत्रों को बहादुर शाह से मिलने भेजा। यह मुलाकात ऐसे समय में हुई जब बहादुर शाह ने अपने भाई कामबक्स के खिलाफ मोर्चा खोल रखा था। छत्रसाल के इस कदम से खुश होकर, मुगल बादशाह ने छत्रसाल को मनसबदारी प्रदान की। इसके बदले, छत्रसाल ने बंदा के खिलाफ बादशाह के अभियान में मदद की और लोहगढ़ हमले में बादशाह की तरफ से शामिल हुआ। लेकिन 1720 में मोहम्मद खान बंगश को इलाहाबाद का प्रशासक बना दिया गया। मोहम्मद खान सैय्यद बंधुओं में से एक था, सैय्यद बन्धुओं की बादशाह से घोर दुश्मनी थी। बुन्देलखण्ड का सारा भू–भाग और छत्रसाल के अधिकार क्षेत्र वाला भाग इलाहाबाद प्रशासन के अन्तर्गत ही आता था। मोहम्मद खान ने छत्रसाल के कब्जे वाले भाग का प्रभार दिलेर खान को सौंप दिया। इसके चलते बुन्देलों ने बगावत कर दी और 1721 में दिलेर खान की पराजय हुई। 1723 में मुगल बादशाह ने मोहम्मद खान को छत्रसाल पर आक्रमण का आदेश दिया। इस अभियान में मोहम्मद खान बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग पर कब्जा करने में सफल रहा। बुन्देले अपने कब्जे वाला अधिकांश भू–भाग खो चुके थे। छत्रसाल ने पुनः नए जोश और उत्साह से आक्रमण शुरू किए और हारा हुआ सारा भू–भाग फिर से जीत लिया। अपने इस अभियान में, छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव से मुगलों के खिलाफ युद्ध में सहायता मांगी और पेशवा की मदद से मोहम्मद खान बंगश और उसकी मदद करने वाले कैमखान को जबर्दस्त शिकस्त दी। छत्रसाल का 82 वर्ष की आयु में देहावसान हुआ और उसके पुत्रों हरदे राज और जगत राज ने राज्य को आपस में बांट लिया। पेशवा ने आड़े वक्त में बुदेलों की मदद की थी राज्य का एक छोटा हिस्सा उन्हें

जागीर के रूप में दे दिया गया। राज्य के विभाजन के साथ ही बुन्देलों की ख्याति और शान धीरे–धीरे कमजोर होने लगी और प्रतिष्ठा खत्म हो।

1.4.10 जाट

जाट गिरोह बना कर लूट–पाट किया करते थे। औरंगजेब के शासनकाल के अंत में ये दिल्ली और आगरा के बीच लूट–पाट करते थे तथा दिल्ली एवं आगरा के बीच के कुछ भू–भाग पर इन्होंने कब्जा कर लिया था। उस समय इनके सरदार राजाराम, भज्जा और चूड़ामन थे। लेकिन, 1721 में, सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा चूड़ामन की पराजय के बाद थुन इन्हें इनके हाथ से निकल गया। सर जदुनाथ सरकार का मानना है कि अठारहवीं सदी के मध्य तक जाटों का कोई राजा नहीं था और इन्होंने राज्य का रूप नहीं लिया था और ना ही इनकी कोई रियासत थी। लेकिन, चूड़ामन के भतीजे बदन सिंह के नेतृत्व में, इन्होंने पूरे आगरा और मथुरा क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया था। उसने इधर–उधर छितराए जाट परिवारों को एकजुट किया और उनमें आत्म गर्व और प्रशासन का भाव जगाया। 1756 में उसकी मृत्यु के बाद, उसके दत्तक पुत्र सूरजमल ने गद्दी सम्भाली। इतिहासकार सूरजमल को जाट कौम के प्लेटो या यूलिसेस के रूप में वर्णित करते है। सूरजमल ने दूरदर्शिता, राजनीतिक समझबूझ और बेहतरीन बृद्धिमत्ता के साथ अपने राज्य की जमीनी सीमाओं का विस्तार किया। आगरा, धौलपुर, मैनपुर, हाथरस, मेरठ, अलीगढ़, रोहतक, मेवात, रेवाड़ी, इटावा, मथुरा, गुड़गांव, फारूखनगर ये सभी उसके अधिकार क्षेत्र में आ गए। सूरजमल ने अब्दाली के सेना की घेराबन्दी का सफलतापूर्वक सामना किया और पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों की सहायता की। उसने मुगलों की राजस्व प्रणाली अपना कर एक मजबूत राज्य की नींव रखने का प्रयास किया। लेकिन 1763 में उसकी मृत्यु के बाद जाट राज्य का पतन हो गया और यह छोटी–छोटी जमींदारियों में बंट गया।

1.4.11 हैदराबाद और कर्नाटक

शाही दरबार के शक्तिशाली दरबारी चिन क्विल्च खान ने 1724 में हैदराबाद के स्वायत्तशासी राज्य की आधारशिला रखी। उसने अन्ततः निज़ाम–उल–मुल्क आसफ जहाँ की उपाधि धारण की। उसने दिल्ली सरकार से कभी भी खुद को खुले रूप से आज़ाद घोषित नहीं किया पर असल में उसने एक स्वतंत्र शासक के रूप में भूमिका निभाई। उसने हुक्म न मानने वाले जमीदारों का दमन किया और हिन्दुओं, जो कि आर्थिक रूप से सशक्त थे, के प्रति उदारता बरती और इसके फलस्वरूप हैदराबाद में एक ऐसा अभिजात वर्ग उभरा जो निज़ाम का समर्थक था।

निज़ाम आसफ जहाँ की मृत्यु के बाद, हैदराबाद को अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ा। बाद के वर्षों में, मराठों, मैसूर और कर्नाटक सभी ने हैदराबाद से भू–भाग छीने। 1762 के

बाद निजाम अली खान ने प्रशासन अपने हाथ में लिया और उसके शासनकाल में हालात फिर से बेहतर बने। 1803 तक अपने शासन के दौरान उसने अपने पड़ोसियों के साथ सीमा–विवादों का निपटारा किया और हैदराबाद में राजनीतिक स्थिरता कायम की।

कर्नाटक दक्षिण में मुगलों का एक सूबा था और हैदराबाद के निज़ाम के नियंत्रण में था और जैसा कि निज़ाम असल में दिल्ली से लगभग आजाद होकर काम कर रहा था, इसी प्रकार कर्नाटक का उप–गवर्नर भी जो कर्नाटक के नवाब के रूप में जाना जाता था, ने भी अपने आप को दक्षिण के वायसराय से अलग कर लिया था। 1740 के बाद, इसकी नवाबी के लिए संघर्ष के कारण कर्नाटक के हालात बिगड़ गए थे और इससे यूरोप की व्यापारी कम्पनियों को भारत की राजनीति में सीधे तौर पर हस्तक्षेप करने का मौका मिला।

1.4.12 मैसूर

मुगल साम्राज्य के विखंडन के बाद, मैसूर असल में आजाद हो गया। मैसूर हिन्दू राजवंश के नियंत्रण में था लेकिन दलवई यानि प्रधानमंत्री ने राज्य के सारे अधिकार अपने हाथ में ले रखे थे और असली शासक को नैपथ्य में डाल रखा था। जिस समय एक जाबांज व्यक्ति हैदर अली राज्य की सेवा में शामिल हुआ, उस समय नानिराज देलवई यानि प्रधानमंत्री था। हालांकि हैदरअली अनपढ़ और अशिक्षित था पर वह अत्यन्त जीवट, दृण इच्छाशक्ति तथा असाधारण समझबूझ वाला व्यक्ति था साथ ही अत्यन्त, महत्वाकांशी और एहसान फरामोश था। अव्यवस्था और उथल–पुथल का फायदा उठाते हुए उसने अपनी शक्तियाँ बढ़ाई और अपने संरक्षक नानिराज को पद से हटाकर राज्य के अधिकार हथिया लिए। उसने दक्षिण भारत में पोलिगरों का दमन करके सुन्डा, बेदनोर, कनारा, सारा, गुटी आदि को जीत कर अपनी सीमाओं का विस्तार किया। उसने मैसूर को मराठों और हैदराबाद के निजाम के लिए चुनौती बना दिया तथा दक्षिण भारत में अंग्रेजों का जबर्दस्त प्रतिद्वन्दी बन गया।

1.4.13 बंगाल

मुर्शिद कुली खान के बंगाल का गवर्नर या निज़ाम बनने के बाद बंगाल धीरे–धीर मुगलों से आजाद हो गया। उसे एक साथ नाजिम और दीवान बनने का असाधारण अधिकार दिया गया था। इससे मुर्शिद कुली को अपनी स्थिति और मजबूत करने में मदद मिली। एक सफल राजस्व प्रशासक के रूप में उसकी चतुराई की वजह से बंगाल राज्य की नींव पड़ी। उसके प्रान्त में शक्तिशाली बिचौलिए यानि जमींदार राजस्व उगाही करते थे। इस अवधि के दौरान नए अभिजात वर्ग के रूप में जमींदारों का उदय हुआ और साथ ही व्यापारियों और बैंकरों की अहमियत भी बढ़ी।

1727 में मुर्शिद कुली खान की मृत्यु के बाद उसके दामाद शुजा–उद–दीन ने 1739 तक बंगाल पर शासन किया। इसी वर्ष यानि 1739 में अलीवर्दी खान ने शुजा–उद–दीन के

पुत्र सरफराज को गद्दी से हटाकर उसकी हत्या कर दी और खुद नवाब बन बैठा। इन तीन नवाबों के शासनकाल में बंगाल में लम्बे समय तक शान्ति कायम रही और व्यवस्थित प्रशासन बना रहा। इससे उद्योग व्यापार को प्रोत्साहन मिला। अलीवर्दी के शासनकाल में ही बंगाल मुगलों से लगभग अलग हो गया था। अलीवर्दी खान के लिए सबसे बड़ी समस्या बाहर से आई, उसे मराठों के विध्वंस का सामना करना बड़ा था। अन्त में अलीवर्दी ने मराठों से समझौता कर लिया और उन्हें चौथ देने तथा उड़ीसा का प्रान्त सौंपने पर सहमत हो गया। लेकिन, मराठा हमलों का सबसे बड़ा नुक्सान बंगाल के व्यापार में व्यवधान के रूप में सामने आया। विशेष रूप से उत्तर और पश्चिमी भारत के साथ जमीनी व्यापार को इसका नुक्सान झेलना पड़ा। अलीवर्दी, जिसने अपने अपने पुत्र सिराज–उद–दौला को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, 1739 में मृत्यु को प्राप्त हुआ। लेकिन गद्दी पर उसके उत्तराधिकार को अन्य दावेदारों ने चुनौती दी और दरबारियों में जबर्दस्त गुटबन्दी हो गई क्योंकि जमींदार और व्यापारी वर्ग इस अत्यन्त महत्वाकांक्षी और तुनक मिज़ाज युवा नवाब को अपने लिए खतरा मानते थे। इससे बंगाल का प्रशासन कमजोर हुआ और अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इसका फायदा उठाया। उसने 1757 के प्लासी के षडयंत्र से बंगाल में अपने पैर जमाए और अन्ततः सिराज–उद–दौला के शासन का अन्त कर दिया।

1.7 अभ्यास प्रश्न

(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

1. सूरजमल को जाट कौम का यूलेसिस या प्लेटो क्यों कहा जाता है ?
2. बुन्देला सरदार के रूप में छत्रसाल की उपलब्धियों का मूल्यांकन करें।
3. रोहिल्लों के उत्थान में अली मोहम्मद खान की भूमिका का आकलन करे।
4. हैदरअली के उत्थान पर टिप्पणी लिखें।

(लम्बे उत्तर वाले प्रश्न)

1. 18वीं सदी के दौरान क्षेत्रीय शक्तियों के उदय पर आप की क्या राय है ?
2. औरंगजेब की मृत्यु के बाद क्षेत्रीय शक्तियों के उत्थान के लिए जिम्मेदार कुछ महत्वपूर्ण मुद्दो पर चर्चा करे।
3. 18वीं सदी में मराठा शक्ति के उत्थान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
4. अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के समय मुगल–सिख रिश्तों पर एक टिप्पणी लिखें।

1.6 संदर्भ ग्रंथ

- चौधरी, के.सी., हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, न्यू सेन्ट्रल बुक एजेंसी, कलकत्ता, पुनर्मुद्रित 2000।

- रॉय चौधरी एस.सी., हिस्टी ऑफ मॉडर्न इंडिया, सुरजीत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999।
- मजूमदार आरसी (एट आल) ब्रिटिश पैरामाउन्ट्सी और रेनेशाँ पार्ट I, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे 1988।
- ग्रोवर बी.एल., और मेहता अल्का, ए न्यू लुक एट मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री (फ्रॉम 1717 टू दी मॉडर्न टाइम्स) एस चान्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2012।
- सेन एस.एन., मॉडर्न इंडिया, न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिशर्स, कलकत्ता 1991।

ब्लॉक एक

इकाई दोः अंग्रेजों की भारत विजय : एक विमर्श

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अंग्रेजी व्यापार की वृद्धि

2.4 ब्रिटिश विस्तार के रूझान

2.4.1 दक्षिण में अग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता

2.4.2 कर्नाटक का पहला युद्ध (1746–48)

2.4.3 द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749–54)

2.4.4 तृतीय कर्नाटक युद्ध (1758–1763)

2.5 भारत में ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना और विस्तार

2.5.1 सिराज–उद–दौला और ईस्ट इण्डिया कम्पनी

2.5.2 प्लासी का युद्ध

2.5.4 राजनीतिक शक्ति के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी का उदय : बक्सर का युद्ध

2.5.5 बक्सर का युद्ध

2.5.6 बक्सर के युद्ध का महत्व

2.5.7 दीवानी की शुरूआत लिए जिम्मेदार परिस्थितियाँ

2.5.8 ईस्ट इंडिया कम्पनी बंगाल के सम्प्रभु शासक के रूप में

2.6 इलाहाबाद की संधि (1765) के बाद से 1857 के विद्रोह तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की वृद्धि

2.6.1 अंग्रेजों और मैसूर के बीच युद्ध (एंग्लो–मैसूर युद्ध)

2.6.2 पहला एंग्लो–मैसूर युद्ध (1767–69)

2.6.3 दूसरा एंग्लो–मैसूर युद्ध (1780–84) ?

2.6.4 तीसरा एंग्लो–मैसूर युद्ध (1790–92)

2.6.5 चौथा एंग्लो–मैसूर युद्ध (1799)

2.7 अंग्रेज–मराठा युद्ध (एंग्लो–मराठा युद्ध)

2.7.1 पहला एंग्लो–मराठा युद्ध (1775–82)

2.7.2 दूसरा एंग्लो–मराठा युद्ध

2.7.3 तीसरा एंग्लो–मराठा युद्ध (1817–18)
2.8 अंग्रेज–सिख युद्ध (एंग्लो–सिख युद्ध)
2.8.1 पहला एंग्लो–सिख युद्ध (1845–46)
2.8.2 दूसरा एंग्लो–सिख युद्ध (1848–49)
2.9 हड़प नीति के अन्य प्रावधान
2.9.1 सहायक मैत्री
2.9.2 पतन का सिद्धान्त
2.10 अभ्यास प्रश्न
2.11 संदर्भ ग्रंथ

2.1 प्रस्तावना

16वीं सदी के मध्य और 18वीं सदी के मध्य में भारत के विदेश व्यापर में क्रमिक रूप से वृद्धि हुई। इसका कारण समय–समय पर भारत में आई अनेक विदेशी कम्पनियों की व्यापारी गतिविधियाँ थीं। अनन्त काल से भारत के पश्चिमी देशों से व्यापारिक रिश्ते रहे थे। लेकिन 7वीं सदी से भारत का सामुद्रिक व्यापार अरब देशों, जिनका हिन्द महासागर और लाल सागर पर वर्चस्व था, ने हथिया लिया। भारतीय व्यापार पर अरब देशों के एकाधिकार को पुर्तगालियों ने भारत के साथ सीधे व्यापार के द्वारा तोड़ा पुर्तगालियों ने यूरोप से भारत के लिए नए समुद्री रास्ते की खोज की। कैप ऑफ गुड़ होप से होकर गुजरने वाले इस मार्ग की खोज वास्को दा गामा ने की थी। इस नए मार्ग से व्यापार के लिए पुर्तगालियों के अलावा अन्य यूरोपीय समुदायों ने भी पहल की। भारत आने वाले ये व्यापारी पहले वाले व्यापारियों से बिलकुल अलग थे, इन्हें अपनी–अपनी सरकारों का राजनीतिक और सैन्य सहयोग मिला हुआ था। ये केवल व्यापारी ही नहीं थे, वे किसी न किसी रूप में अपनी–अपनी सरकारों के प्रतिनिधि भी थे, जो अपनी नौसैनिक ताकत के बल पर अपने–अपने समुद्री मार्ग बनाना चाहते थे। इस यूनिट में ईस्ट इंडिया कम्पनी के बताए रास्ते पर चल कर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार और विकास पर चर्चा की जाएगी।

2.2 उद्देश्य

- भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार का अध्ययन करना।
- बंगाल और दक्षिण में ब्रिटिश विस्तार की प्रक्रिया पर नज़र डालना।
- प्लासी और बक्सर के युद्ध के बारे में स्पष्ट जानकारी लेना और भारतीय राजनीति पर इसके प्रभाव को समझना।
- विदेशी अतिक्रमण के प्रतिरोध में देशी शासकों द्वारा लड़े गए युद्धों को समझना।
- अंग्रेजों और मैसूर, अंग्रेजों और मराठों तथा अंग्रेजों और सिखों के बीच संबंधों की जाँच करना।
- ब्रिटिश विस्तार के अन्य महत्वपूर्ण साधनों पर विचार करना।

2.3 अंग्रेजी व्यापार की वृद्धि

एलिजाबेथ प्रथम के शासन काल के अन्त में अंग्रेजों ने पूर्वी देशों के साथ व्यापार में रूचि लेना शुरू कर दिया था। 31 दिसम्बर, 1600 को महारानी ने एक चार्टर पर हस्ताक्षर किए, जिसमें लंदन के व्यापारियों की एक कम्पनी को मसालों के द्वीप समूह में व्यापार के लिए ईस्ट इंडीज में 15 वर्ष के लिए व्यापार के अनन्य अधिकार दिए गए। लेकिन, 1608 में अंग्रेज सूरत पहुँचे और मुगल दरबार से और ज्यादा सुविधाओं का आग्रह किया। 1609–11 में मुगल दरबार में मौजूद विलियम हॉकिन्स पुर्तगालियों के विरोध की वजह से कुछ खास नहीं कर सका। 1612 में पुर्तगालियों की पराजय के बाद ही, जहाँगीर ने अंग्रेजों को सूरत में फैक्ट्री लगाने का फरमान जारी किया। जहाँगीर के दरबार में 1615 से 1618 के दौरान ब्रिटिश राजदूत सर थॉमस रो ने कम्पनी के लिए अनेक सुविधाऐं प्राप्त कीं और 1668 में आगरा, अहमदाबाद तथा भड़ौंच में फैक्ट्रियाँ लगाईं। 1687 में चार्ल्स द्वितीय ने पुर्तगालियों के कब्जे वाले बम्बई को कम्पनी को सौंप दिया। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपना मुख्यालय सूरत से शिफ्ट करके बम्बई पहुँचाया। कम्पनी ने 1611 में दक्षिण तट पर स्थित मासुलीपट्टनम (मश्लीपट्टनम) ने और 1626 में पुलीकट के समीप अमरगाँव में अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित कीं। 1639 में, चन्द्रगिरी के महाराज से मद्रास का पट्टा लिया और यहाँ एक किला बनाया, जो सेंट जॉर्ज के किले के नाम से जाना जाता है। इसके बाद जल्दी ही अंग्रेजों ने अपने कार्यकलाप उत्तर में भी शुरू कर दिए और उड़ीसा में हरिहरपुर और बालासोर, बंगाल में कासिम बाजार तथा हुगली में एवं बिहार में पटना में अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित कीं।

2.4 ब्रिटिश विस्तार के रूझान

2.4.1 दक्षिण में अग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता

यूरोप में फ्रांस और ब्रिटेन के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता भारत में इनके बीच प्रतिस्पर्धा का कारण बना। सत्रहवीं सदी के अन्त में और अठारवीं सदी के आरम्भ में फ्रांस भारत में ज्यादा सक्रिया नहीं था और इसलिए अंग्रेजों का ध्यान इनकी तरफ नहीं गया। लेकिन 1720 और 1740 के बीच फ्रांसीसियों के व्यापार में अचानक तेजी आई जो अंग्रेजों के लिए चिन्ता का विषय बना। वही दूसरी तरफ, अस्ट्रिया में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष (1740–48) में इन दोनों देशों प्रतिद्वन्दी के रूप में शामिल होने से भी भारत में इनके बीच वैमनस्य बढ़ा।

2.4.2 कर्नाटक का पहला युद्ध (1746–48)

प्रथम कर्नाटक युद्ध आस्ट्रियाई उत्तराधिकार के लिए छिड़े संघर्ष के चलते यूरोप में फ्रांस और ब्रिटेन के बीच चल रहे युद्ध का विस्तार था। सितम्बर, 1746 में अंग्रेजों की नौसेना ने बारनेट के नेतृत्व में कुछ फ्रांसीसी युद्धपोतों को पकड़ लिया। जिसे फ्रांस के गवर्नर जनरल ड्रप्ले ने गम्भीर धमकी के रूप में लिया और मारीशस में फ्रेंच गवर्नर ब्योर्दो से तुरन्त सहायता का अनुरोध किया। युद्ध में फ्रांसीसियों ने अंग्रेजी दस्ते को हरा दिया और मद्रास पर कब्जा कर लिया। ब्रिटेन द्वारा बदले की कारवाई से पहले ही एक्स–ला–चैपल की संधि (1748) होने की खबर भारत पहुँच गई और मद्रास अंग्रेजों को लौटा दिया गया तथा दोनों के बीच शान्ति कायम हो गई।

2.4.3 द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749–54)

दूसरे कर्नाटक युद्ध के समय तक, डूप्ले की राजनीतिक महत्वाकांक्षा बहुत बढ़ गई थी। वह दक्षिण में देशी राजपरिवारों की राजनीति में दखल दे कर अपनी शक्तियाँ बढ़ाने लगा। जून 1748 में हैदराबाद के निज़ाम–उल–मुल्फ आसफ जहां की मृत्यु के बाद गद्दी के लिए संघर्ष छिड़ गया। स्वर्गीय निज़ाम का पोता, मुजफ्फर जंग और निज़ाम का दूसरा पुत्र, नासिर जंग दोनों गद्दी के लिए दावेदारी पेश कर रहे थे। वहीं दूसरी तरफ, भूतपूर्व नवाब, दोस्त अली का दामाद चन्दा साहिब नवाब अनवरूद्दीन के अधिकार को चुनौती दे रहा था। ये क्षेत्रीय संघर्ष जल्दी ही एक संघर्ष में बदल गए और अनेक गुट बन गए।

डूप्ले इस अवसर को भांप गया और कर्नाटक को फ्रांसीसियों पर निर्भर करने का सपना देखने लगा। उसने 1749 में अम्बर में नवाब अनवरूद्दीन को हरा दिया और उसकी

हत्या कर दी। अवैध पुत्र, मोहम्मद अली ने खुद को त्रिचनापल्ली में कैद कर लिया और अंग्रेजों से मदद की अपेक्षा की। शेष कर्नाटक डूप्ले की कठपुतली, चन्दा साहिब के अधिकार में आ गया। 1750 में, नए निज़ाम नासिर जंग की हत्या के बाद, डूप्ले अपने नामिती मुजफ्फर जंग को हैदराबाद की गद्दी पर बैठाने में सफल रहा। वही दूसरी तरफ, मुजफ्फर जंग ने डूप्ले को कृष्णा नदी के दक्षिण में स्थित सारे मुगल भू–भाग का गवर्नर बना कर सम्मानित किया। नए निज़ाम के अनुरोध पर बुसी के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना की टुकड़ी भी हैदराबाद में तैनात कर दी गई।

इस बीच डूप्ले ने त्रिचनापल्ली, जहाँ मुहम्मद अली प्रश्रय लिए हुए था, घेरने की कोशिश की। त्रिचनापल्ली का घेरा लम्बा चला। इस बीच रॉबर्ट कलाइव ने अरकाट की राजधानी का घेरा डालकर फ्रांसीसी सेना को दो–फाड़ कर दिया। 1752 में, फ्रांसीसियों ने त्रिचनापल्ली के बाहर ब्रिटिशों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। चन्दा साहिब की धोखें से हत्या कर दी गई और उसक स्थान पर अंग्रेजों की पसंद यानि कर्नाटक के नवाब मुहम्मद अली को नया नवाब बनाया गया। त्रिचनापल्ली में फ्रांसीसियों की हार ने डूप्ले की किस्मत का दरवाजा बन्द कर दिया। फ्रेंच व्यापरी कम्पनी ने उसे वापस बुला लिया और उसके विदा होने के बाद 1735 में एक अन्तरिम संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि के अनुसार, दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि वे भारतीय राजाओं की परस्पर लड़ाई में शामिल नहीं होंगे और संधि के समय जिन भागों पर इन पक्षों का कब्जा था वे भू–भाग उन्हीं के अधिकार में रहेंगे।

2.4.4 तृतीय कर्नाटक युद्ध (1758–1763)

यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध के साथ कर्नाटक का तीसरा युद्ध शुरू हुआ। 1757 में, फ्रांस सरकार ने काउन्ट दे लाली को भारत भेजा। इस बीच ब्रिटिश ईस्ट इंण्डिया कम्पनी ने 1757 में प्लासी में बंगाल के नवाब सिराज–उद–दौला को हराकर बंगाल पर अधिकार कर लिया था। फ्रांसीसी जनरल काउन्ट दे लाली ने जून 1758 में मद्रास पर कब्जा कर लिया था। अक्टूबर 1759 में सर आयर कूट के मद्रास पहुँचने पर फ्रांसीसियों के टिके रहने की उम्मीद समाप्त हो गई। 22 जनवरी 1760 को लाली की वांदीवाश की लड़ाई में निर्णायक पराजय हुई। इस लड़ाई में बुसी को कैद कर लिया गया। अंग्रेजों ने पाण्डिचेरी का घेरा डाल दिया। आठ माह तक अंग्रेजों को रोके रखने के बाद जनवरी 1761 में लाली ने समर्पण कर दिया। पाण्डिचेरी का पतन भारत में फ्रांसीसी शक्ति के

पतन की निशानी बना। पेरिस की संधि (1763) के द्वारा पाण्डिचेरी और फ्रांस के कब्जे वाले भू–भाग उन्हें फिर वापस मिल गए।

2.5 भारत में ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना और विस्तार

पूर्वी भारत में अग्रेजों की सबसे पहली बस्ती 1633 में बसी थी। इस वर्ष उन्होंने उड़ीसा के हरिहरपुर और बालासोर में फैक्ट्रियाँ लगाईं। बंगाल के मुगल वायसराय शाह सुजा की अनुमति से 1651 में हुगली में पहली इंगलिश फैक्ट्री लगी। शाह सुजा ने 3 हजार रूपये सालान के तय शुल्क के बदले व्यापार की यह सुविधा दी थी। जल्द ही उन्होंने कासिम बाजार, पटना तथा आस–पास के अन्य क्षेत्रों में फैक्ट्रियाँ लगाई। अंग्रेजों के व्यापार में मुख्य रूप से रेशम, सूती वस्त्र, शोरा और चीनी शामिल था। 1651, 1656 और 1672 में जारी अनेक फरमानों के द्वारा अंग्रेजों को सीमा शुल्क से छूट दी गई और तय किया गया कि इसके बदले कम्पनी भारतीय प्रशासकों को एक निर्धारित धनराशि देगी।

1658 में अंग्रेजों ने 1200 रूपये देकर सुतानुती, कालीकट और गोविन्दपुर गांवों की जमींदारी हासिल कर ली। अंग्रेजों ने अपनी फैक्ट्री के आस–पास एक किले का निर्माण किया और इसे फोर्ट विलियम नाम दिया तथा सर चार्ल्स आयर को किले का पहला प्रेसीडेन्ट नियुक्त किया। 1717 में मुगल बादशाह द्वारा जारी एक शाही फरमान के जरिए कम्पनी ने कई विशेष अधिकार हासिल कर लिए। बादशाह फारूखसियार ने कम्पनी को बिना शुल्क अदा किए बंगाल में वस्तुओं के निर्यात और आयात की आजादी दी तथा वस्तुओं की मुक्त आवाजाही के लिए पास और दुस्तक जारी करने का अधिकार दिया। यह फरमान पत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बंगाल के नवाब के बीच विवाद का एक प्रमुख कारण बन गया। कम्पनी के अधिकारियों द्वारा दुस्तक के दुरूपयोग पर मुर्शिद कुली खान और अलीवर्दी खान दोनों ने आपत्ति जताई, लेकिन कम्पनी ने उनकी नहीं सुनी। इसके चलते दोनों के बीच प्रतिरोध बढ़ गया।

2.5.1 सिराज–उद–दौला और ईस्ट इण्डिया कम्पनी

बंगाल की गद्दी पर सिराज–उद–दौला के बैठते ही शाही फरमान और दुस्तक के दुरूपयोग से जुड़ा विवाद और गम्भीर रूप लेने लगा। सिराज–उद–दौला शाही फरमान और दुस्तक के दुरूपयोग के सख्त खिलाफ था साथ ही अंग्रेजों के इरादों पर शक करता था। इस बीच यूरोप में ब्रिटेन और फ्रांस के राजनीतिक संबंध खराब होने लगे और अंग्रेजों ने यूरोप में एक और संघर्ष की तैयारी शुरू कर दी। यूरोप में इन ताकतों के बीच

खींचा–तानी का प्रभाव भारत में इन दोनों कम्पनियों के संबंधों पर भी पड़ा। अंग्रेजों ने नवाब से अनुमति लिए बिना युद्ध की तैयारी के रूप में कलकत्ता की मोर्चाबंदी शुरू कर दी। नवाब ने दोनों पक्षों को इस मोर्चाबंदी को तत्काल रोकने का आदेश दिया। फ्रांसीसियों ने तो आदेश का पालन किया लेकिन अंग्रेजों ने आदेश मानने से इन्कार कर दिया।

सिराज–उद–दौला नौजवान और गुस्सैल था। वह इस अवज्ञा को सहन नहीं कर सका। उसने कासिम बाजार में ब्रिटिश कारखाने को जब्त कर लिया और बाद में 20 जून, 1756 को फोर्ट विलियम पर कब्जा कर लिया। इस दुस्साहस के दौरान एक तथा–कथित ''भयानक घटना'' घटी। कहा जाता है कि 146 कैदियों को फोर्ट विलियम के एक छोटे से कमरे मैं कैद कर के रखा गया था। यह गर्मियों की घटना थी और वह रात इतनी गर्म थी कि उनमें से केवल 26 लोग ही जीवित बचे। ब्रिटिश इतिहासकारों ने बंगाल के युवा नवाब को अत्यन्त क्रूर बताने के लिए इस घटना को अतिरंजित किया है। नवाब कालीकट को माणिकचन्द के हाथों में सौंप कर जीत का जश्न मनाने के लिए अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद चला गया। वहीं दूसरी तरफ, अंग्रेजों अपने जहाजों पर सवार होकर भाग निकले। नवाब की यह महान भूल थी, उसने अपने दुश्मनों की ताकत को कम करके आंका था।

इस बीच अंग्रेजों ने बचकर एक छोटे से द्वीप फुल्टा में शरण ली और मद्रास से सहायता का इंतजार करने लगे। कर्नल क्लाइव और एडमिरल वाटसन के नेतृत्व में क्रमशः सैनिक बल और नौसैनिक बल इनकी सहायता के लिए पहुँचा और इन्होंने हुगली की ओर कूच किया। हुगली पहुँच कर इसे लूटा और 1757 की शुरूआत में कलकत्ता पर अंग्रेजों का फिर से कब्जा हो गया। 9 फरवरी, 1757 को नवाब को अलीनगर की संधि पर मजबूर होकर हस्ताक्षर करने पड़े। इस संधि में उसने कम्पनी की सभी मांगों को मान लिया। नवाब को कम्पनी के अधिकारों और रियायतों को बहाल करने और कम्पनी को हुए नुक्सान की भरपाई करने के लिए कहा गया।

2.5.2 प्लासी का युद्ध

अब अंग्रेजों ने सिराज–उद–दौला को पद से हटाने और उसकी जगह उनके इशारों पर चलने वाले व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने का फैसला किया। उन्होंने मुर्शिदाबाद में नवाब की तरफ से कालीकट में नियुक्त प्रभारी माणिक चन्द, एक धनाड्य व्यापारी अमीचन्द, जाने माने साहूकार, जगत सेठ, मीर जाफर, मीर बक्शी, नवाब के जनरल राय दुर्लभ के साथ षड़यंत्र रचा और मीर जाफर को बंगाल की गद्दी पर बैठाने का निर्णय

लिया। 23 जून 1757 को, दोनों सेनाएं मुर्शिदीबाद के निकट प्लासी के मैदान में एक–दूसरे के आमने–सामने थीं। मीर जाफर और राय दुर्लभ की अगुवाई में सेना का एक बड़ा भाग युद्ध में तटस्थ बना रहा और मीर मदान तथा मोहन लाल के नेतृत्व में मुट्ठी भर सैनिकों ने अंग्रेजों का सामना किया। इस सेना की बुरी तरह हार हुई। नवाब ने बचकर भाग निकलने की कोशिश की लेकिन वह पकड़ा गया और मारा गया। उसकी जगह मीर जाफर को बंगाल का नया नवाब घोषित किया गया।

के.एम. पनिक्कर का कहना है कि प्लासी एक ऐसा बाजार बना, जहाँ बंगाल के पैसे वाले बैंकरों और जाफर ने नवाब को अंग्रजों के हाथ बेच दिया। प्लासी का युद्ध भारत का नियति नियन्ता साबित हुआ। कर्नल मैलेसन कहते है, ''कभी भी ऐसा युद्ध नहीं लड़ा गया, जिसके इतने व्यापक, इतने तात्कालिक और इतने स्थाई परिणाम निकले हो''।

2.5.4 राजनीतिक शक्ति के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी का उदय : बक्सर का युद्ध

मीर जाफर ने 25 जून 1757 को मुर्शिदाबाद में प्रवेश किया। उसके राजधानी में आते ही क्लाइव ने उसे बंगाल, बिहार और उड़ीसा का सूबेदार नियुक्त कर दिया। वहीं दूसरी तरफ, कम्पनी ने 24 परगना की जमींदारी हासिल कर ली। इसमें कोई शक नहीं है कि कम्पनी को काफी फायदा पहुँचा। कम्पनी ने कलकत्ता में एक टकसाल लगाई और बिहार में शोरे के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया। साथ ही, सूबे में कम्पनी के लिए मुक्त व्यापार का अधिकार प्राप्त कर लिया। इनके अलावा, कम्पनी ने जुलाई, 1757 की संधि से कई राजनीतिक रियायतें हासिल कर लीं। संधि में प्रावधान था कि अंग्रेजों के शत्रु चाहे वे भारतीय हो या यूरोपीय नवाब के शत्रु भी माने जाएंगे।

जल्दी ही मीर जाफर को अंग्रेजों के साहचर्य से चिढ़ होने लगी। उसने बंगाल से अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए डचों के साथ दुरभिसंधि की। क्लाइव ने उसके इस मनसूबे को भांप लिया और 1759 में डचों को पराजित किया। 1760 में क्लाइव के इंग्लैण्ड रवाना होने के साथ ही, जाफर के बुरे दिन शुरू हो गए, अंग्रेज उसे नापसंद करने लगे। उसके पुत्र मीरन की मृत्यु होने पर नवाब और अंग्रेजों के रिश्तों में खटास पैदा हो गई। रॉबर्ट क्लाइव के उत्तराधिकारी लॉर्ड वैंसीट्रैट ने अंततः नवाब को गद्दी से हटा दिया और उसकी जगह पर उसके दामाद मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया।

मीर कासिम एक कुशल प्रशासक था और उसने मीर जाफर का कर्ज अदा किया। तत्कालीन इतिहासकार गुलाम हुसैन के अनुसार, वित्तीय मामलों में उसका कोई मुकाबला नहीं था। 1762 में, उसने मुर्शिदाबाद की जगह बिहार में मुगेर को अपनी

राजधानी बनाया और वहां हथियारों की एक फैक्ट्री लगाई। मीर कासिम ने कम्पनी के अधिकारियों द्वारा आंतरिक सीमा शुल्क से बचने के लिए फरमान के दुरूपयोग पर लगाम लगाई और आन्तरिक व्यापार पर सभी प्रकार के महसूलों को समाप्त करने की एक बड़ी पहल की। अन्ततः इस मुद्दे पर कम्पनी और मीर कासिम के बीच विवाद पैदा होना ही था।

2.5.5 बक्सर का युद्ध

अंग्रेजों की पटना स्थित फैक्टी के प्रमुख, एलिस ने नगर पर कब्जा करने की अपनी असफल कोशिश के द्वारा इस विवाद को हवा दी। 1763 की गर्मियों भर मीर कासिम की सेनाओं के खिलाफ निरन्तर अभियान चला और एक के बाद एक हमलों में नवाब की पराजय हुई। वह अवध भाग गया और वहाँ उसने अवध के नवाब सुजा–उद–दौला, मुगल बादशाह शाह आलम के साथ गठजोड़ किया। 22 अक्टूबर, 1764 को इन तीनों की संयुक्त सेना का बक्सर में अंग्रेजों से युद्ध हुआ। अंग्रेजी कमाण्डर मेजर हेक्टर मुनरों ने इस संयुक्त सेना को करारी शिकस्त दी। मुगल बादशाह शाह–आलम द्वितीय ने समर्पण कर दिया। अवध पर कम्पनी का कब्जा हो गया और नवाब को रोहिल्लों के यहाँ शरण लेनी पड़ी। सम्मान और आन–बान के साथ शासन करने वाला नवाब मीर कासिम भगोड़ा बना और 1777 में दिल्ली में अत्यन्त गरीबी की हालत में उसकी मृत्यु हुई।

2.5.6 बक्सर के युद्ध का महत्व

बक्सर के युद्ध ने आधुनिक भारत के इतिहास को एक नई दिशा दी। यह घटना कई मायनों में प्लासी के युद्ध से ज्यादा महत्वपूर्ण थी। जेम्स स्टीफन के अनुसार, ''भारत में ब्रिटिश सत्ता के उदय के नजरिए से बक्सर के युद्ध को प्लासी के युद्ध से ज्यादा श्रेय जाता है। सैन्य नजरिए से, बक्सर अंग्रेजों के लिए एक महान विजय साबित हुआ। प्लासी में सिराज–उद–दौला की हार का मुख्य कारण उसके अपने जनरलों का छल–कपट था। बक्सर में अंग्रेज किसी ऐसे छल–कपट के बिना जीते थें।'' प्रो0 ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में ''यह एक ऐसा युद्ध था जिसमें दोनों पक्ष पूरी शक्ति और उत्साह से लड़े और अहम मुद्दे तय हुए। न केवल बंगाल के नवाब बल्कि बादशाह और उसके बंजीर को पराजय का मुख देखना पड़ा। उनकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा और देश में ब्रिटिश सेना की धाक जमी।'' सुजा–उद–दौला जैसे अनुभवी युद्ध माहिर के खिलाफ विजय से कम्पनी की राजनीतिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। अब उत्तरी भारत में अंग्रेजों की ताकत अजेय हो

गई थी। नया नवाब उनके हाथों की कठपुतली था, अवध का नवाब उनका स्वामिभक्त साथी और मुगल बादशाह उनका कैदी था।

2.5.7 दीवानी की शुरूआत लिए जिम्मेदार परिस्थितियाँ

क्लाइव दूसरी बार मई, 1765 में बंगाल का गवर्नर बनकर आया। उसने आते ही मुगल बादशाह और अवध के नवाब के साथ कम्पनी के रिश्तों को विनियमित करने पर ध्यान दिया। इसी प्रकार, उसने बंगाल के नवाब, नाजिम–उद–दौला के साथ 12 अगस्त, 1765 को इलाहाबाद में एक संधि को अंजाम दिया, जिसके चलते अन्ततः कुख्यात दोहरी व्यवस्था जिसे दीवानी कहा जाता है, की शुरूआत हुई। इससे असल सत्ता कम्पनी के हाथों में चले गयी और प्रशासन का बोझ बंगाल के नवाब के कंधों पर पड़ा।

राजस्व पर सीधा नियंत्रण कम्पनी के पास रहा, नवाब को निज़ामत या पुलिस अथवा न्यायिक कार्यों का दायित्व मिला। लेकिन, राजस्व पर कम्पनी के सीधे नियंत्रण की वजह से नवाब शक्ति विहीन हो गया। इस प्रकार, क्लाइव ने एक ''मुखौटा व्यवस्था'' अथवा दोहरी सरकार या द्वैध शासन के रूप में विख्यात शासन प्रणाली कायम की। जिसके तहत, कम्पनी ने 12 अगस्त, 1765 के एक फरमान के जरिए मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से दीवानी के कार्य हासिल कर लिए। दीवानी कार्यों के निष्पादन के लिए, कम्पनी ने दो उप–दीवान, बंगाल के लिए मोहम्मद रेजा खान और बिहार के लिए राजा शिताब राय नियुक्त किए तथा कम्पनी स्वयं असल दीवान बनी। मोहम्मद रेजा खान ने नवाब की तरफ से उप–नाजिम का कार्य भी सम्भाला। सैद्धान्तिक रूप से, सत्ता को कम्पनी और नवाब के बीच में बाँटा गया था, जबकि दरअसल, इसे अंग्रेज नियंत्रकों और भारतीय एजेंसियों के बीच बाँटा गया था लेकिन वास्तविक अधिकार कम्पनी के हाथों में थे।

2.5.8 ईस्ट इंडिया कम्पनी बंगाल के सम्प्रभु शासक के रूप में

ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा शुरू की गई दोहरी शासन प्रणाली बुरी तरह असफल रही। 1772 में वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया। उसने ''मुगल सम्प्रभुता के मुखौटे'' को उतार फैंका और बंगाल पर विजेजा के अधिकार के रूप में शासन करने का निर्णय लिया। शासन की दोहरी व्यवस्था कम्पनी के नौकरशाहों को सौंप दी गई। नवाब जो कि राज्य का असल प्रमुख था, प्रशासन में अपने नाम–मात्र के अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया। उसे मिलने वाले 32 लाख रू0 के सालाना के भत्तों में कटौती कर के 16 लाख रू0 सालान कर दिया गयी और मुगल बादशाह शाह

आलम द्वितीय को मिलने वाले 26 लाख रू0 सालाना पर भी रोक लगा दी गई। इलाहाबाद और कोरा को मुगल बादशाह से छीनकर अवध के नवाब को बेच दिया गया।

इस प्रकार, दो दशक से भी कम समय में बंगाल में वास्तविक अधिकार बंगाल के नवाब के हाथ से निकल कर ईस्ट इंडिया कम्पनी के पास चले गए और भारत का एक सबसे समृद्ध और उन्नत प्रान्त कंगाली और दुर्दशा वाला प्रान्त बन गया, दुर्मिक्ष और महामारियों ने हालात और भी खराब कर दिए। बंगाल पर ब्रिटिश शासन ने भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का रास्ता साफ कर दिया और एक समृद्ध अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था बना दिया।

2.6 इलाहाबाद की संधि (1765) के बाद से 1857 के विद्रोह तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की वृद्धि

2.6.1 अंग्रेजों और मैसूर के बीच युद्ध (एंग्लो–मैसूर युद्ध)

अठारहवीं सदी के दूसरे उत्तरार्ध में मैसूर के छोटे सा राज्य को विशिष्ट अहमियत मिली। इसका कुछ श्रेय हैदरअली की प्रतिभा और कुछ श्रेय दक्षिण के पठार में इसकी केन्द्रीय स्थिति को जाता है। पानीपत के तीसरे युद्ध (1761) ने उत्तर में मराठा शक्ति को अपाहिज बना दिया था और दक्षिण में इसकी पकड़ को कमजोर कर दिया था। इस युद्ध ने हैदरअली के उत्थान में एक अनिवार्य भूमिका निभाई। उसने सेना में नायक के रूप में सेवा शुरू की और 1758 में असली शासक को अलग–थलग करके राजनीतिक अधिकार अपने हाथ में ले लिए तथा 1761 में मैसूर का निर्विवाद प्रमुख बन गया।

2.6.2 पहला एंग्लो–मैसूर युद्ध (1767–69)

प्रारम्भ में हैदरअली ब्रिटिश सत्ता को अपने प्रति शत्रुतापूर्ण मानता था। अंग्रेजों, मराठों और हैदराबाद के निजाम ने हैदरअली के खिलाफ त्रिपक्षीय गठबंधन तैयार किया। लेकिन, हैदरअली ने राजनयिक पैंतरा चलकर निजाम और मराठों को अपने साथ मिला लिया और इन तीनों ने मिलकर अरकॉट पर हमला किया। अरकॉट का हैदरअली के साथ जमीनी विवाद था। लगभग डेढ़ साल तक चलने वाले इस उतार–चढ़ाव वाले संघर्ष के बाद हैदरअली ने अचानक मद्रास पर आक्रमण कर दिया। भयभीत मद्रास सरकार को 4 अप्रैल, 1769 को एक अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस संधि का आधार विजित भूमि की परस्पर वापसी और रक्षात्मक गठबंधन को बनाया गया था।

2.6.3 दूसरा एंग्लो–मैसूर युद्ध (1780–84)

इस दूसरे युद्ध का मुख्य कारण अंगेजों और हैदरअली के बीच आपास में अविश्वास बढ़ना था। मैसूर के शासक ने कम्पनी पर आरोप लगाया कि जब मराठों ने

1771 में मैसूर पर आक्रमण किया, कम्पनी ने 1769 की संधि की शर्तों का पालन नहीं किया। वही दूसरी तरफ हैदरअली ने अपनी सैन्य जरूरतों को पूरा करने में फ्रांसीसियों को ज्यादा मददगार पाया। हैदरअली के संरक्षण में बसी फ्रांसीसी बस्ती पर अंग्रेजों के कब्जा करने के कारण, 1779 में हैदरअली, निजाम और मराठों ने परस्पर हाथ मिलाया। जुलाई, 1780 में हैदरअली ने कर्नाटक पर हमला किया और कर्नल बैली के नेतृत्व वाली अंग्रेजी सेना को हरा कर अरकॉट पर कब्जा कर लिया। लेकिन, 1781 में पोर्ट नोवो में अंग्रेजों के हाथों उसे करारी हार मिली। 1782 में, हैदरअली ने कर्नल बैथवेट के नेतृत्व वाली अंग्रेजी सेना को एक बार फिर बुरी तरह से हराया। इस प्रकार, युद्ध में कभी हार और कभी जीत के सिलसिले के दौरान 1782 में हैदरअली की मौत हो गई और उसका अधिकांश अधूरा काम उसके पुत्र टीपू सुल्तान के जिम्मे आया। चूंकि कोई भी पक्ष एक दूसरे को हराने में सक्षम नहीं था, अन्ततः एक दूसरे के जीते हुए भू–भाग को वापस लौटाने के आधार पर 1784 में मंगलौर में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए और दोनों पक्षों के बीच शान्ति कायम हुई।

2.6.4 तीसरा एंग्लो–मैसूर युद्ध (1790–92)

इस युद्ध का कारण ट्रावनकोर पर आक्रमण था। यह एक छोटा सा राज्य था और इसका कम्पनी के साथ गठबंधन था। निजाम और मराठा सेना के सहयोग से अंग्रेजों ने टीपू सुल्तान के खिलाफ युद्ध का एलान कर दिया। 1792 में, नए गवर्नर जरनल, लॉर्ड कार्नवाकिस के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना ने श्रीरंगपटम की ओर कूंच किया और मैसूर की सेना को पराजित करके उन्हें एक संधि पर हस्ताक्षर के लिए मजबूर किया। श्रीरंगपटम की इस संधि के फलस्वरूप टीपू सुल्तान को अपना लगभग आधा भू–भाग विजेता गठबंधन को सौंपना पड़ा। अंग्रेजों को बड़ामहल, डिन्डीगुल और मालाबार मिला, जबकि मराठों को तुंगमद्रा क्षेत्र में भू–भाग मिला और निजाम को कृष्णा से पेन्नार तक के क्षेत्र पर कब्जा मिला। मैसूर के पराजित शासक को तीन करोड़ रूपये से ज्यादा का युद्ध हरजाना भरने को भी कहा गया।

2.6.5 चौथा एंग्लो–मैसूर युद्ध (1799)

नया गवर्नर जरनल वेलेजली चाहता था कि टीपू सुल्तान फ्रांसीसियों से मित्रता छोड़कर अंग्रेजों के गठबंधन में शामिल हो। टीपू सुल्तान ने अफगानी जमान शाह को पत्र लिखकर पंजाब पर आक्रमण करने के लिए उकसाया था। इस वजह से भी अंग्रेज टीपू सुल्तान से नाराज थे। मराठा और निजाम अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। वेलेजली ने

फरवरी 1799 में टीपू सुल्तान के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। 4 मई 1799 को श्रीरंगपटम अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गया। टीपू सुल्तान मारा गया और उसके पुत्र को आत्मसमर्पण करना पड़ा। कम्पनी ने कनारा, कोयम्बट्र और श्रीरंगपटम तथा पूर्व के अन्य भू–भाग को अपने कब्जे में ले लिया तथा पुराने हिन्दू वोडियार राजवंश के प्रमुख को मैसूर का राजा बना दिया। हिन्दू शासक के अधीन नए मैसूर राज्य ने जुलाई 1799 में अंग्रेजों के साथ एक सहायक संधि पर हस्ताक्षर किए। जिससे इस राज्य की स्थिति कम्पनी पर निर्भर राज्य जैसी हो गई।

2.7 अंग्रेज–मराठा युद्ध (एंग्लो–मराठा युद्ध)

पानीपत के तीसरे युद्ध (1761) से उत्तर में मराठों की सर्वोच्चता को गहरा धक्का लगा। पेशवा के चाचा, रघुनाथराव द्वारा पेशव पद हड़पने के लिए रचे षडयंत्र से स्थिति और भी खराब हो गई। 1761 में माधवराव पेशवा बने और उन्होंने सारी दिक्कतों पर विजय पाई।

2.7.1 पहला एंग्लो–मराठा युद्ध (1775–82)

मराठों की आन्तरिक नाराजगी और अंग्रेजों की दिन–प्रतिदिन बढ़ती महत्वाकांक्षा पहले एंग्लो–मराठा युद्ध के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार थीं। 1772 में युवा पेशवा माधव राव की मृत्यु हो गई। इसके बाद उत्तराधिकार के लिए एक के बाद एक संघर्ष हुए। माधवराव के चाचा रघुनाथ राव ने साजिश रच कर 1773 में माधवराव के भाई एवं उत्तराधिकारी नारायण राव की हत्या कर दी। हालांकि रघुनाथ राव पेशवा बन गया, लेकिन नारायण राव के मृत्योपरान्त पुत्र पैदा होने से, जिसका नाम सवाई माधणराव था, उसे अपनी पेशवाई पर खतरा नजर आने लगा। वह इस हद तक हताश हो गया कि उसने अंग्रेजों की सैन्य टुकड़ी की मदद से अपने पद को सुरक्षित बनाने के लिए बॉम्बे सरकार के साथ सूरत की संधि (1775) पर हस्ताक्षर कर दिए। इस दौरान, अंग्रेज महाद जी सिंधिया को पेशवाई विवाद से अलग करने में सफल रहे और उसकी मध्यस्थता से यह संधि सम्पन्न हुई। इस संधि के द्वारा रघुनाथ राव ने सालसेत्ते और बसाइन पर अपना अधिकार त्यागने और कम्पनी के शत्रुओं के साथ कोई भी गठबंधन न करने का वायदा किया। इसके बाद हुए युद्ध में हार–जीत का सिलसिला तब तक चलता रहा जब तक कि दोनों पक्षों को युद्ध की निरर्थकता समझ नहीं आई और सलबल की संधि (1782) के रूप में इस युद्ध का अन्त हुआ। सलबल की संधि से अंग्रेजों और मराठों के

बीच बीस वर्ष तक शान्ति रही और इस संधि से अंग्रेजों को मैसूर पर दबाव डालने के लिए मराठों की सहायता भी मिली।

2.7.2 दूसरा एंग्लो–मराठा युद्ध

दो बृद्धिमान प्रशासकों महाद जी सिंधिया (1794) और नाना फड़नवीस (1800) की मृत्यु से मराठा शक्ति में जो शून्य पैदा हुआ था उसे भरना मुश्किल था। महाद जी सिंधिया के उत्तराधिकारी दौलत राव सिंधिया तथा जसवन्त राव छोल्कर के बीच सत्ता के लिए जबर्दस्त प्रतिद्वंदिता थी, दोनों ही पूना के प्रशासन पर अपनी पकड़ चाहते थे। 1802 में, होल्कर दौलतराव और पेशवा बाजीराव द्वितीय की सेनाओं को पूना के निकट हराने में कामयाब रहा। पेशवा बाजीराव द्वितीय भागकर बसाइन चला गया और वहाँ उसने 31 दिसम्बर, 1802 को अंग्रेजों के साथ एक सहायक संधि की। यह मराठा गौरव पर एक गहरा आघात था। 1803 में, सिंधिया और भोंसले का अंग्रेजों से युद्ध हुआ। उन्हें आर्थर वेलेजली और लॉर्ड लेक के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा। देवगांव की संधि (17 दिसम्बर 1803) के द्वारा भोंसले ने बालासोर और कटक प्रान्त पर अपना अधिकार छोड़ दिया तथा सिंधिया ने सुरजी अर्जन गांव की संधि (30 दिसम्बर, 1803) के द्वारा कम्पनी को गंगा–यमुना दोआब का क्षेत्र और साथ ही अहमदनगर, भड़ौच सौंप दिया तथा मुगल साम्राज्य पर अपने सारे दावे त्याग दिए। निजाम, गायकवाड़ और पेशवा ने 1804 में बुरहानपुर की एक और संधि के द्वारा तथा सिंधिया ने लॉर्डशिप के बारे में सहायक गठबंधन पर सहमति दे दी। लेकिन, 1804 में होल्कर को कम्पनी के साथ एक और संघर्ष में उलझना पड़ा और नवम्बर 1804 में फ्रेजर और लेक के हाथों शिकस्त झेलनी पड़ी। जसवंत राव होल्कर की पराजय के बाद राजपुर घाट की संधि (25 दिसम्बर 1805) हुई। इस संधि के द्वारा मराठा सरदार चम्बल के उत्तर में स्थित स्थानों, बुन्देलखण्ड, पेशवा तथा कम्पनी के अन्य साथियों पर अपने दावों को त्यागना पड़ा। इस संधि के साथ दूसरा एंग्लो–मराठा युद्ध समाप्त हो गया।

2.7.3 तीसरा एंग्लो–मराठा युद्ध (1817–18)

दूसरे एंग्लो–मराठा युद्ध ने मराठा सरदारों की राजनीतिक सत्ता को चकनाचूर कर दिया। लेकिन वे अभी भी सक्रिय थे और वे अपनी खोई हुई आजादी पुनः हासिल करने के घोर प्रयास कर रहे थे। पेशवा अंग्रेजों के सख्त नियंत्रण में तिलमिला रहा था और उसने ही अपनी खोई सत्ता पाने की दिशा में सबसे पहले कदम उठाया। पूना के अंग्रेज रेजीडेन्ट, एलफिन्स्टन ने पेशवा को 13 जून, 1817 को एक नई संधि पर हस्ताक्षर

करने के लिए मजबूर किया। इस संधि के द्वारा, पेशवा ने इस पद के रूप में अपना दावा त्याग दिया और साथ ही मराठा संघ की सरदारी भी उसे छोड़नी पड़ी। वहीं दूसरी तरफ, लॉर्ड हेस्टिंग्स ने दौलत राव सिंधिया को भी 5 नवम्बर, 1817 को ग्वालियर की संधि के लिए मजबूर किया। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने हताश होकर ब्रिटिश दुरभिसंधि से छुटकारा पाने के लिए अन्तिम प्रयास किया और पूना के समीप किर्की में अंग्रेजों पर अक्रमण कर दिया। दौलत राव सिंधिया, नागपुर के अप्पा राव और मल्हार राव होल्कर ने भी अंग्रेजों के खिलाफ हथियार उठा लिए। पेशवा को किर्की में और इसी तरह उपरोक्त तीनों को पराजय का सामना करना पड़ा। पेशवा की सेना की अंतिम पराजय अष्टि में हुई और उसने, 2 जून, 1818 को समर्पण कर दिया।

इस प्रकार ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ मराठों का संघर्ष पूरी तरह समाप्त हो गया तथा मराठा सरदारों के साथ एक नया बन्दोबस्त किया गया। पेशवा ने अपना पदनाम और अधिकार हमेशा के लिए त्याग दिए और इसके बदले उसे पेंशन के रूप में 8 लाख रूपये मंजूर किए गए तथा शेष जीवन बिताने के लिए कानपुर के पास बिद्र जाने के लिए मजबूर किया गया। तथापि, सतारा के राजाओं के रूप में शिवाजी के वंशजों के लिए सतारा के निकट एक छोटा सा जिला छोड़ दिया गया। पेशवा के राज्य का शेष सारा भाग बॉम्बे प्रेसीडेंसी में मिला दिया गया।

2.8 अंग्रेज–सिख युद्ध (एंग्लो–सिख युद्ध)

सिखों को 18वीं सदी के मध्य में प्राधान्यता मिली। मुगलों और अफगानों के खिलाफ संघर्ष के दौरान, वे विशेष प्रकार के दस्तों के रूप में संगठित थे, जिन्हें मिस्ल कहा जाता था और मिस्ल के सरदार को मिस्लदार कहा जाता था। इन मिस्लों की संख्या बाद के वर्षों में बढ़ती चली गई और इन्होंने पंजाब के एक बहुत बढ़े हिस्से को आपस में बांट लिया। रणजीत सिंह का जन्म 1780 में हुआ था। सुकेरचकिया मिस्ल के सरदार के रूप में, रणजीत सिंह ने सभी मिस्लों को एकजुट करके एक सिख राज्य की स्थापना की। इन्होंने 25 अप्रैल, 2007 को अमृतसर में अंग्रेजों के साथ एक चिरस्थायी संधि की और सतलुज को अंग्रेजों के संरक्षण में दे दिया तथा अंग्रेजों की सीमा को जमुना से सतलुज तक फैला दिया।

2.8.1 पहला एंग्लो–सिख युद्ध (1845–46)

जून, 1839 में रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद, सिख साम्राज्य में अस्तव्यस्तता और अराजकता फैल गई। सेना राजनीतिक फैसले लेने लगी। लेकिन हालात नहीं बदले, इस

बीच, रणजीत सिंह के सबसे छोटे पुत्र, दिलीप सिंह जो कि अवयस्क था, के सितम्बर 1843 में गद्दी पर बैठने और उसकी माता रानी जिंदां के प्रतिशासक रानी के तौर पर राजकाज सम्भालने तक दो शासकों की हिंसा में हत्या हो चुकी थी। लेकिन, हालात सुधरने के बजाय दिन प्रतिदिन बिगड़ते चले गए।

लाहौर दरबार सेना के नियंत्रण से छुटकारा पाना चाहता था। इसलिए उसने इस उम्मीद में सेना को अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिये उकसाया कि इससे सेना की ताकत कम हो जाएगी। दिसम्बर, 1845 में सिख सेना ने सतलुज पार करके अंग्रेजों की जमीन पर आक्रमण किया। एक के बाद एक मुठभेड़ में सिख सेना की हार हुई और 20 फरवरी 1846 को अंग्रेजों ने लाहौर पर कब्जा कर लिया। इस पराजय के बाद 9 मार्च, 1846 को लाहौर की संधि हुई। इस संधि के द्वारा सिखों को, जलंधर दोआब, काश्मीर और इसके अश्रित प्रदेश अंग्रेजों को देने पड़ें। अवयस्क दिलीप सिंह को महाराजा के रूप में मान्यता दी गई और लाहौर में एक रेजीडेंट नियुक्त कर दिया गया। 16 दिसम्बर, 1846 को एक अनुपूरक संधि पर हस्ताक्षर हुए। जिसके अनुसार, राजकाज चलाने के लिए 8 सरदारों की एक प्रतिशासक परिषद बनाने का प्रावधान किया गया, जिसका प्रमुख ब्रिटिश रेजीडेंट सर हैनरी लारेंस बनाया गया।

2.8.2 दूसरा एंग्लो–सिख युद्ध (1848–49)

यह व्यवस्था ज्यादा समय तक नहीं टिकी और 1848 में, मुल्तान के गवर्नर, दीवान मुल्कराज ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। सितम्बर तक सिखों की एक बड़ी सेना के मुल्कराज के साथ मिल जाने से हालात और गम्भीर हो गए। छोटा सा विद्रोह अब एक बड़ा आकार ले चुका था और इसकी गम्भीरता को समझते हुए, डलहौजी ने युद्ध की घोषणा कर दी। रामनगर (16 नवम्बर, 1848) और चिलिअनवाला (13 जनवरी, 1849) की लड़ाई, 29 मार्च, 1849 को गुजरात (चेनाब के नजदीक एक कस्बा) की निर्णायक लड़ाई में तब्दील हो गई। डलहौजी ने एक घोषणा पत्र द्वारा पूरे पंजाब को हड़प लिया और महाराजा दिलीप सिंह को पेंशन भोगी बनाकर उसकी माता रानी जिंदां के साथ इंग्लैण्ड भेज दिया। पंजाब का प्रशासन एक बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को सौंप दिया गया। इस बोर्ड को भी 1853 में भंग कर दिया गया और इसके स्थान पर जॉन लारेंस को पंजाब का चीफ कमिश्नर बना दिया गया।

2.9 हड़प नीति के अन्य प्रावधान

2.9.1 सहायक मैत्री

वेलेजली (1798–1805) ने भारतीय रियासतों को अंग्रेजों की राजनीतिक सत्ता के दायरे में लाने के लिए सहायक मैत्री की नीति का रास्ता अपनाया। यह नहीं कहा जा सकता कि यह नीति केवल बेलेजली के दिमाग की उपज थी। क्योंकि सबसे पहले क्लाइव ने 1765 में अवध के नवाब सुजा–उद–दौला के साथ इस संधि का उपयोग किया। इसलिए, भारतीय राजाओं की आजादी हड़पने में, वेलेजली की इस योजना को रॉबर्ट क्लाइव की नीति का अद्यतन और सुपरिष्कृत रूप कहा जा सकता है।

सहायक मैत्री योजना का स्वरूप आसान था। इसके अनुसार, भारतीय रियासतें अंग्रजों की इजाजत लिए बिना किसी भी अन्य रियासत से कोई युद्ध नहीं करेंगी और न ही कोई वार्ता या संधि करेंगी। भारतीय राजा को अपनी जमीन पर ब्रिटिश सैन्य दस्ता स्थायी रूप से तैनात करने को मजबूर किया गया और साथ ही सैन्य टुकड़ी का व्यय वहन कटने या इस व्यय के बदले अपना भू–भाग अंग्रेजों को देने के लिए कहा गया। इस संधि प्रस्ताव में यह भी प्रावधान था कि भारतीय शासक अपने दरबार में ब्रिटिश रेजीडेन्ट रखेगा और इसके बदले में अंग्रेज उसे उसके सभी दुश्मनों के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करेंगे। अंग्रेजों ने संधि प्रस्ताव स्वीकार करने वाले मित्र राज्यों के आन्तरिक विवाद में कोई दखल न देने का वायदा भी किया।

दरअसल, इस मैत्री संधि पर हस्ताक्षर करके, भारतीय शासक अपनी आजादी लगभग खो देता था और अंग्रेजों का अधीनस्थ बन जाता था। बाहरी मामलों या अन्य राज्यों के साथ संबंध के मामले में उसके सभी सम्प्रभु अधिकार छीन लिए गए थे और वह ब्रिटिश रेजीडेन्ट का गुलाम बन गया था। संक्षिप्त में कहा जाए तो, भारतीय राजा बिना दांतों और नाखून वाला शेर का पुतला बन कर रह गया था।

2.9.2 पतन का सिद्धान्त

लॉर्ड डलहौजी के प्रशासन में ब्रिटिश साम्राज्य का अभूतपूर्ण विस्तार हुआ। उसका मानना था कि जब भी सम्भव हो राज्य हड़प लिया जाए। उसकी हड़प नीति का पहला भाग पतन का सिद्धान्त था। इस सिद्धान्त का मतलब था कि राज्य का स्वाभाविक वारिस न होने पर, निर्भर राज्य या अंग्रेजों द्वारा बनाए गए राज्य कम्पनी के हो जाएंगे। इसमें यह भी निर्धारित किया गया था कि दत्तक पुत्र तभी कानूनी वारिस माना जाएगा जब ब्रिटिश सरकार उसे मान्यता देदे। डलहौजी से पहले कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स 1834 में ही इस नीति को मान्यता दे चुके थे। यह सिद्धान्त 1839 में माण्डवी पर, 1840 में कोलाबा और जालौन पर तथा 1840 में सूरत पर लागू किया जा चुका था। डलहौजी के प्रशासन

में इस सिद्धान्त के द्वारा छीने गए राज्यों में सतारा (1848), भगत (1850), उदयपुर (1852), झांसी (1853) और नागपुर (1854) शामिल हैं। अतः डलहौजी ने देश के राजनीतिक एकीकरण और प्रशासनिक समेकन में इस सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में जम कर प्रयोग किया।

2.10 अभ्यास प्रश्न

(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

1. दक्षिण में अंग्रेज–फ्रांसीसी युद्ध में फ्रांसीसियों की हार पर टिप्पणी लिखें।
2. 1757 में दीवानी प्रदान करने के क्या प्रभाव पड़े ?
3. सहायक मैत्री नीति के कुछ प्रमुख तत्वों पर टिप्पणी लिखें।
4. पतन के सिद्धान्त के कुछ प्रमुख तत्वों पर टिप्पणी लिखें।

अभ्यास (लम्बे उत्तर वाले प्रश्न)

1. 1600 से अठारहवीं सदी के मध्य तक अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के विस्तार पर प्रकाश डालें।
2. भारत के इतिहास में बक्सर के युद्ध को प्लासी के युद्ध से ज्यादा महत्वपूर्ण क्यों माना जाता है।
3. 1770 से 1818 के बीच अंग्रेज–मराठा संबंधों की समीक्षा करें।
4. इलाहबाद की संधि (1765) के बाद और 1857 के विद्रोह तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार पर प्रकाश डालें।

2.11 संदर्भ ग्रंथ

- चौधरी, के.सी., हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, न्यू सेन्ट्रल बुक एजेंसी, कलकत्ता, पुनर्मुद्रित 2000।
- रॉय चौधरी एस.सी., हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, सुरजीत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999।
- मजूमदार आरसी (एट आल) ब्रिटिश पैरामाउन्ट्सी एण्ड इंडियन रेनेशां पार्ट I, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे 1988।
- ग्रोवर बी.एल., और मेहता अल्का, ए न्यू लुक एट मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री (1717 टू दी मॉडर्न टाइम्स), एस चान्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2012।
- सेन एस.एन., मॉडर्न इंडिया, न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, कलकत्ता 1991।

इकाई तीनः ब्रिटिश सत्ता का विस्तार : विचारधारा एवं वाणिज्यवाद

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय अर्थव्यवस्था का औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदलना

3.4 भारतीय कृषि का विस्तार और बाजारीकरण

3.4.1 जमींदारी व्यवस्था/स्थायी बन्दोबस्त

3.4.2 रैयतवारी व्यवस्था

3.4.3 महलवारी व्यवस्था

3.5 नए राजस्व बन्दोबस्त के परिणाम

3.5.1 कृषक समाज पर इनका प्रभाव

3.5.2 अंग्रेजों की लगान नीतियों का आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

3.5.3 किसानों की कर्जदारी में वृद्धि

3.5.4 भारतीय कृषि का बाजारीकरण

3.6 उद्योगों का पतन और शिल्पकारों के बदलते हालात

3.7 अन–औद्योगीकरण (अनौद्योगीकरण)

3.8 सम्पदा पलायन

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रंथ

3.1 प्रस्तावना

भारत में अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए अंग्रेज उपनिवेशवादियों के विभिन्न तरीकों के बारे में हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके है। अब इस अध्याय में हम भारत की पारम्परिक अर्थव्यवस्था के औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदलने पर चर्चा करेंगे। 17वीं शताब्दी में, भारत के एशियाई देशों के साथ फलता–फूलता व्यापार था। एशियाई देश, अरब से चीन तक और अफ्रीका के पूर्वी तट पर बसे देशों के साथ भारत के व्यापारिक रिश्तों से देश के उद्योगों और कृषि दोनों को फायदा मिला। साथ ही, देश के अन्दर विभिन्न प्रान्तों के बीच समृद्ध व्यापार भी भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू था। लेकिन भारत का यह जीवन्त व्यापार

औरंगजेब के शासन के अन्तिम दिनों में सिमटने लगा। इसका कारण, दक्षिण में औरंगजेब के लम्बे समय तक युद्धरत और कमजोर शाही प्रशासन के चलते देश में व्याप्त अराजकता थी। औरंगजेब की मौत के बाद जो हालात बने, वे निरन्तर उत्पादन और व्यापारिक वस्तुओं के वितरण के लिए अनुकूल नहीं थे और इससे भारतीय अर्थव्यवस्था को गहरा धक्का लगा। देश में राजनीतिक स्थिरता नहीं रही और विद्रोहों तथा युद्धों ने इसे अस्त–व्यस्त कर दिया था। फलता–फूलता व्यापार, स्थानीय राजाओं और छोटे–मोटे सरदारों द्वारा वसूले जाने वाले आयात शुल्कों से थम गया था। ऐसे समय में, पश्चिमी देशों ने इस व्यवस्था–विहीन स्थिति का भरपूर लाभ उठाया। मुगल प्रशासन ने अपनी समुद्धी सेना (नौसेना) रखने के प्रति लापरवाही बरती। हिन्द महासागर में यूरोपीय छिछोरों की पैठ बनने का यह एक बड़ा कारण था। अतः, पतनशील व्यापारिक नौशक्ति की वजह से दक्षिण–पूर्व एशिया, पश्चिम एशिया और अफ्रीका में भारत को अपने प्राचीन और पारम्परिक बाजारों से हाथ धोना पड़ा। प्लासी और बक्सर के युद्ध भारत के पारम्परिक व्यापार और कृषि के लिए ताबूत में आखिरी कील साबित हुए। अंग्रेजों ने अवध के नवाब पर अपनी अहम जीत के बाद बंगाल के समृद्ध प्रान्तों पर अपनी पकड़ बनाने में देरी नहीं की। बंगाल के प्रशासन पर अंग्रेजों के वर्चस्व से, आत्मनिर्भर और मांग से अधिक वाली भारतीय अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था में तब्दील होने लगी।

3.2 उद्देश्य

- भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक विस्तार का अध्ययन करना।
- भारतीय व्यापार और उद्योग में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए उपनिवेशवादियों द्वारा अपनाए गए अनेक तौर–तरीकों को भली–भांति समझना।
- भारतीय सम्पदा की लूट के लिए अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई भू–राजस्व नीतियों का समझना।
- ''ग्रामीण ऋणग्रस्ता'', गरीबी में बढ़ोत्तरी और भारतीय फसलों के वाणिज्यीकरण की जांच करना।
- ''सम्पदा पलायन'' की अवधारणा का अध्ययन करना।
- भारतीय हस्तकला के पतन का अध्ययन करना।

3.3 भारतीय अर्थव्यवस्था का औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदलना

1757 से 1947 तक, अंग्रेजों ने अपनी व्यापारिक सुविधाएं बढ़ाने और भारत के आर्थिक संसाधनों का दोहन करने के लिए अनेक प्रकार की आर्थिक नीतियाँ अपनायीं। मार्क्सवादी विद्वान और बोली विशेषज्ञ आर0पी0 दत्त के अनुसार, औपनिवेशिक सरकार ने भारत के आर्थिक संसाधनों का तीन अलग–अलग चरणों में दोहन किया। अपनी चिरस्थायी कृति ''इंडिया टुडे'' में उन्होंने पहले चरण को **तिजारती चरण** (1757–1813) कहा है। दत्त का तर्क है कि इसमें

कम्पनी ने व्यापार पर एकाधिकार जमाया और बंगाल के दस्तकारों पर घौंस जमाकर उन्हें अपने उत्पाद सस्ती कीमतों पर बेचने के लिए मजबूर किया। दत्त ने 1813–1857 की अवधि को दूसरा चरण कहा है। दोहन के इस दूसरे चरण के दौरान, भारत ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चा माल निर्यात करने वाला प्रमुख देश और ब्रिटेन में बनी वस्तुओं के लिए एक मुख्य बाज़ार बना। इस चरण में, भारत में बने उत्पादों को इंग्लैण्ड में बने मशीनी उत्पादों से कड़ा मुकाबला मिला। उन्होंने ब्रिटिश लूट के अन्तिम चरण (1860 से) को **वित्तीय पूंजीवाद** का युग कहा है। इस चरण में, अंग्रेजों ने अपनी राजनीतिक और व्यापारिक जरूरतों के लिए, भारत में रेलवे, डाक और टेलीग्राफ (तार) व्यवस्था कायम की, जिसके चलते, अन्ततः भारतीय जनता कर्ज के बोझ तले दब गई। यदि हम भारतीय उप–महाद्वीप में अंग्रेजों के आर्थिक विस्तार का गहराई से विश्लेषण करें तो पाएंगे कि आर0पी0 दत्त की विवेचना बिल्कुल सही थी।

बंगाल में राजनीतिक घटनाक्रम (1757–65) और फ्रांसीसियों (1756–63) तथा डचों (1659) पर अंग्रेजों की विजय ने भारत के व्यापार, वाणिज्य, आर्थिक संसाधनों और उद्योग पर उनके एकाधिकार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर दी थीं। ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्राथमिक उद्देश्य व्यापार के जरिए कमाई करना था। कम्पनी ने भारत को गुलाम बनाने के अपने अंतिम लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए व्यापारीक सुविधाओं को राजनीतिक दादागीरी से जोड़ा। 1757 के बाद, अंग्रेजों ने बंगाल के जमीनी व्यापार पर बड़े पैमाने पर कब्जा किया। कम्पनी के अधिकारियों और नौकरशाहों ने नमक, सुपारी, तम्बाकू जैसी जिन्सों के व्यापार पर कब्जा किया। सभी यूरोपीय व्यापारियों को इन वस्तुओं के व्यापार की कतई इजाजत नहीं थी। मीर कासिम के शासन काल में, यह खराब व्यवस्था नवाब और अंग्रेजों के बीच नियमों के उल्लंघन का सबसे महत्वपूर्ण कारण बनी। नवाब ने 1762 में कम्पनी के गवर्नर को पत्र लिख कर इस ओर उसका ध्यान खींचा। *''वे हिंसा और दमन के जरिए एक चौथाई कीमत पर उनकी वस्तुएँ जबरन खरीदते ....., वे एक रूपया कीमत वाली वस्तु के लिए रियाया को पाँच रूपये देने के लिए बाध्य करते है'* कम्पनी के दस्तावेजों से इस खरीद–फरोख्त की पुष्टि तो होती है, लेकिन, असलियत यह थी कि जो लोग इस अनुचित मांग का विरोध करते थे उन्हें कोड़े मारे जाते थे और कैद कर लिया जाता था। अतः ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल की राजनीतिक सत्ता हासिल करने के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक हितों के अधीन ला दिया। 1769 में कोर्ट ऑफ डायरेकटर्स ने एक सख्त आदेश जारी किया, जिसमें कहा गया कि ''बंगाल में कच्चा सिल्क तैयार करने वालों को बढ़ावा दिया जाए और रेशमी वस्त्र बनाने वालों को हतोत्साहित किया जाए और रेशम कातने वालों को कम्पनी के कारखानों में काम कटने के लिए मजबूर किया जाए तथा सरकार के अधिकार द्वारा सख्त जुर्माना लगाकर इन्हें अपने घरों में काम करने

से रोका जाए।''18वीं सदी के बाद वर्षों ने बंगाल से भारी मात्रा में सम्पदा का शोषण और उद्योगों के विनाश तथा भू–राजस्व में लगातार वृद्धि ने बंगाल को पूरी तरह तबाह कर दिया।

अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार, शिल्प और उद्योगों को तबाह करने के लिए संदेहास्पद तरीके अपनाए। ब्रिटेन की संसद ने ब्रिटिश कपड़ा उद्योगों के संरक्षण के लिए अनेक प्रकार के निषेधात्मक और व्यय संबंधी कानून पारित किए। बंगाल के मूल्यवान वस्त्रों, जिनकी पूरी दुनियाँ में मांग थी, पर अंग्रेजों ने एकाधिकार कर लिया। कम्पनी बनुकरों को कर्जा दे कर उन पर अपना एकाधिकार कर लेती थी ताकि उन्हें दूसरों के लिए काम न करें। कम्पनी के एक वरिष्ठ (सीनियर) नौकरशाह ने 1772 में लिखा कि जो बुनकर कम्पनी के अलावा किसी अन्य को अपनी वस्तुएँ बेचने का दुस्साहस करते थे, उन्हें बहुधा जेल में डाल दिया जाता था और उन पर भारी जुर्माना लगाया जाता था तथा अत्यन्त नीच तरीके से उन्हें प्रताड़ित किया जाता था। इन तौर–तरीकों का परिणाम यह हुआ कि बुनकर समुदाय ने अपना पेशा ही छोड़ दिया और अन्ततोगत्वा बंगाल में बुनाई उद्योग का पतन हो गया।

प्लासी के बाद, कम्पनी के नौकरशाहों ने नमक निर्माण और नमक बिक्री को अपने नियंत्रण में लाने का प्रयास किया। 1765 में, रॉबर्ट क्लाइव ने एक सोसाइटी के माध्यम से नमक के निर्माण और व्यापार पर अपना कब्जा जमाया। यह व्यवस्था ज्यादा नहीं चली और 1768 में इसे समाप्त कर दिया गया तथा इसकी जगह एक नई व्यवस्था बनाई गई, जिसमें भारतीय व्यापारियों और जमींदारों को नमक बनाने की अनुमति दी गई। इन लोगों को बनाए गए नमक पर कम्पनी को 30 प्रतिशत का शुल्क देना पड़ता था। 1772 में, इसे फिर बदला गया, स्थानीय जमीदारों और व्यापारियों को दी गई नमक सुविधा समाप्त कर दी गई और कारोबार पर कम्पनी का एकाधिकार फिर से कायम हो गया। 1776 में, वारेन हेस्टिंग्स ने एक नई स्कीम शुरू की, इसमें नमक बनाने और बेचने की सुविधा लोगों को पट्टे पर दी गई। चार वर्ष के अन्दर ही, कम्पनी सरकार ने फिर से यह कार्य अपने हाथ में ले लिया।

शोरा बारूद बनाने के काम आता था और यूरोपीय देशों में इसकी भारी मांग थी। 1758 में, रॉबर्ट क्लाइव ने कठपुतली नवाब, मीर जाफर से बंगाल में इस व्यापार पर कम्पनी के एकाधिकार की सुविधा हासिल कर ली। इस रियायत से, डच ओर फ्रांसीसी केवल शान्तिकाल में ही अंग्रेजों से शोरा खरीद सकते थे। 1793, तक नील निर्यात की एक दूसरी महत्वपूर्ण वस्तु बन गई। नील संयंत्रों के मालिक ''मुक्त अंग्रेज व्यापारी'' थे। उन्होंने नील की खेती करने वाले गरीब किसानों का अत्यधिक अमानवीय शोषण किया। इसी प्रकार, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल और बिहार की अफीम पर भी अपना एकाधिकार जमा लिया। यह अफीम ज्यादातर चीन को निर्यात की जाती थी। इंग्लैण्ड में भारी शुल्क लगाकर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी दमघोटू नीतियों के द्वारा बंगाल के समृद्ध चीनी उद्योग को भी बरबाद कर दिया। ब्रिटिश

नौवहन उद्योग को फायदा पहुँचाने के लिए भारतीय नौवहन पर लगाए गए प्रतिबंधों के कारण फलते–फूलते इस उद्योग को भी गहरा झटका लगा। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति और भारत में राजनीतिक दादागीरी के बल पर ब्रिटिश निर्माता भारत को उनके तैयार माल के लिए एक विशाल बाजार के रूप में तब्दील करने में कामयाब रहे। कानूनों और प्रशासनिक नीतियों के माध्यम से, ब्रिटिश सरकार ने भारतीय बाजारों का पूरी तरह दोहन किया। कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने 1763 में पहली बार बंगाल में लंकाशायर में बना कपड़ा बेचने की पहल की। इसी प्रकार, बंगाल में भारतीय सूती कपड़े और मसलिन के स्थान पर मानचेस्टर में भाप से चलने वाले करघों से तैयार उत्पाद थोपने की शुरूआत हुई। ब्रिटेन के हितों को प्राथमिकता देते हुए बंगाल सरकार ने ब्रिटिश वस्तुओं पर आयात शुल्क में ढाई प्रतिशत की कटौती कर दी इससे भारतीय उद्योगों को गहरा आघात पहुंचा। असंघटित भारतीय निर्माता, उन्नत वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करने में अक्षम थे और कम्पनी की सरकार द्वारा शुल्कों में भेदभाव के चलते इस अनुचित और गैर–बराबरी वाले मुकाबलें में नहीं टिक सकते थे।

3.4 भारतीय कृषि का विस्तार और बाजारीकरण

ग्रामीण भारत पर ब्रिटिश शासन का एक महत्वपूर्ण पहलू भारतीय कृषि ढांचे में दूरगामी बदलाव था। नए प्रशासनिक तंत्र के आने की से कृषि का पुराना ढांचा धीरे–धीर ढह गया। उस समय खेती लोगों का प्राथमिक व्यवसाय था और यहां तक कि कपड़ा, चीनी, तेल आदि जैसे उद्योग, कृषि पर निर्भर थे। ब्रिटिश शासन की आधी सदी में ही, जमीन के मालिकाना हक और जमीन के लगान के आकलन और वसूली के पैटर्न में स्पष्ट बदलाव आया। यह बदलाव भारतीय गांवों की आत्मनिर्भरता और अंग्रेजों से पहले की कृषि व्यवस्था के विनाश का कारण भी बना।

प्लासी के युद्ध के बाद, अंग्रेजों ने नए नियुक्त नवाब से दीवानी (बंगाल में कर वसूली का अधिकार) भी हासिल कर ली। वारेन हेस्टिंग्स द्वारा सबसे पहले जमीन के लगान के लिए शुरू किए गए बन्दोबस्त में अजीव प्रावधान थे। उसने सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को भूमि आबंटित करने की प्रणाली शुरू की। इससे विरासत में मिलने वाली जमींदारी की व्यवस्था खत्म होने लगी और गांव की सरकार के साथ सदियों से चली आ रही सम्पर्क–कड़ी टूटने लगी और अन्ततः यह खत्म हो गई। इससे पहले, जब रॉबर्ट क्लाइव बंगाल का दीवान बना, उसने भू–राजस्व की वार्षिक व्यवस्था बनाई। लेकिन, वारेन हेस्टिंग्स ने इसे पंचवर्षीय कर दिया, पर बाद में इसे फिर वार्षिक कर दिया। इसी प्रकार, लॉर्ड कार्नवालिस ने दसवर्षीय बन्दोबस्त व्यवस्था शुरू की जिसे बाद में 1793 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्थायी बना दिया गया। यह नई व्यवस्था, जिसे आमतौर पर स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था कहा जाता है, जमींदारों के साथ की गई थी। इन्हें जमीन का पूरी तरह मालिक माना गया था और इन्हें जमीन का लगान वसूल करने का

स्थायी अधिकार दिया गया था। इसे जमींदारी भी कहा जाता है। मोटे तौर पर कहा जाए तो, अंग्रेजों ने भारत में तीन प्रकार की खेतिहर जमीन व्यवस्था अर्थात, जमींदारी कार्यकाल/व्यवस्था, महलवारी कार्यकाल/व्यवस्था और रयोतवारी कार्यकाल/व्यवस्था अपनायी।

3.4.1 जमींदारी व्यवस्था/स्थायी बन्दोबस्त

ब्रिटिश कानूनों के द्वारा जमींदारी व्यवस्था कायम की गई और अनेक गैर–आर्थिक सरोकार इनमें शामिल होने की वजह से इसे स्वीकार कर लिया गया। इस व्यवस्था को जागीरदारी, मालगुजारी, बिस्वेदारी आदि अनेक नामों से जाना जाता था। स्थायी बन्दोबस्त के तहत राज्य के भू–राजस्व एकबारगी हमेशा के लिए तय कर दिया गया, जबकि इससे पहले जमींदारी भू–भाग और भू–लगान में एक निर्धारित अवधि के बाद संशोधन किया जात था। यह अवधि 10 से 40 वर्ष तक हो सकती थी। जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, बोर्ड ऑफ रेवेन्यू (राजस्व परिषद) के अध्यक्ष सर जॉन शोर की सिफारिश पर लार्ड कार्नवालिस ने 1793 में यह व्यवस्था लागू की थी। इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत, जमींदार को जमीन के मालिक के रूप में मान्यता दी गई, जो जमीन को गिरवी रख सकता है, वसीयत में दे सकता है और बेच सकता है। इस प्रकार, ईस्ट इंडिया कम्पनी का जमींदार एक छोटा–मोटा पूंजीपति बन गया, जिन्हें अंग्रेज ''मशरूम जेंटलमेन'' कहते थे। जेंटलमेन होने के नाते सभी प्रकार के लगान देना उसका दायित्व था, चूक होने पर कम्पनी जमीन कुर्क करके बेच सकती थी। इस स्थायी बन्दोबस्त में, ब्रिटिश भारत की कुल जमीन का लगभग 15 प्रतिशत भाग शामिल था। इसे बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उ0प्र0 का बनारस सम्भाग और उत्तरी कर्नाटक में अपनाया गया था। लेकिन, इस स्थाई बन्दोबस्त में एक खामी थी। कम्पनी भू–राजस्व 89 प्रतिशत तय किया गया था, जबकि मेहनताने के रूप 11 में प्रतिशत जमींदारों के लिए छोड़ा गया था। हालांकि, जमींदार कितना लगान देगा, यह तो तय था, लेकिन जमींदार काश्तकारों से कितना लगान लेगा यह तय नहीं था। कम्पनी द्वारा छोड़ी गई इस कभी के चलते जमींदारों को काश्तकारों का शोषण करने का मौका मिला। आबादी में वृद्धि, कृषि भूमि में विस्तार, मूल्यों में वृद्धि और दिन पर दिन बढ़ती जमीन की कमी की वजह से जमींदारों का रसूख–बहुत बढ़ गया। अपनी जमीन–जायदाद पर जमींदारों के वंशानुगत अधिकार के चलते, जमीन के मूल मालिकों और काश्कारों, जिनकी नियति जमींदार की दया पर जीवित रहना था, के बीच लगान उगाहने वाले बिचौलियों और दलालों की नई जमात पैदा हो गई।

ज्यादातर जमींदार मूल रूप से खेतिहर किसान नहीं थे बल्कि पुराने जमींदारों के चरित्रहीन नौकर, कम्पनी राज से जुड़े लोगों, मातहल कृषक सरकारी कार्यालयों के क्लर्क, व्यापारी, वकील और ऐसे ही पेशों से जुड़े लोगों में से बने थे। अतः अलग–अलग पेशे के लोग होने के कारण, वे ग्रामीण समस्याओं और अव्यवस्थाओं को समझने में असमर्थ थे। इसका

परिणाम यह निकला कि बार–बार मनमाने तरीके से लगान की दरें तय की गईं और काश्कारों को उनकी पारम्परिक जमीनों से बेदखल किया गया।

3.4.2 रैयतवारी व्यवस्था

टीपू सुल्तान के साथ 1792 में श्रीनागपट्टम की संधि के बाद दस वर्ष के अन्दर अंग्रेजों ने सबसे ज्यादा समृद्ध और साफ भू–भाग हासिल कर लिया जो आगे चल कर मद्रास प्रान्त बना। अंग्रेजों की इस नई कब्जे वाली जमीन में जमीन बन्दोबस्त की एक नई व्यवस्था पनपी। मद्रास में जमीन बन्दोबस्त की इस व्यवस्था को रैयतवारी व्यवस्था नाम दिया गया। इस रयोतवारी बन्दोबस्त का सर थॉमस मुनरो से गहरा सम्बन्ध है। सर मुनरो ने सबसे पहले बारामहल का रैयतवारी बन्दोबस्त किया था। जिसमें सीधे 60,000 किसानों के साथ लगान तय किया गया था। उसके इस प्रायोगिक परीक्षण से 1,65,000 रूपये का लगान प्राप्त हुआ जो ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजस्व में जबर्दस्त इजाफा था। रैयतवारी बन्दोबस्त कम्पनी के प्राधिकारियों को पसंद आया और उन्होंने कनारा, मालाबार, तंजौर आदि जैसे क्षेत्रों में लगान बन्दोबस्त की यह व्यवस्था लागू कर दी।

रैयतवारी व्यवस्था का प्राथमिक उद्देश्य लगान के रूप में जमीन से अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करना तथा रयोतों की हालत में सुधार करना था। पहला उद्देश्य तो पूरा हो गया लेकिन दूसरा उद्देश्य अधूरा ही रहा। आधिकारिक रूप से यह कहा गया था कि रयोत जब तक जमीन का लगान देता रहेगा, उसे उसकी भूमि से बेदखल नहीं किया जाएगा लेकिन लगान की दरें इतनी ऊँची थीं कि गरीब किसानों के लिए इसका भुगतान करना आसान नहीं था। मुनरो ने काश्तकारी निर्धारित करने की सलाह दी थी ताकि रयोत द्वारा सुधार का फायदा कम्पनी को मिले। यहाँ यह बताना भी महत्वपूर्ण है कि मद्रास प्रान्त के लिए रैयतवारी व्यवस्था लागू करने से पहले इस पर विस्तार से बहस हुई। विलियम बैंटिक की राय भी मुनरो से मेल खाती थी और उसने दर्ज किया कि जमींदारी व्यवस्था बंगाल के लिए उपयुक्त थी क्यों कि वहाँ वंशानुगत जमींदार मौजूद थे और जहां तक मद्रास का मामला है, यहां ऐसी पराम्परागत जमींदारी नहीं थी। दर असल, मद्रास, रयोतों के लिए न तो कोई तयशुदा लगान था और इसमें बढ़ोतरी होने की स्थिति में न कोई सुरक्षा थी। स्वाभाविक है कि रैयतों के अधीन जमीन में सुधार का कोई इरादा नहीं था। आर0सी0 दत्त का तर्क है कि जमीन पर लगान की अनिश्चतता किसान के सिर पर तलवार की तरह लटकी रहती थी।

1855 के बाद, आकलन का अधिकार राजस्व अधिकारी को दे दिया गया, जो हर बार बन्दोबस्ती पर अपने विवेक से लगान तय कर सकता था और इस प्रकार से ''लगान के एकबारगी निर्धारण'' की अवधारणा औपचारिक रूप से समाप्त हो गयी। परिणाम यह हुआ कि

कृषि उपज लगातार गिरी और कृषकों की कर्जदारी बढ़ी जिसके चलते कृषि में मन्दी का दौर आया और अन्ततः कृषि कार्य मुनाफे का नहीं रहा, इसमें घाटा होने लगा और खेती करना अलोकप्रिय हो गया।

3.4.3 महलवारी व्यवस्था

जमींदारी और रयोतवारी जैसी बंदोबस्ती व्यवस्थाएं अंग्रेजों की उम्मीद पर खरी नहीं उतरी तो महलवारी व्यवस्था के रूप में एक नई व्यवस्था खोजी गई। 1833 से 1853 की अवधि के दौरान आर0एम0 बर्ड और जेम्स थॉमसन ने एक विस्तृत सर्वे किया तथा 30 वर्ष का आकलन तय किया। इस व्यवस्था में, राजस्व निर्धारण के लिए ग्राम या महल यानि जायदाद को एक इकाई माना गया। गांव की जमीन ग्रामीण समुदाय की थी, तकनीकी तौर पर इसे ''बटाईदार'' माना गया था और वे लगान चुकाने के लिए संयुक्त रूप से जिम्मेदार थे, हालांकि लगान देना प्रत्येक किसान का दायित्व था। अतः, निश्चय ही यह दो पर्तवाली बन्दोबस्ती थी (क) मालिकाना हक और कब्जेदारी प्रत्येक ग्रामीण को दी गई थी और सभी को खेती अलग–अलग करनी थीं, और (ख) किसान जमीन का लगान अंग्रेजों को लम्बरदार अथवा मुखिया के माध्यम से अदा करने के लिए संयुक्त रूप से जिम्मेदार थे। पहले यह व्यवस्था आगरा और अवध क्षेत्र में लागू की गई। बाद में इस महलवारी व्यवस्था में उ0प्र0 के अधिकांक्ष क्षेत्रों, मध्य प्रान्त, पंजाब आदि में थोड़े–बहुत फेर बदल के साथ लागू करके ब्रिटिश भारत के लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्र को इसमें ला दिया गया।

महलवारी व्यवस्था में, सैद्धान्तिक रूप से काश्तकार के पास अपनी भूमि के अधिकार का रिकार्ड था। सरकार भी समय–समय पर अलग–अलग प्रकार की जमीन की उत्पादकता तय करती थी। आकलन हो जाने के बाद, यह आकलन बन्दोबस्ती की पूरी अवधि तक लागू रहता था। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं था, सभी ग्रामीणों को जमीन के अधिकार नहीं दिए गए थे, बल्कि बड़े परिवार वाले कुछ रसूखदार समूहों को ही ये अधिकार मिले थे। अकेले इन समूहों ने ही संयुक्त मालिकाना हक का फायदा उठाया, जबकि सामान्य रयोतों को काश्तकार उप–काश्तकार, बटाईदार आदि बना दिया गया था। इस प्रकार, सामाजिक और आर्थिक असमानता बढ़ी और किसानों की हालत बिगड़ी। छोटे काश्तकारों के पास बहुत कम जमीन थी और गांव के मुखिया द्वारा बहुधा इनका दमन किया जाता था। इसके अलावा, इससे ग्रामीण समुदाय टुकड़ों में बंटा, सामाजिक नजरिए से यह व्यवस्था अनर्थकारी रही और आर्थिक नजरिए से यह व्यवस्था पूरी तरह से असफल रही।

3.5 नए राजस्व बन्दोबस्त के परिणाम

3.5.1 कृषक समाज पर इनका प्रभाव

अंग्रजों ने सरकार के राजस्व में इजाफे के इरादे से जमींदारी, रयोतवारी और महलवारी व्यवस्थाएं लागू की थीं। इनमें किसान और शासक के बीच सदियों पुराने रिश्ते को खत्म करके राजस्व बन्दोबस्ती की पुरानी व्यवस्था, जिसमें जमींदार किसानों का सर्वस्व था, त्याग दी गई। पुरानी व्यवस्था की जगह एक नई व्यवस्था कायम की गई, जिसमें नए जमींदार उभरे जिनके लिए सत्ता के हित सर्वोपरि थे। जमींदार जमीन के मालिक बन गए और कृषि कार्य केवल काश्तकारी (लगान देकर जमीन कमाना) बनकर रह गया। महलवारी तथा रयोतवारी के तहत, हालांकि रयोत जमीन के मालिक बने, लेकिन जमीन पर उनका हक संदेहास्पद था। स्थाई बन्दोबस्त के तहत जमींदार 12 वर्ष से ज्यादा के लिए अपनी जमीन पट्टे पर नहीं दे सकते थे, लेकिन कई जमींदारों ने अपनी जमीन पट्टे पर दे दी। तथापि, यह प्रतिबन्ध 1812 में समाप्त कर दिया गया, और पट्टा अनुबंध पर जमीन देने की कोई सीमा नहीं रही। खेतों के टुकडों–टुकडों में बंटने से जमींदारों की आर्थिक सम्पत्ति में वृद्धि हुई। जमींदारों ने अपने काश्तकारों की कमजोर माली हालत को देखकर उन्हें **तकावी** कर्जे दिए, लेकिन नए शोषणकारी लगान के दबाव में वे इस प्रथा को जारी नहीं रख सके। इसने एक नए वर्ग यानि साहूकारों या महाजनों को जन्म दिया और गरीब तथा भूखे किसान इनके शिकार बने। स्वदेशी उद्योगों का पतन, हम इस बारे में यूनिट के अगले भाग में चर्चा करेंगे, होने से लोग जीवनयापन के लिए खेती पर निर्भर होने लगे। कृषक समाज के पुराने औजारों और उपकरणों से सरकार तेजी से प्रगति करते कृषक भारत का सपना तो देख रही थी पर कृषि को बेहतर बनाने के लिए अपनी तरफ से कोई प्रयास नहीं कर रही थी।

3.5.2 अंग्रेजों की लगान नीतियों का आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

19वीं सदी में लगान की ऊँची दरों के चलते गरीबी बढ़ी और खेती–बाड़ी में गिरावट आई, इससे किसान तबाह हो गए। किसान, महाजनों, व्यापारियों, धनी किसानों और अन्य समृद्ध वर्गों के शिकंजे में फंस गए। बढ़ते बाजारीकरण से महाजनों और व्यापारियों को खेतिहर समुदाय के शोषण का मौका मिला। किसान को फसल कटाई के तुरन्त बाद अपनी फसल बेचनी पड़ती थी ताकि वो सरकार और जमींदारों तथा महाजनों को लगान और कर्ज चुका सकें। इनके अलावा, खेती पर बढ़ते आबादी के दबाव से किसानों की हालत खराब हो गई।

3.5.3 किसानों की कर्जदारी में वृद्धि

उपरोक्त कारणों से अंग्रेजों के शासन में भारतीय किसान कर्ज के बोझ तले दबता चला गया। 1880 के बाद, ग्रामीण ऋणग्रस्तता गुणोत्तर दर से बढ़ी जो चौंकाने वाली थी। हालांकि, किसानों की कर्जदारी कोई ऐसी नई घटना नहीं थी जो अंग्रेजों के शासन में घटित हो रही थी। लेकिन ब्रिटिशों का राजनीतिक वर्चस्व स्थापित होने के बाद, इस कर्जदारी को एक नया आयाम

मिला। नई परिस्थितियों के चलते अंग्रेजों ने भारी कराधान के रूप में किसानों पर नए–नए कर लगाए। ये वसूलियाँ ग्रामीण भारत की ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण बनी। महाजन, अंग्रेजों द्वारा शोषण का मुख्य औजार बने, इन्होंने कानूनी तंत्र द्वारा लागू अनुबंधों के आधार पर किसानों को कर्ज दिया। यदि किसान अपना कर्ज नहीं चुका पाता था तो उसकी सम्पत्ति कुर्क कर ली जाती थी। ग्रामीण कर्जदारी बढ़ने का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण कृषक समुदाय में व्याप्त आम गरीबी और धनवान लोगों पर इनकी निर्भरता था।

किसानों की बढ़ती ऋणग्रस्तता की वजह से रयोतवारी वाले क्षेत्रों में किसानों की जमीन बड़े पैमाने पर महाजनों के पास चली गई और जमींदारी वाले क्षेत्रों में काश्कारों को भारी संख्या में उनके खेतों से बेदखल किया गया। अलग–अलग प्रान्तों में ब्याज की दरें अलग–अलग थीं। ये ब्याज दरें 12 प्रतिशत से लेकर 200 या 300 प्रतिशत तक थीं। इसके चलते गांव के लोग साहूकार/महाजन या कर्जदाता को नफरत की नजर से देखते थे और ये तबका गांव में बदनाम था। दुर्जन स्वाभाव की वजह से इन साहूकारों को सम–सामयिक साहित्य, नाटकों और ऐसे ही कथानकों में खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नए आर्थिक माहौल से गरीबी की हालात में आए किसान अपने कर्जे के बदले महाजनों को अपनी जमीन देने लगे और इस तरह उनकी ज्यादा से ज्यादा जमीन महाजनों के कब्जे में चली गयी। ऋणग्रस्तता से ग्रामीणों की स्थिति दयनीय हो चुकी थी। हालात देखते हुए सर हैमिल्टन ने लिखा कि ऐसा प्रतीत होता है कि पूरा देश महाजनों के शिकंजे में है। वही दूसरी तरफ, कानूनी लड़ाई इतनी खचींली थी कि गरीब किसान धनवान महाजनों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। महाजन वकीलों की सहायता से लम्बे समय तक कानूनी लड़ाई लड़ सकते थे लेकिन गरीब किसान वकीलों की भारी भरकम फीस चुकाने में असमर्थ थे।

3.5.4 भारतीय कृषि का बाजारीकरण

19वीं सदी के मध्य में कृषि बाजारीकरण की नीति शुरू होने के बाद भारतीय कृषि में एक नया रूझान देखने को मिला। एक निर्धारित धनरशि लगान के रूप में अदा करने की व्यवस्था तथा गांव और खेत के रिश्ते को नए रूप में परिभाषित किए जाने की वजह से यह नया रूझान नजर आया। पहले ग्रामीण खेती का मतलब गांव के लिए फसल उत्पादन था। लेकिन अब बिक्री के इरादे से फसल और उत्पादन तय किया जाने लगा और उपज बाजार से जुड़ गई। 1833 के आस–पास, विदेशी बाजार में निर्यात के इरादे से बंगाल में जूट की खेती शुरू की गई। कुछ समय बाद कपास का निर्यात भी शुरू कर दिया गया। लेकिन, 1850 तक इन वस्तुओं का व्यापार काफी सीमित था।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत किसान मुख्यतया बाजार के लिए फसल उगाते थें ब्रिटिश शासन में ढुलाई के साधनों में सुधार होने और किसानों को कारोबारी पूंजी मिलने से बाजारी फसलों का उत्पादन बढ़ने लगा। किसानों को सरकार को भारीभरकम लगान चुकान होता था और इसके लिए उन्हें नकदी की जरूरत थी, इसलिए ऐसी उपजों की ओर उनका रूझान बढ़ा और भारतीय कृषि का बाजारीकरण होने लगा। किसान कुछ खास फसलें उगाने लगे। कपास, जूट, गेंहू, गन्ना, तिलहन, नील, अफीम आदि जैसी एकल कृषि फसलों की खेती के लिए ही गांवों की जमीन का उपयोग होने लगा। अंग्रजों ने कपास की जननी कहे जाने वाले देश को इंग्लैण्ड में बने सूती कपड़े से लाद दिया। भारतीय किसान अब भारतीय और विश्व बाजार के लिए उत्पादन करने लगे थे। इस तरह वे अस्थिर बाजार के उतार–चढ़ावों के अधीन आ गए। उन्हें, नई तकनीकों से भारी मात्रा में उत्पादन करने वाले अमरीका, यूरोप और आस्ट्रेलिया जैसे देशों से मुकाबला करना था। वही दूसरी तरफ, भारतीय किसान, अपने छोटे–छोटे खेतों में परिवार के सदस्यों के सहयोग से बैलों से खेती करते थे। इन उत्पादों से होने वाली आय लगान चुकाने के लिए भी पर्याप्त नहीं होती थी। इसके अलावा, बाजारीकरण के चलते खेतिहर किसान व्यापारियों को अपने उत्पादों की बिक्री पर निर्भर हो गए और ये व्यापारी बिचौलियों के रूप में किसानों का शोषण करते थे। ये व्यापारी अपनी समृद्ध माली हालत से किसनों की मजबूरी का पूरा लाभ उठाते थे।

इन नए हालातों से ग्रामीण समाज भयंकर गरीबी से ग्रस्त हो गए और इनका दिवाला निकल गया। ज्यादातर भारतीयों के पास सामान्य जीवन जीने के लिए भी साधन नहीं थे और बार–बार पड़ने वाले सूखे और बाढ़ में काल का निवाला बन गए। विलियम डिगबी के अनुमानों के अनुसार, 1864 से 1901 के बीच भारत में 24 बार अकाल पड़ा, जिनमें 29 मिलियन (दो करोड़ नब्बे लाख) भारतीयों की मौत हुई। 20वीं शताब्दी में भी हालात में कोई खास सुधार नहीं हुआ। आजादी से कुछ साल पहले 1943 में बंगाल में भयंकर सूखा पड़ा जिसमें 30 लाख लोगों की जान गई। ये भयंकर सूखे बताते है कि गरीबी, मुखमरी, कुपोषण और नवजात शिशुओं की मृत्युदर सारी हदें पार कर चुकी थी। भारत में पड़ने वाले सूखों की सबसे खराब खासियत यह थी कि लोग सूखा, बाढ़ फसल खराब होने और अनाज उपलब्ध न होने के कारण नहीं मरते थे, बल्कि लोगों के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा न होने के कारण मरते थे।

3.6 उद्योगों का पतन और शिल्पकारों के बदलते हालात

ब्रिटिश–पूर्व भारत में ग्रामीण उद्योग संतुलित और आत्म–निर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग था। भारतीय गांवों की सभी औद्योगिक जरूरते गांव में ही पूरी हो जाती थीं। लेकिन, ब्रिटिश सरकार द्वारा लागू सभी नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया और भारत की पारम्परिक शिल्पकला भी इससे अछूती नहीं रही। भारत की शानदार शिल्पकारी को

देखकर पश्चिमी लोग भारत को विश्व की औद्योगिक कर्मशाला समझते थे। हालांकि, भारत मूलतः कृषि प्रधान देश था, लेकिन देश के अन्दर ही समान्तर तदनुरूपी अनेक प्रकार के उद्योग भी फल–फूल रहे थे। तथापि, शाही दरबारों के खत्म होने से हस्तशिल्प की मांग में भारी कमी आई। इसी प्रकार, मुगल साम्राज्य के पतन के बाद बंगाल में निर्मित वस्तुओं की मांग गिरी। अवध के नवाब के दरबार के पतन से लखनऊ के रंगाई उद्योग को गहरा आघात लगा। वही दूसरी तरफ, भारत में अंग्रेजों के पदार्पण के बाद पाश्चात्य देशों के ऐसे पेशेवर अधिकारी आए जो स्वदेशी उद्योगों के उत्पादों को हिकारत की नजर से देखते थे और यूरोप के सस्ते सूती वस्त्र, छापे वाले सूती परिधान और अश्लील वस्त्र पसंद करते थे। पढ़े–लिखे भारतीयों ने पाश्चात्य लोगों की नकल करने की कोशिश की, यूरोपियन शैली और फैशन अपनाया। भारत की देशी कला और दस्तकारी इन अंग्रेजी–दां लोगों को अब पसंद नहीं आती थी।

आर0सी0 दत्त की टिप्पणियों के अनुसार, ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश पार्लियामेंट की अनर्थकारी नीतियों भारतीय हस्तकला के पतन के लिए मुख्यतया जिम्मेदार थीं। आरम्भ में, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारतीय शिल्पकला को प्रोत्साहित किया, क्योंकि इन हस्तनिर्मित वस्तुओं के यूरोपीय बाजार में निर्यत से उन्होंने बहुत मुनाफा कमाया। लेकिन, जल्दी ही कम्पनी को अपनी नीतियाँ बदलने के लिए मजबूर किया गया और उनसे कहा गया कि केवल कच्चे माल के निर्यात पर ध्यान दें, क्योंकि ब्रिटेन के कारखानों को इसकी जरूरत थी। यही नहीं, बिजली से चलने वाले करघों ने भी भारतीय वस्त्र उद्योग के पतन में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। कार्ल मार्क्स के शब्दों में, ''अंग्रेजों के बिजली से चलने वाले करघों ने भारत के हथकरघों को ध्वस्त कर दिया और कपास की जननी कहे जाने वाले देश को सूती सी कपड़ों से लाद दिया।''

हालांकि, भारतीय दस्तकार मशीनों से बनी वस्तुओं का मुकाबला कर सकते थे, बशर्ते कीमत के मामले में मुकाबला निष्पक्ष हो। लेकिन कीमत के मामले में तो उनके साथ भेदभाव हो रहा था। रेलवे लाइनों के निर्माण और ढुलाई के साधनों तथा संचार के साधनों में उन्नति ने आयातित वस्तुओं को देश के दूर–दराज के क्षेत्रों तक पहुँचाना आसान बना दिया। इससे वस्त्र उद्योग और शिल्पकला को जबर्दस्त नुक्सान पहुँचा। किसान भी गांवों के कुटीर उद्योग के पतन का कारण बने। सूखे के दौरान, गरीब शिल्पकार, विशेषकर बुनकर, कोई और काम तलाश कर अपना जीवन–यापन करने में असमर्थ रहे।

शिल्पकारों की स्थिति में बदलाव का एक और पहलू यह था कि वे दिहाड़ी पर काम करने वाले कामगार बनने लगे। उदाहरण के लिए पहले ये हुनरमंद लोग ग्रामीणों की जरूरतें पूरी करते थे और बाजार में बेचने के लिए कभी भी कोई औजार या उपकरण नहीं बनाते थे। नई परिस्थितियों में, बुनकर अपने उत्पादों की स्थानीय और दूर–दूर के बाजार में बिक्री के लिए बिचौलियों पर निर्भर होने लगे। इसके अलावा, बाजार में टिकने के लिए और ज्यादा पूंजी की

जरूरते पड़ने लगी तथा शिल्पकार बिचौलियों के शिकंजे में फसने लगे। कई शिल्पी अपना पारंपरिक पेशा छोड़ कर शहरों को पलायन कर गये और वहां मजदूरी पर काम करने लगे या बहुत कम मजदूरी पर दूसरों के लिए अन्य काम करने लगे। गौरतलब है कि गृह उद्योगों के पतन से तत्कालीन अर्थव्यवस्था को गहरा झटका लगा और ग्रामीणों का आर्थिक जीवन तबाह हो गया। परिणामस्वरूप, बड़ी संख्या में शिल्पकार बेरोजगार होकर खेती पर निर्भर हो गए।

3.7 अन–औद्योगीकरण (अनौद्योगीकरण)

जैसा कि अभी तक हमने देखा कि 19 वीं सदी के प्रथम उत्तरार्ध से लेकर 1880 तक, भारत की अर्थव्यवस्था में एक विचित्र बदलाव आया। जब यूरोपीय देशों का उद्योगीकरण हो रहा था, तब भारत में देशी उद्योग पतन की ओर अग्रसर थे। देशी उद्योगों के इस अपकर्ष को ही ''अनौद्योगीकरण'' के रूप में दर्शाया गया है। औद्योगिक क्रान्ति की इस अवधि में, भारत को ''ब्रिटेन का खेतिहर उप–अंग'' बना दिया गया था।

इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय देशों में स्वदेशी आधुनिक उद्योगों ने देशी हस्तशिल्प को बरबाद कर दिया। अपने पेशे से बेदखल हुए शिल्पकार स्वदेशी आधुनिक उद्योगों में खप गए। भारत में, घरेलू शिल्पकलाओं का पतन तो हुआ लेकिन इसके साथ–साथ कोई मशीनी उद्योग नहीं लगे। आर0सी0 दत्त ने भारतीय उत्पादों की जगह विदेशी उत्पादों द्वारा लिए जाने की इस प्रक्रिया को ''ब्रिटिश भारत के इतिहास का सबसे दुखद अध्याय'' कहा है। अर्थव्यवस्था के कृषि और उद्योग क्षेत्र के बीच संतुलन बिगड़ने तथा घरेलू उद्योगों के दमन के कारण राष्ट्रीय आय के स्रोत पूरी तरह नष्ट हो गए। ब्रिटिश उद्योगों की हुंकार ने लाखों कारीगरों को उनके पारम्परिक पेशे से वंचित कर उन्हें खेती पर निर्भर होने के लिए मजबूर किया। जीवन–यापन के लिए खेती पर आबादी का दबाव बड़ा और देश में नगर गांवों में तब्दील होने लगे यानी देश का ग्रामीणीकरण होने लगा।

3.8 ''सम्पदा पलायन''

भारत से ब्रिटेन को सम्पदा के निर्षाध प्रवाह और बदले में आर्थिक, वाणिज्यिक अथवा साजो–समान के रूप में पर्याप्त प्रतिफल न मिलने को भारत के राष्ट्रवादी नेताओं और अर्थशास्त्रियों ने ''भारत से सम्पदा पलायन'' का नाम दिया है। प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजो ने भारत को गरीब बनाने की लागत पर अपने आप को अमीर बनाने के लिए भारत से कच्चा माल लगातार लूटा। इस निरन्तर लूट की प्रक्रिया ने ''सम्पदा–पलायन'' के सिद्धान्त को जन्म दिया। दादाभाई नौरोजी और एम0जी0 रानाडे आदि जैसे राष्ट्रवादी विचारकों को इस सिद्धान्त का जनक कहा जा सकता है। 2 मई 1967 को ईस्ट इंडिया एशोसिएशन की बैठक में नौरोजी ने अपना एक लेख पढ़ा जिसका शीर्षक था ''इंग्लैन्ड्स डेब्ट टू इंडिया''। नौरोजी के विचार

''पलायन'' की अवधारणा के रूप में चर्चा और मनन का विषय बने। इसके बाद तो, दादाभाई नौरोजी के एक के बाद एक सभी लेखों की मुख्य विषय–वस्तु हमेशा, भारत से ''नैतिकता और कच्चे माल का पलायन'' रहा। ''पॉवरटी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इंडिया'' (1867), ''दी वान्ट्स एण्ड मीन्स ऑफ इंडिया'' (1870) और ''ऑन दी कॉमर्स ऑफ इंडिया'' (1871) उनकी अन्य सराहनीय कृतियाँ है। इनमें नौरोजी ने अंग्रेजों की भारत में बुरी तरह आर्थिक लूट की अत्यन्त उपहास भरे अन्दाज में आलोचना की है। 1867 के बाद से, दादाभाई ने अपना जीवन पूरी तरह से, ''पलायन'' के सिद्धान्त के प्रचार–प्रसार में समर्पित कर दिया। 1880 में उन्होंने लिखा ''आज का ज्वलंत प्रश्न यह है कि भारत से खूनी रिसाव को किस प्रकार रोका जाए''। 1886 में, उन्होंने अपने सर्वाधिक आलोचनात्मक विश्लेषण में ब्रिटिश प्रशासन का मजाक उड़ाया, उन्होंने लिखा'' पूरे मसले का लब्बो–लुआब यह है कि मौजूदा अन्यायपूर्ण और शैतानी प्रशासन के खर्चों के तहत, ब्रिटिश शासन का परोपकार कोरी कल्पना है, जबकि ब्रिटिश शासन की रक्त पिपासा एक असलियत है''।

''पलायन'' के सिद्धान्त के एक और प्रचारक न्यायमूर्ति एम0जी0 रानाडे हैं। उन्होंने 1872 में पूना में एक व्याख्यान दिया था, उन्होंने शोषण की अत्यन्त मुखर आलोचना की थी। अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा ''अंग्रेजों ने किसी न किसी रूप में राष्ट्र की एक तिहाई पूंजी हड़प कर ब्रिटेन भेजी''। ''पलायन'' सिद्धान्त के एक और जबर्दस्त समर्थक रोमेश चन्द्र दत्त ने भारत में ब्रिटेन की आर्थिक नीतियों की धज्जियाँ उड़ाने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी। ''इकॉनॉमिक थ्यौरी ऑफ इंडिया'' (1901) प्रथम खण्ड के आमुख में उन्होंने बताया कि भारत के शुद्ध राजस्व का आधा भाग बाहर भेजा जा रहा था''। उन्होंने कहा ''दरअसल भारत का मानसून दूसरों के खेत पर बरस कर उसे उपजाऊ बना रहा है''। उन्होंने आगे कहा ''देश के संसाधनों का इतना ज्यादा आर्थिक शोषण किया जा रहा है और इस लूट को बाहर भेजा जा रहा है कि दुनियाँ का सबसे ज्यादा समृद्ध देश एक दिन कंगाल हो जाएगा''। इस शोषण ने भारत को ऐसे जमीन के टुकड़े में बदल दिया हैं, जहाँ बार–बार अकाल पड़ता है, हर बार यह पिछले अकाल से ज्यादा भयानक और जान लेवा होता है। इस कदर तबाही लाने वाले अकालों के बारे में भारत या दुनिया के इतिहास में पहले कभी भी कोई वर्णन नहीं आया है। दत्त का मानना है कि नादिरशाह जैसे विदेशी हमलावरों की लूट–पाट की तुलना में ''सम्पदा पलायन'' ज्यादा विनाशकारी सावित हुआ। नादिर शाह भारत आया और लूट–पाट मचा कर तत्काल वापस चला गया। सम्पति का नुक्सान अस्थाई रहा, गाज गिरी और खत्म हो गयी। इसके अलावा, इस तरह के हमले कभी–कभार होते थे। लेकिन अंग्रेजों द्वारा शोषण तो उनके प्रशासन का एक अभिन्न हिस्सा था, इसलिए निरन्तर और अन्तहीन था, जो वर्ष दर वर्ष बढ़ता ही जा रहा था। घाव को कुरेद कर हमेशा हरा रखा गया और यह शोषण नासूर बन गया।

ऐतिहासिक नजरिए से देखा जाए, तो सम्पदा पलायन या सम्पदा शोषण का सिद्धान्त आम आदमी की भाषा में ब्रिटिश शासन की विदेशी और शोषणकारी विशेषता को उजागर करता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1896 के अपने कलकत्ता सत्र में ''ड्रेन थ्यौरी'' शोषण या पलायन सिद्धान्त को आधिकारिक रूप से अंगीकार किया और कहा कि भारत में दुर्मिक्ष (अकाल) और लोगों की गरीबी का कारण देश का वर्षों से चला जा रहा आर्थिक शोषण है। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान, भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की भर्त्सना में यह सिद्धान्त एक सहज नारा बना।

3.9 अभ्यास प्रश्न

(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

1. आर0पी0 दत्त ने भारत के आर्थिक ससाधनों के दोहन को तीन चरणों में बांटा है, इन पर प्रकाश डालियें।
2. रॉवर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स द्वारा अपनाई गई राजस्व व्यवस्था पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
3. अनौद्योगिकीकरण क्या है।
4. ग्रामीण आर्थिक जीवन को नष्ट करने में महाजन और साहूकार कहां तक जिम्मेदार हैं।
5. भारत में ग्रामीण ऋणग्रस्तता के लिए जिम्मेदार कुछ महत्वपूर्ण कारकों पर प्रकाश डालें।
6. दादाभाई नौरोजी का विशेष हवाला देते हुए ''सम्पदा पलायन'' का सिद्धान्त समझाएं।

अभ्यास (लम्बे उत्तर वाले प्रश्न)

1. भारत में दस्तकला के पतन के लिए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश पार्लियामेंट कहाँ तक जिम्मेदार थी। तर्क दें।
2. भारत में तीन प्रकार की भू–अवधि/व्यवस्था पर चर्चा करें और इनमें अन्तर बताऐं।
3. भारत में कृषि के बाजारीकरण और कुटीर उद्योग के पतन का भारतीय किसानों और दस्तकारों पर क्या प्रभाव पड़ा। चर्चा करें।

3.10 संदर्भ ग्रंथ

- चौधरी, के.सी., हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, न्यू सेन्ट्रल बुक एजेंसी, कलकत्ता, पुनर्मुद्रित 2000।

- रॉय चौधरी एस.सी., हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया, सुरजीत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999।
- मजूमदार आरसी (एट आल) ब्रिटिश पैरामाउन्ट्सी एण्ड इंडियन रेनेशां पार्ट I, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे 1988।
- ग्रोवर बी.एल., और मेहता अल्का, ए न्यू लुक एट मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री (1717 टू दी मॉडर्न टाइम्स), एस चान्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2012।
- सेन एस.एन., मॉडर्न इंडिया, न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, कलकत्ता 1991।

ब्लॉक दो

इकाई एकः ब्रिटिश विस्तार की नीतियां एवं कार्यक्रम, विस्तार के उपकरणः युद्ध एवं कूटनीति

1-1 प्रस्तावना

1-2 उद्देश्य

1-3 यूरोपीय देशों का साम्राज्य–विस्तार

1-3-1 यूरोपीय देशों के साम्राज्य–विस्तार का पहला चरण

1-3-2 साम्राज्यवादी शक्तियों की समृद्धि में अप्रत्याशित वृद्धि

1-3-3 यूरोपीय देशों द्वारा औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने के लिए अनुकूल परिस्थितयां

1-4 ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य

1-4-1 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार का पहला चरण

1-4-2 17 वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार

1-4-3 18 वीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 1815 तक ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार

1-4-4 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार का अंतिम चरण (1815–1914)

1-4-4-1 प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्य

1-4-4-2 ईस्ट इंडिया कंपनी का ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में योगदान

1-4-4-3 अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार

1-4-4-4 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार की पराकाष्ठा

1-4-4-5 ब्रिटिश संरक्षित राज्य

1-5 औपनिवेशिक शासन के सामान्य लक्षण

1-5-1 दास–व्यापार एवं दास प्रथा

1-5-2 यूरोपीय देशों के औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना से यूरोप में पूंजीवाद, वाणिज्यवाद के उदय और परवर्ती काल में औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां

1-5-3 यूरोप में कला का विकास

1-5-4 यूरोपीय देशों के मध्य पारस्परिक स्पर्धा में वृद्धि

1-5-5 वाणिज्यवाद को बढ़ावा

1-6 ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की नीतियां

1-6-1 ब्रिटेन द्वारा गुलाम देशों में अपनाई गयी अन्यायपूर्ण नीतियों को न्याय संगत ठहराने का प्रयास

1-6-2 अधीनस्थ राज्यों के लिए ब्रिटिश शासन को कल्याणकारी सिद्ध करने का प्रयास

1-6-3 अधीनस्थ राज्यों में राजनीतिक तथा संवैधानिक सुधार करने के खोखले आश्वासन

1-6-4 व्यपगत का सिद्धांत

1-6-5 कुशासन के बहाने अवध का विलय

1-6-6 **1857** के विद्रोह के दमन के बाद महारानी का घोषणापत्र

1-6-7 दुकानदारों का देश ब्रिटेन

1-6-8 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार के लिए भारतीय शासकों से युद्ध

1-6-9 भारतीय रियासतों के साथ ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध

1-6-10 कर्नल यंग हसबैंड का तिब्बत अभियान

1-6-11 आंग्ल–अफगान युद्ध

1-6-12 आंग्ल–बर्मा युद्ध

1-6-13 आंग्ल–गोरखा सम्बन्ध

1-6-14 औपनिवेशिक इतिहास लेखन

1-6-15 विजित जाति का दमन

1-7 सारांश

1-8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-9 पारिभाषिक शब्दावली

1-10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1-1 प्रस्तावना

भौगोलिक खोजों से यूरोपीय देशों को अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में सैनिक दृष्टि से कमज़ोर किन्तु प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध क्षेत्रों पर अपना अधिकार करने का अवसर मिला. यूरोपीय राज्यों के साम्राज्य–विस्तार ने उनके संसाधनों में अपार वृद्धि की. उपनिवेशों से अपार धन–सम्पदा आ जाने से यूरोपीय जन–जीवन स्तर में सुधार आया तथा कला का सर्वतोमुखी विकास हुआ. यूरोपीय सन्दर्भ में उपनिवेशवाद ने विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया. यूरोप में वाणिज्यिक क्रान्ति ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया. यह सिद्धान्त कि – उपनिवेश का अस्तित्व शासक राज्य के लाभ के लिए है' उपनिवेशों के दोहन का मूल मन्त्र बन गया.

सोलहवीं शताब्दी तक समुद्री मार्ग द्वारा दुनिया के एक बड़े भाग की खोज कर ली गई थी. पुनर्जागरण के दौरान वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप यूरोपीय देशों ने न केवल नौ–चालन के क्षेत्र में बहुत प्रगति कर ली थी अपितु अस्त्र–शस्त्र के क्षेत्र में भी समान रूप से प्रगति कर ली थी. इन अनुकूल परिस्थितियों में अनेक यूरोपीय देशों में 'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एण्ड लस्ट फॉर ग्लोरी' की भावना के वशीभूत होकर औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई. अपने देश में उत्पादित माल की बिक्री के लिए नए बाज़ारों की तलाश और अपने यहां तैयार उत्पादों के लिए आवश्यक कच्चे माल की सस्ते में और नियमित एवं निर्बाध आपूर्ति की समस्या, इन दोनों का ही समाधान अधिक से अधिक और बड़े से बड़े उपनिवेशों की स्थापना में मिल सकता था.

साम्राज्य–विस्तार की होड़ में स्पेन, इंग्लैंड पिछड़ गया था किन्तु . सोने–चांदी की लालसा, व्यापारिक लाभ, गर्म मसालों, तम्बाकू और चीनी आदि के लिए इंग्लैंड ने 17 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही अपने साम्राज्य–विस्तार के प्रयास तेज़ कर दिए.अमेरिका में जेम्सटाउन, वर्जीनिया, मैरीलैंड, रोड, कैरोलिना प्रान्त की स्थापना हुई. फ़ोर्ट एम्सटर्डम के समर्पण के बाद अंग्रेज़ों ने डच उपनिवेश न्यू नीदरलैंड पर अधिकार कर लिया और इसका नाम न्यूयॉर्क रखा. विलियम पेन ने पेन्सिलवेनिया की स्थापना की.कैरीबियन द्वीपों में दृ सेंट किट्स, बारबडोस, नेविस तथा जमैका पर ब्रिटिश आधिपत्य हो गया. 1670 तक परवर्ती डोमिनियन ऑफ़ कनाडा के अधिकांश भू–भाग पर भी ब्रिटिश अधिकार हो गया.

18 वीं शताब्दी में इंग्लैंड विश्व की सबसे बड़ी औपनिवेशिक शक्ति बन गया. अमेरिका की स्वतंत्रता के बाद ब्रिटेन का ध्यान एशिया तथा प्रशांत–महासागरीय क्षेत्र में साम्राज्य–विस्तार की ओर केन्द्रित हो गया. अब तक इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी और अब वह मुक्त–व्यापार के नाम पर अपने उपनिवेशों को कच्चा माल उपलब्ध कराने की मंडी तथा अपने तैयार माल को खरीदने का बाज़ार बनाने के लिए तत्पर था. जेम्स कुक ने ऑस्ट्रेलिया में

श्जेम्स कुक ने ब्रिटेन के लिए न्यू साउथवेल्स उपनिवेश की स्थापना की. जेम्स कुक ने न्यूज़ीलैंड में भी ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित किया.

एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भी योगदान रहा. पनांग, लाबुआन तथा हांगकांग पर ब्रिटिश अधिग्रहण में उसकी भूमिका रही.अफ्रीका में केप कॉलोनी, मिस्र, रोडेशिया, ज़िम्बाबवे तथा युगांडा ब्रिटिश उपनिवेश बने. वैश्विक पुलिस की भूमिका (पैक्स ब्रिटैनिका) निभाते हुए और शानदार पृथक्कीकरण की नीति अपनाते हुए ब्रिटेन ने 1815 से 1914 तक अपने साम्राज्य में लगभग 2 करोड़ 60 लाख वर्ग किलोमीटर की वृद्धि की. ब्रिटेन के संरक्षित राज्य सभी महाद्वीपों में थे. इन पर उसका आधिपत्य तो नहीं था किन्तु उनकी आर्थिक तथा विदेश नीतियां उसके नियंत्रण में होती थीं.

ब्रिटेन के औपनिवेशिक शासन के इतिहास में दास–व्यापार तथा उनके श्रम का अमानुषिक दोहन मानवता पर एक बहुत बड़ा कलंक था. ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार से ब्रिटेन में अथाह संपत्ति आई और इस से पूंजीवादी व्यवस्था मज़बूत हुई तथा वाणिज्यवाद को बढ़ावा मिला. इसने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि भी तैयार कर दी.ब्रिटेन सहित समस्त यूरोप में कला का सर्वतोमुखी विकास भी साम्राज्य–विस्तार की देन था.साम्राज्य–विस्तार की होड़ ने यूरोपीय देशों में प्रतिस्पर्धा को भी जन्म दिया. अंग्रेजों ने अपने दमनकारी औपनिवेशिक शासन को अपने गुलाम देशों की प्रजा के लिए कल्याणकारी सिद्ध करने का अनवरत प्रयास किया. परन्तु उनका शासन दमन और शोषण की पराकाष्ठा द्योतक था.

ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों में लार्ड डलहौज़ी द्वारा लागू किया गया व्यपगत का सिद्धांत दृ 'समरथ को नहीं दोस गुसाईं' की उक्ति को चरितार्थ करता है. कुशासन के बहाने वफ़ादार और मददगार दोस्त अवध का हस्तगत किया जाना भी घोर अनैतिक था. 1858 के महारानी के घोषणापत्र के बाद से भारतीय रियासतों को जीवनदान अवश्य मिल गया किन्तु उनको ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा और स्वामिभक्ति का निरंतर ज्ञापन करना पड़ा. ब्रिटिश साम्राज्य में व्यापारिक लाभ तथा औद्योगिक हितों को सर्वोपरि रक्खा गया. ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में व्यापारिक कम्पनियों की उल्लेखनीय भूमिका रही.

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में प्लासी का युद्ध, बक्सर का युद्ध, मैसूर राज्य से युद्ध, गोरखों से युद्ध, मराठों से युद्ध और सिक्खों से युद्ध प्रमुख हैं. भारतीय शासकों के साथ लार्ड वेलेज़ली द्वारा लागू सहायक संधियों ने अंग्रेज़ों को भारत की प्रमुख शक्ति बनाने के साथ उन्हें क्षेत्रीय लाभ भी कराया था. लार्ड हेस्टिंग्स के काल में राजपूत शासकों के साथ हुई अधीनस्थ पृथक्कीकरण की संधियों ने अंग्रेज़ों को रणजीत सिंह के राज्य को छोड़कर शेष भारत की एकमात्र शक्ति बना दिया था और 1858 की महारानी की घोषणा से पूरा भारत ब्रिटिश ताज के अधीन हो गया था.

अंग्रेज़ों की यह नीति थी कि अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए वो अपने अधीनस्थ राज्यों के पड़ौसी राज्यों की विदेश नीतियों पर भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपना नियंत्रण रक्खें. आंग्ल–गोरखा युद्ध हिमालयी पहाड़ी क्षेत्र तथा तराई के क्षेत्र पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करने के लिए हुआ था. 1816 की सगौली की संधि से अंग्रेज़ों को गढ़वाल और कुमाऊँ भी प्राप्त हुए और ब्रिटिश सेना को बहादुर गोरखा सेना भी प्राप्त हुए. 'रशो–फ़ोबिया' के कारण तीन अनावश्यक आंग्ल–अफ़गान युद्ध हुए जिनका परिणाम अंग्रेज़ों के लिए लाभकारी नहीं रहा. 1904 में कर्नल यंग हसबैंड का तिब्बत अभियान हिमालयी क्षेत्र पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करने का एक अनैतिक किन्तु सफल अभियान था.

तीन आंग्ल–बर्मा युद्धों के माध्यम से अंग्रेज़ों ने बर्मा को पूरी तरह से अपना अधीनस्थ राज्य बना लिया.विजित जाति का आर्थिक दोहन और राजनीतिक दमन ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सबसे बड़ा कलंक है. जाति–भेद रंग–भेद और धर्म–भेद तथा अपनी भाषा तथा अपनी संस्कृति को गुलाम देश के निवासियों पर थोपना इस प्रकार के शासन का अंग था.

1-2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य दृ ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार के विभिन्न आयामों से आपको परिचित कराना है. ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार के लिए अनुकूल परिस्थितियां, साम्राज्य–विस्तार हेतु युद्धों तथा कूटनीतिक चालों का उपयोग, अधीनस्थ राज्यों का अनवरत आर्थिक दोहन, राजनीतिक दमन तथा विजित जातियों की सभ्यता और संस्कृति के अंग्रेज़ीकरण के प्रयासों की आपको जानकारी देना भी इस इकाई का उद्देश्य है. इस इकाई का अध्ययन कर आप दृ

2- भौगोलिक खोजों वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के पश्चात् यूरोपीय राज्यों की साम्राज्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा से अवगत हो सकेंगे.

3- ब्रिटेन के साम्राज्य–विस्तार के विभिन्न चरणों से अवगत हो सकेंगे.

4- साम्राज्य–विस्तार की दौड़ में ब्रिटेन द्वारा अपने यूरोपीय प्रतिस्पर्धियों को पछाड़ने की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.

5- ब्रिटेन द्वारा अपने अधीनस्थ राज्यों के आर्थिक दोहन के विषय में विस्तार से जान सकेंगे.

6- अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखने में ब्रिटेन द्वारा अपनाई गयी कूटनीतिक चालों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.

7- साम्राज्यवादी नीति के अंतर्गत ब्रिटेन द्वारा अपने अधीनस्थ राज्यों के साथ अपनाई गयी नीतियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे.

1-3- यूरोपीय देशों का साम्राज्य–विस्तार

1-3-1 यूरोपीय देशों के साम्राज्य–विस्तार का पहला चरण

भौगोलिक खोजों से यूरोपीय देशों को अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में सैनिक दृष्टि से कमज़ोर किन्तु प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध क्षेत्रों पर अपना अधिकार करने का अवसर मिला. इन क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर यूरोपीय देशों ने अपने–अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किए. प्रारम्भ में पूर्वी गोलार्ध में पुर्तगाल और पश्चिमी गोलार्ध में स्पेन के औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित हुए किन्तु बाद में इस दौड़ में नीदरलैण्ड, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड भी शामिल हो गए. प्रारम्भिक औपनिवेशिक साम्राज्यों के काल को हम औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व तक का काल मान सकते हैं.

वास्तव में भौगोलिक खोजों, औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना तथा वाणिज्यिक क्रान्ति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है. इन सबने मिलकर मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में तथा विश्व इतिहास को मध्य युग से आगे बढ़ाकर आधुनिक युग में प्रविष्ट कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी.

1-3-2 साम्राज्यवादी शक्तियों की समृद्धि में अप्रत्याशित वृद्धि

भौगोलिक खोजों ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को तो बढ़ावा दिया ही साथ ही साथ इनके परिणाम स्वरूप यूरोपीय राज्यों में जिस प्रकार अतुलित धन–सम्पदा आई, उसने वहां के शासकों के संसाधनों और शक्ति में अपार वृद्धि कर दी. साम्राज्य–विस्तार की होड़ भौगोलिक खोजों ने साम्राज्य–विस्तार की होड़ में यूरोपीय देशों के मध्य प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जिसकी परिणति अनेक बार भीषण युद्धों में हुई.

1-3-3 यूरोपीय देशों द्वारा औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने के लिए अनुकूल परिस्थितयां

पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप में भौगोलिक खोजों का दौर चल पड़ा था और सोलहवीं शताब्दी तक समुद्री मार्ग द्वारा दुनिया के एक बड़े भाग की खोज कर ली गई थी. पुनर्जागरण के दौरान वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप यूरोपीय देशों ने न केवल नौ–चालन के क्षेत्र में बहुत प्रगति कर ली थी अपितु अस्त्र–शस्त्र के क्षेत्र में भी समान रूप से प्रगति कर ली थी. अब यूरोपीय शक्तियों के पास दुनिया के शेष सभी देशों की तुलना में अधिक मारक शक्ति के हथियार थे और आधुनिक अस्त्र–शस्त्र से सज्जित उनकी थल सेनाएं व नौ–सेनाए भी सबसे सुगठित व आधुनिक रणनीति में पारंगत थी. इन अनुकूल परिस्थितियों में अनेक यूरोपीय देशों में 'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एण्ड लस्ट फॉर ग्लोरी' की भावना के वशीभूत होकर औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई. इसके अतिरिक्त अपने–अपने विजित क्षेत्रों में अपने धर्म अर्थात् ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार की आकांक्षा ने भी यूरोपीय देशों को अपने–अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की प्रेरणा दी थी. अपने देश में उत्पादित माल की बिक्री

के लिए नए बाज़ारों की तलाश और अपने यहां तैयार उत्पादों के लिए आवश्यक कच्चे माल की सस्ते में और नियमित एवं निर्बाध आपूर्ति की समस्या, इन दोनों का ही समाधान अधिक से अधिक और बड़े से बड़े उपनिवेशों की स्थापना में मिल सकता था.

1-4 ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य

1-4-1 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार का पहला चरण

औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की दौड़ में इंग्लैंड स्पेन, पुर्तगाल तथा फ्रांस से पिछड़ गया था. एलिज़ाबेथ प्रथम के शासन काल में उसके वरद हस्त प्राप्त दो साहसिकों – जॉन हॉकिंस तथा फ्रांसिस ड्रेक ने अटलांटिक दास–व्यापार से अपार धन कमाया और अमेरिका में स्पेन के बंदरगाहों पर इस उद्देश्य से छापे भी मारे. इसी समय रिचर्ड हकल्युट तथा जॉन डी जैसे बुद्धिजीवियों ने इंग्लैंड के अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया. स्टुअर्ट काल में सम्राट जेम्स प्रथम और विशेषकर, चार्ल्स द्वितीय के शासनकाल में साम्राज्य–विस्तार की गति ने ज़ोर पकड़ लिया. 1583 में न्यू फ़ाउण्डलैण्ड में ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित हुआ. प्रारम्भिक काल में व्यापारिक कम्पनियों तथा संयुक्त सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों ने ब्रिटिश उपनिवेशों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इंग्लैण्ड की दृष्टि सोने–चाँदी की लालसा, व्यापारिक लाभ, गर्म मसालों, तम्बाकू और चीनी आदि के लिए अपना औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने पर थी.

1-4-2 17 वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार

1588 में स्पेनिश आर्मडा की सफलता से ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार का मार्ग प्रशस्त हो गया. 1604 में जेम्स प्रथम ने 'लन्दन की संधि' से स्पेन के साथ शांतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिए और अब अन्य देशों के उपनिवेशों पर आक्रमण करने के स्थान पर खुद इंग्लैंड के अपने उपनिवेश स्थापित करने का अभियान प्रारंभ किया. लगभग सभी शुरूआती ब्रिटिश बस्तियां, ब्रिटिश ताज के स्थान पर किन्हीं विशिष्ट कम्पनियों और बड़े व्यवसायियों के व्यक्तिगत प्रयासों से स्थापित की गयी थीं.

अमेरिका में सर्वप्रथम कैप्टेन जॉन स्मिथ के नेतृत्व में जेम्सटाउन में 1607 में ब्रिटिश कॉलोनी स्थापित हुई. 1624 में वर्जीनिया पर ब्रिटिश ताज का आधिपत्य हो गया और फलस्वरूप कॉलोनी ऑफ़ वर्जीनिया की स्थापना हुई. 1634 में मैरीलैंड की तथा 1636 में रोड आइलैंड की स्थापना हुई. 1663 में कैरोलिना प्रान्त की स्थापना हुई. 1664 में फ़ोर्ट एम्सटर्डम के समर्पण के बाद अंग्रेज़ों ने डच उपनिवेश न्यू नीदरलैंड पर अधिकार कर लिया और इसका नाम न्यूयॉर्क रखा. 1681 में विलियम पेन ने पेन्सिलवेनिया की स्थापना की. इन अमेरिकन उपनिवेशों में कृषि–योग्य विशाल भू–क्षेत्र थे.

कैरीबियन द्वीपों दृ गुयाना, सेंट लूसिया तथा ग्रेनेडा में प्रारंभिक असफलताओं के बाद इंग्लैंड, सेंट किट्स (1624), बारबडोस (1627) तथा नेविस (1628) पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल रहा. इन उपनिवेशों में दासों के श्रम का उपयोग कर चीनी के उत्पादन के लिए व्यापक स्तर पर गन्ने की खेती करना प्रारंभ किया. ब्रिटिश उपनिवेशों में केवल ब्रिटिश जहाजों के प्रवेश के निर्णय से उत्पन्न वैमनस्य का परिणाम एंग्लो–डच युद्ध हुए जिसमें कि अंग्रेज़ों को सफलता मिली. 1655 में इंग्लैंड ने स्पेन से जमैका छीनकर उस पर अपना अधिकार कर लिया और फिर उसने 1666 में बहामास पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया. 1670 में रुपर्ट्सलैंड में हड्संस बे कंपनी को लोम (फ़र) के व्यापार का एकाधिकार दिया गया जो कि बाद में डोमिनियन ऑफ़ कनाडा का बड़ा भू–भाग बना.

1-4-3 18 वीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 1815 तक ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार

18 वीं शताब्दी में एंग्लो–डच गठबंधन, फ्रांस तथा स्पेन पर भारी पड़ा और इंग्लैंड विश्व की सबसे बड़ी औपनिवेशिक शक्ति बन गया. 18 वीं शताब्दी में औपनिवेशिक साम्राज्य की होड़ में अब फ्रांस ही इंग्लैंड का एकमात्र प्रतिद्वंदी रह गया. भारत में हुए तीन कर्नाटक युद्धों ने 1763 तक भारत में फ़्रांसीसी शक्ति की तुलना में ब्रिटिश शक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी थी और 1763 में हुई पेरिस की संधि के बाद अब भारत में अपना साम्राज्य विस्तृत करने में अंग्रेज़ों को किसी यूरोपियन शक्ति से मुकाबला नहीं करना था.

आयरलैंड व्यावहारिक दृष्टि से 17 वीं शताब्दी से ही इंग्लैंड का उपनिवेश रहा था किन्तु औपचारिक दृष्टि से 1801 से 1922 तक यह यूनाइटेड किंगडम का एक अंग रहा. अमेरिका की स्वतत्रता के बाद ब्रिटेन का ध्यान अब अपने एशिया, प्रशांत महासागरीय क्षेत्र और अफ्रीका में साम्राज्य–विस्तार की ओर केन्द्रित हो गया. अब औद्योगिक दृष्टि से सबसे उन्नत हो चुका देश, ब्रिटेन मुक्त–व्यापार का पक्षधर बन गया. 1770 में जेम्स कुक ने ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट की खोज की और ब्रिटेन के लिए न्यू साउथवेल्स उपनिवेश की स्थापना की. जेम्स कुक ने न्यूज़ीलैंड में भी ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित किया. 1815 में नेपोलियन की पराजय के बाद हुई शांति–संधियों के परिणामस्वरुप ब्रिटेन को आयोनियन द्वीप, माल्टा, मॉरिशस, सेंट लूसिया, टोबैगो, ट्रिनीडाड, गुयाना, केप कॉलोनी तथा सीलोन प्राप्त हुए और उसे गुआडेलूप, मार्तेनिक़, फ्रेंच गुयाना, जावा और सूरीनाम अन्य यूरोपियन देशों को सौंपने पड़े.

1-4-4 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार का अंतिम चरण (1815–1914)

1-4-4-1 प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्य

1840 में न्यूज़ीलैंड पर ब्रिटिश अधिकार हो जाने के बाद फ़िजी, टोंगा, पौपुआ, न्यूगिनी और प्रशांत महासागर के अन्य द्वीपों पर भी ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो गया.

1-4-4-2 ईस्ट इंडिया कंपनी का ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में योगदान

एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में ईस्ट इंडिया कंपनी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी. मिस्र से फ्रांसीसियों को निकालने (1799) में, नीदरलैंड से जावा को हस्तगत करने में सिंगापुर (1819), मलक्का (1824) बर्मा (1826), पनांग (1826) और लाबुआन (1846) पर अधिकार करने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही थी. चीन से अफ़ीम के अवैध व्यापार, फिर अफ़ीम युद्ध का परिणाम, 1841 में अंग्रेज़ों द्वारा हांगकांग पर अधिकार के रूप में सामने आया था.

1-4-4-3 अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार

दक्षिण–अफ्रीका के डच उपनिवेश, केप कॉलोनी पर 1806 में ब्रिटेन का अधिकार हो गया. 1869 में सुएज़ कैनाल के खुलने के बाद अंग्रेज़ों की अभिरुचि मिस्र में बहुत अधिक बढ़ गयी और उन्होंने उस पर 1882 में अधिकार कर लिया. 1890 के दशक में रोडेशिया पर भी ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो गया. अफ्रीका में 1899 में सूडान पर ब्रिटिश अधिकार हो गया. नाइजीरिया, गोल्ड कोस्ट (घाना), ज़ाम्बिया, केन्या, ज़िम्बाबवे और युगांडा भी ब्रिटिश उपनिवेश बन गए.

1-4-4-4 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार की पराकाष्ठा

वैश्विक पुलिस की भूमिका (पैक्स ब्रिटैनिका) निभाते हुए और शानदार पृथक्कीकरण की नीति अपनाते हुए ब्रिटेन ने 1815 से 1914 तक अपने साम्राज्य में लगभग 2 करोड़ 60 लाख वर्ग किलोमीटर की वृद्धि की. अब भाप के इंजन तथा टेलीग्राफ़ की मदद से साम्राज्य–विस्तार की प्रक्रिया और भी सुगम हो गयी. ब्रिटिश साम्राज्य में यूनाइटेड किंगडम तथा उसके पूर्ववर्ती राज्यों द्वारा प्रशासित स्वतंत्र उपनिवेश, उपनिवेश, संरक्षित राज्य, जनादेश–राज्य तथा अन्य क्षेत्र सम्मिलित थे. बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के अंत तक दुनिया की कुल 23% आबादी (लगभग 41-2 करोड़) पर और इसके कुल भू–क्षेत्र के 24% (लगभग 3-55 करोड़ वर्ग किलोमीटर) भू–भाग पर इसका प्रभुत्व था. 'ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता' यह गर्वोक्ति, ब्रिटिश साम्राज्य की विशालता और उसकी व्यापकता को भली–भांति प्रदर्शित करती है.

1-4-4-5 ब्रिटिश संरक्षित राज्य

इन राज्यों को ब्रिटेन ने सीधे अपने आधिपत्य में नहीं लिया था किन्तु इनके आर्थिक एवं अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर उसका नियंत्रण था. ऐसी व्यवस्था, ज़रूरतमंद स्थानीय शासकों की आर्थिक अथवा सैनिक सहायता के बदले में की जाती थी. ब्रिटेन के ये संरक्षित राज्य सभी महाद्वीपों में विद्यमान थे. अमेरिका में – मासक्विटो कोस्ट, एशिया में – नाभा, पटियाला,

सिक्किम, सारावाक राज्य, यूरोप में दृ साइप्रस, अफ्रीका में दृ बरोत्सेलैंड, वासुतोलैंड, ईस्ट अफ्रीका, उत्तरी नाइजीरिया, गाम्बिया, केन्या, उत्तरी गोल्ड कोस्ट, न्यासालैंड, स्वैज़ीलैंड, युगांडा, जंजीबार सल्तनत, सीरिया लीओन, दक्षिणी नाइजीरिया, ओशेनिया में – पापुआ, सॉलोमन आइलैंड, कुक आइलैंड, गिल्बर्ट तथा एलिस आइलैंड आदि सम्मिलित थे. इनके अतिरिक्त अफगानिस्तान, भूटान, नेपाल मलय राज्य–संघ, मालद्वीव, ब्रूनेई, मस्कट, कुवैत, बहरैन क़तार आदि पर भी एक अवधि तक अंग्रेज़ों का अप्रत्यक्ष नियंत्रण रहा था.

1-5 औपनिवेशिक शासन के सामान्य लक्षण

1-5-1 दास–व्यापार एवं दास प्रथा

यूरोप के अधिकांश शक्तिशाली देश – पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैण्ड, फ़्रांस, ब्रिटेन आदि दास–व्यापार में लिप्त थे. नए उपनिवेशों को बसाने में तथा खेती सहित कठिन श्रम के सभी कार्यों के लिए न्यूनतम मज़दूरी पर कार्य करने वाले दासों से अधिक उपयोगी और कोई नहीं हो सकता था. 16 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में फ्रांसिस ड्रेक तथा जॉन हाकिंस ने दास–व्यापार द्वारा इंग्लैण्ड के लिए प्रचुर मात्रा में धन कमाया था. अफ्रीका से लाकर लाखों दासों का अमेरिका में निर्यात करने के कारण इंग्लैण्ड के शहर ब्रिस्टल व लिवरपूल अत्यन्त समृद्ध हो गए थे. 1776 तक अमेरिका के 13 उपनिवेशों में में लगभग 6 लाख दास आयात किए गए थे. अश्वेत दासों के साथ उनके मालिकों द्वारा जो अमानवीय व्यवहार किया जाता था उसका शब्दों में वर्णन कर पाना असम्भव है

1-5-2 यूरोपीय देशों के औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना से यूरोप में पूंजीवाद, वाणिज्यवाद के उदय और परवर्ती काल में औद्योगिक क्रान्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियां

औपनिवेशिक साम्राज्यों की स्थापना के कारण यूरोपीय देशों में अथाह समृद्धि आई और व्यापार–संतुलन सदैव उनके पक्ष में रहने के कारण उनकी व्यापारिक गतिविधियां अपने शिखर पर पहुंच गईं. अतुलित धन–सम्पदा ने पूंजीवाद के विकास में सहयोग किया और राष्ट्रीय जीवन में व्यापार की महत्ता बढ़ने के कारण स्वाभाविक रूप से वाणिज्यवाद को भी बढ़ावा मिला. अब यूरोपीय देशों को अपना तैयार माल बेचने के लिए बाज़ार खोजने की ज़रूरत नहीं थी (क्योंकि वो अपने उपनिवेशों में ही अपना सारा माल खपा सकते थे) और न ही अपने यहां अनुपलब्ध कच्चा माल खोजने के लिए उन्हें अपने उपनिवेशों के अतिरिक्त किसी पर निर्भर रहना था. धन–सम्पदा के आधिक्य ने अधिक उन्नत औद्योगिक उपकरणों के आविष्कार के लिए अनुकूल वातावरण विकसित कर दिया था. इन अनुकूल परिस्थितियों में 18 वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप में, विशेषकर सबसे बड़े औपनिवेशिक साम्राज्य के स्वामी इंग्लैण्ड में, औद्योगिक क्रान्ति होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी.

1-5-3 यूरोप में कला का विकास

अतुलित धन–सम्पदा आ जाने से यूरोपीय देशों में कला की हर विधा के विकास के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध होने लगा. औपनिवेशिक शासनकाल में यूरोपीय देशों में स्थापत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला का विकास हुआ, अनेक सुनियोजित सुन्दर नगरों का निर्माण हुआ. संगीत और साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में भी इस काल को यूरोपीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जा सकता है.

1-5-4 यूरोपीय देशों के मध्य पारस्परिक स्पर्धा में वृद्धि

औपनिवेशिक साम्राज्य विस्तार की होड़ ने यूरोपीय देशों के मध्य कटुता और पारस्परिक स्पर्धा को जन्म दिया जिसके कारण एशिया और अमेरिका में यूरोपीय देशों के मध्य अनेक युद्ध हुए. इन युद्धों में स्पेन, नीदरलैण्ड, इंग्लैण्ड, फ्रांस सभी सम्मिलित थे.

1-5-5 वाणिज्यवाद को बढ़ावा

अब यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा था कि जो राष्ट्र जितना धनी होगा, वह उतना ही शक्तिशाली होगा. इस विचार के प्रतिपादकों में टॉमस मन तथा फ़िलिप वॉन हार्निक प्रमुख थे. अब व्यापार–सन्तुलन को स्थाई रूप से अपने पक्ष में रखने के लिए तैयार माल के निर्यात को और उपनिवेशों से कच्चे माल के आयात को बढ़ावा दिया जाने लगा.

1-6 ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की नीतियां

1-6-1 ब्रिटेन द्वारा गुलाम देशों में अपनाई गयी अन्यायपूर्ण नीतियों को न्याय संगत ठहराने का प्रयास

अंग्रेज़ जानते थे कि वो जो भी अपने गुलाम देशों, क्षेत्रों में कर रहे थे, वो नैतिक दृष्टि से अनुचित था किन्तु अपनी नीतियों को न्याय–संगत ठहराने के लिए उन्होंने दुनिया के सामने अपनी यह तस्वीर पेश की कि वो जो भी कर रहे हैं, वो अपनी गुलाम प्रजा के भले के लिए, उन्हें सभ्य बनाने के लिए कर रहे हैं. रुडयार्ड किपलिंग के शब्द –'वाइट मेन्स बर्डन' का बहाना बनाकर अंग्रेज़ों ने अपने प्रत्येक कुकृत्य को उचित तथा समय की मांग के अनुरूप ठहराया. अंग्रेज़ इतिहासकारों ने जान–बूझकर यह दर्शाया कि अंग्रेज़ी शासन से पहले भारत अथवा अन्य गुलाम देशों के निवासी नितांत असभ्य थे, अशिक्षा, अपरिवर्तनशीलता, कुरीतियों और अन्धविश्वास से ग्रस्त थे, इन क्षेत्रों में लूटमार तथा अराजकता व्याप्त थी, शासकगण विलासी और निकम्मे थे, प्रजा अत्यंत त्रस्त और दुखी थी.

1-6-2 अधीनस्थ राज्यों के लिए ब्रिटिश शासन को कल्याणकारी सिद्ध करने का प्रयास

यह दावा किया जाता था कि अंग्रेज़ों ने अधीनस्थ देशों में अपना शासन स्थापित कर के वहां शांति–व्यवस्था स्थापित की, स्थानीय शासकों के अनाचार से प्रजा को मुक्ति दिलाई, प्रजा को निष्पक्ष न्याय–व्यवस्था दी, अपरिवर्तनशीलता से मुक्ति दिलाकर, अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति के माध्यम

से उन्हें प्रगति–पथ पर अग्रसर किया, नारी–उत्थान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए, यातायात के उन्नत साधन उपलब्ध कराए, नई–नई तकनीकों तथा आविष्कारों से उनको लाभान्वित किया, भारत तथा अन्य अधीनस्थ देशों को प्रशासनिक दृष्टि से एक सूत्र में बाँधा, उनको वाह्य–आक्रमणों के प्रकोप से मुक्ति दिलाई, वहां आधुनिक उद्योग एवं व्यापार का युग प्रारंभ किया और इस से भी बढ़कर, वहां की प्रजा को लोकतान्त्रिक व्यवस्था से परिचित करा कर उनमें राष्ट्रीय चेतना का संचार किया.

विलियम जोंस, विल्किंस, कोलब्रुक, डब्लू. एच. विल्सन, मैक्स मुलर आदि प्राच्यवादियों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति की महानता को स्वीकार करते हुए अपने अथक प्रयास से उसे विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया. उनका विश्वास था कि इसे शासक वर्ग तथा शासित वर्ग में सद्भाव तथा पारस्परिक विश्वास विकसित होगा.

1-6-3 अधीनस्थ राज्यों में राजनीतिक तथा संवैधानिक सुधार करने के खोखले आश्वासन

सर ए. ओ. ह्यूम की 'सेफ्टी–वाल्व थ्योरी' भारत में अंग्रेज़ों द्वारा राजनीतिक एवं प्रशासनिक सुधारों की असलियत को ज़ाहिर करती है. 1892 के इंडियन कौंसिल्स एक्ट को प्रस्तुत करते समय लार्ड क्रॉस ने यह स्पष्ट कर दिया था कि अंग्रेज़ों का भारत में लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित करने का कोई इरादा नहीं है. लार्ड कर्ज़न ने तो इतना तक कह दिया था कि भारतीयों को लोकतान्त्रिक व्यवस्था कभी रास ही नहीं आ सकती.

प्रथम विश्व–युद्ध के समय ब्रिटेन ने यह दावा किया था कि वह लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ युद्ध में भाग ले रहा है. भारतीयों ने तन–मन–धन से युद्ध में अंग्रेज़ों का साथ दिया. 1917 में मोंटेग्यू की घोषणा द्वारा भारतीयों को स्वशासन दिए जाने का आश्वासन भी दिया गया किन्तु युद्ध समाप्त होते ही कृतघ्न औपनिवेशिक शासकों ने भारत को स्वशासन देने के बदले में रौलट एक्ट और जलियाँवाला बाग़ का हत्याकांड दिया. लोकतंत्र और नागरिक अधिकार की जन्मभूमि कहे जाने वाले ब्रिटेन ने अपनी गुलाम प्रजा को कभी लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों के लायक नहीं समझा और इस विषय में उनके प्रत्येक आन्दोलन को क्रूरतापूर्वक कुचल दिया.

1-6-4 व्यपगत का सिद्धांत

लार्ड डलहौज़ी के शासनकाल (1848–1856) में लागू व्यपगत का सिद्धांत ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति और कूटनीति का सबसे अनैतिक तथा निंदनीय उदाहरण था. इस नीति के अंतर्गत जिन अधीनस्थ भारतीय शासकों के अपना कोई औरस पुत्र नहीं था, उन्हें गोद लेकर किसी बालक को अपना उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार नहीं रहा. नागपुर, झाँसी, सतारा, जैतपुर, संभलपुर, आर्कोट, तोरे, उदयपुर (छत्तीसगढ़) को व्यपगत के सिद्धांत के अंतर्गत मिलाया गया.

1-6-5 कुशासन के बहाने अवध का विलय

1765 से अंग्रेज़ों के एक वफ़ादार और हर मुसीबत में मददगार दोस्त की भूमिका निभाने वाले अवध के राज्य के साथ अंग्रेज़ों ने अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा के कारण भेड़िये और मेमने की अन्यायपूर्ण कहानी को फिर से दोहरा दिया. 1856 में अवध का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय हो गया.

1-6-6 1857 के विद्रोह के दमन के बाद महारानी का घोषणापत्र

1857 के विद्रोह का दमन करने के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त कर दिया और महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र के द्वारा भारत को ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया.

1-6-7 दुकानदारों का देश ब्रिटेन

नेपोलियन इंग्लैंड को दुकानदारों का देश कहता था. ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार की गाथा व्यापार से ही प्रारंभ हुई थी. विभिन्न देशों में पहले ब्रिटेन ने व्यापारिक सुविधाएँ मांगी और इन सुविधाओं को मिल जाने के बाद वहां अपने व्यापारिक ठिकाने स्थापित किए. अपने व्यापारिक ठिकानों की रक्षार्थ उन्हें स्थानीय शासकों से सैनिक टुकडियां रखने की अनुमति भी मिल गयी. अपनी उन्नत नौ–सेना के बलबूते समुद्र के रास्ते से विभिन्न देशों का सामान पहले अपने देश में पहुँचाया और फिर वहां से उसे अधिक से अधिक लाभ लेकर दूसरे देशों को बेचा. भारत में अपने व्यापारिक ठिकानों पर आधुनिक हथियारों से सज्जित अपनी सैनिक टुकड़ियों को उन्होंने स्थानीय शासकों के आपसी युद्धों में आर्थिक, क्षेत्रीय तथा राजनीतिक लाभ के लिए भाड़े पर देना भी शुरू कर दिया. धीरे–धीरे उनका सैनिक तथा राजनीतिक महत्व बढ़ता ही चला गया और फिर वो 'किंग मेकर' बन गए. भारत में अपने सभी प्रतिद्वंदियों पर भारी पड़ने के बाद उन्होंने भारत की राजनीतिक अस्थिरता, आपसी फूट तथा सैनिक दुर्बलता का भरपूर लाभ उठाया. एक बात उल्लेखनीय है कि इस तथाकथित दुकानदारों के देश ने कहीं भी और कभी भी अपने आर्थिक हितों की उपेक्षा नहीं की और अपने अधीनस्थ सभी राज्यों का आर्थिक दोहन करना अपना अधिकार समझा.

18 वीं शताब्दी के प्रथमार्ध तक, जब तक कि ब्रिटिश उद्योग विकसित नहीं था, ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों से सस्ती कीमत पर तैयार माल तथा कच्चा माल प्राप्त किया और उसके विश्व–व्यापी व्यापार से अथाह धन कमाया. किन्तु 18 वीं शताब्दी उत्तरार्ध में जब इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति आ गयी तो फिर उपनिवेशों को ब्रिटिश कारखानों के लिए कच्चे माल की मंडी और ब्रिटिश उत्पाद का ख़रीदार बना दिया. इन अधीनस्थ राज्यों के पूर्व–स्थापित उद्योग को लगभग नष्ट कर दिया गया. भारत जैसे सोने की चिड़िया कहा जाने वाला देश, सारी

दुनिया के निवासियों का तन ढकने वाला देश, लंकाशायर और मानचेस्टर के कपड़ों का मोहताज हो गया और दुनिया के सबसे दरिद्र देशों में गिना जाने लगा.

1-6-8 ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार के लिए भारतीय शासकों से युद्ध

भारतीय शासकों में बंगाल का नवाब सिराज–उद–दौला पहला प्रमुख शासक था जिसे अंग्रेज़ों ने 1757 में प्लासी के युद्ध में हराया था. वास्तव में यह युद्ध प्लासी के मैदान में कम और सिराज–उद–दौला के दरबार में षड्यंत्र के रूप में अधिक लड़ा गया था. बक्सर के युद्ध में विजय के उपरांत मुग़ल बादशाह से प्राप्त – 1765 की 'ग्रांट ऑफ़ दीवानी' तो अनैतिक राजनीति की पराकाष्ठा थी. 'बिना दायित्व के शक्ति' की अवधारणा का यह सबसे कुत्सित रूप थी.

हैदर अली और टीपू से अंग्रेज़ों के चार युद्ध हुए और 1799 में चतुर्थ आंग्ल–मैसूर युद्ध में विजय के उपरांत मैसूर के प्रतिरोध का दमन कर दिया गया. अंग्रेज़ों की संघठित मराठा शक्ति से युद्ध करने की क्षमता नहीं थी इसलिए उन्होंने बरोदा के गायकवाड़ को तो अपनी ओर मिला लिया और फिर पेशवा, भोंसले, सिधिया और होल्कर से अलग–अलग युद्ध कर उनको परास्त कर दिया. 1818 में मराठा राज्य–संघ का विघटन करके अंग्रेज़ भारत में सर्व–शक्तिमान बन गए. अपने स्थायी मित्र पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के दस वर्ष के बाद ही दो सफल युद्धों के माध्यम से उन्होंने पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया. सिंध का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय तो केवल इसलिए किया गया कि सिंध का अत्यधिक सामरिक महत्व था. इस प्रकार भारत में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार युद्दों के माध्यम से कम और षड्यंत्रों तथा कूटनीतिक चालों के माध्यम से अधिक हुआ.

1-6-9 भारतीय रियासतों के साथ ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध

मुग़ल शासन के पराभव के बाद भारत में अंग्रेज़ों ने 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपना साम्राज्य–विस्तार प्रारंभ कर दिया. लार्ड वेलेज़ली ने सैनिक दृष्टि से हीन भारतीय राज्यों के साथ सहायक संधियाँ कर व्यावहारिक दृष्टि से उनकी स्वतंत्रता का तथा उनकी सैनिक शक्ति का अपहरण कर लिया और उनके संसाधनों का ब्रिटिश हित के भरपूर उपयोग किया. तृतीय आंग्ल–मैसूर युद्ध में पराजित होने के बाद अंग्रेज़ों के हाथों अपना लगभग आधा राज्य खो चुका मैसूर का टीपू सुल्तान, सहायक संधि पर हस्ताक्षर करने वाला पहला भारतीय शासक बना. हैदराबाद के निज़ाम, अवध के नवाब और पेशवा ने भी अंग्रेज़ों के साथ सहायक संधियां कीं. इन सहायक संधियों के केवल अंग्रेज़ों को लाभ था, भारतीय शासकों को नहीं. इसकी तुलना हम भेड़िये और मेमने के मध्य हुई किसी काल्पनिक संधि से कर सकते हैं.

लार्ड हेस्टिंग्स ने राजपूताना के शासकों के साथ 'अधीनस्थ पृथक्कीकरण' के अंतर्गत जो संधियाँ कीं वो सहायक संधियों का अगला महत्वकांक्षी चरण था. मराठा आतंक से भयभीत राजपूताना के इन राज्यों ने अपना अस्तित्व बचाने के लिए अपनी स्वतंत्रता को अंग्रेज़ों के हाथों स्वेच्छा से बंधक बना दिया था.

1858 के महारानी के घोषणा पत्र के बाद भारतीय शासकों को एक प्रकार का अभय–दान मिल गया था. अब अंग्रेज़ों के अधीनस्थ सहयोगी बनकर उन्हें अपना राज्य खोने का कोई भय नहीं था.ब्रिटिश रेज़िडेंट्स का भारतीय राजाओं के दरबार में यह दायित्व होता था कि वो ऐसी कोई भी गतिविध न होने दें जो कि ब्रिटिश–भारतीय साम्राज्य के लिए हानिकारक हो सकती हो.

1-6-10 कर्नल यंग हसबैंड का तिब्बत अभियान

'तिबेट फ्रंटियर कमीशन' के अंतर्गत कर्नल यंग हसबैंड का तिब्बत अभियान दिसंबर, 1903 से लेकर सितम्बर, 1904 तक चला था. हिमालयी राज्यों में केवल तिब्बत ही ब्रिटिश प्रभाव से अछूता रह गया था. इस समय तिब्बत पर चीन के अत्यंत निर्बल कुइंग राज्यवंश का नियंत्रण था. अंग्रेज़, हर कीमत पर पूर्व में रूसी प्रभाव–क्षेत्र के विस्तार को रोकना चाहते थे. भारत का तत्कालीन गवर्नर–जनरल लार्ड कर्ज़न, रशो–फ़ोबिया (थल–मार्ग से ब्रिटिश–भारत पर रूसी आक्रमण का भय) से ग्रस्त था. कर्नल यंग हसबैंड का अभियान अगस्त, 1904 में तिब्बत की राजधानी ल्हासा पहुँच गया. तिब्बती सेना के प्रतिरोध को अपनी मशीन गनों के बल पर कुचलते हुए इस ब्रिटिश अभियान ने चीन की सरकार को '1904 की ल्हासा की संधि' के माध्यम से यह वचन देने के लिए बाध्य किया कि वह किसी भी विदेशी शक्ति को तिब्बत के मामले में हस्तक्षेप नहीं करने देगी.

1-6-11 आंग्ल–अफगान युद्ध

ब्रिटिश भारत ने अफगानिस्तान में संभावित रूसी नियंत्रण तथा थल मार्ग से होते हुए ब्रिटिश–भारत पर रूसी आक्रमण के भय के कारण अफगानिस्तान से क्रमशः 1839–42] 1878–80 और 1919 में, तीन युद्ध किए थे. आंग्ल–अफ़गान सम्बन्ध, ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार की नीति का तथा उसकी कूटनीति का सबसे शर्मनाक अध्याय है. इन तीन युद्धों के माध्यम से अंग्रेज़ों ने हर बार अफगानिस्तान में अपना प्रभाव बढ़ाने का और वहां पर रूसी प्रभाव कम करने का प्रयास किया किन्तु उन्हें भयंकर सैनिक क्षति तथा आर्थिक क्षति के बावजूद अपने लक्ष्य में सफलता नहीं मिली. जहाँ एक ओर प्रथम आंग्ल–अफ़गान युद्ध में अंग्रेज़ों की सबसे बड़ी पराजय हुई, वहां तृतीय आंग्ल–अफ़गान युद्ध के पश्चात उन्हें अफ़गान स्वतंत्रता को मान्यता देनी पड़ी और अफ़गान–रूसी मित्रता को भी स्वीकार करना पड़ा.

1-6-12 आंग्ल–बर्मा युद्ध

ब्रिटिश भारत ने बर्मा के साथ क्रमशः 1824–26] 1852 तथा 1885 में, तीन युद्ध लड़े थे. इनका उद्देश्य जहाँ एक ओर ब्रिटिश–भारतीय साम्राज्य की पूर्वी सीमा को सुरक्षित बनाना था, वहां दूसरी ओर साम्राज्य–विस्तार भी था. प्रथम आंग्ल–बर्मा युद्ध में सफलता के पश्चात अंग्रेज़ों का आसाम, मणिपुर तथा अराकान पर अधिकार हो गया. लार्ड डलहौज़ी की साम्राज्य–विस्तार की नीति के अंतर्गत बिना किसी ठोस कारण के द्वितीय आंग्ल–बर्मा युद्ध हुआ जिसमें मिली सफलता से अंग्रेज़ों ने रंगून सहित, पेगू प्रान्त (तदन्तर लोअर बर्मा) पर अधिकार कर लिया. 1885 में तृतीय आंग्ल–बर्मा युद्ध का उद्देश्य, बर्मा में बढ़ते हुए फ़रांसीसी प्रभाव को रोकना बताया गया किन्तु इस युद्ध में मिली सफलता के बाद शेष बर्मा पर भी ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित हो गया.

1-6-13 आंग्ल–गोरखा सम्बन्ध

आंग्ल–गोरखा वैमनस्य का मुख्य कारण दोनों ही शक्तियों की साम्राज्यदृविस्तार की नीतियां थीं. नेपाल दरबार में अपना प्रभाव स्थापित कर एक ओर जहाँ अंग्रेज़ वहां से उच्च कोटि की ऊन और प्रचुर मात्रा में लकड़ी प्राप्त करना चाहते थे वहां वो दूसरी ओर कुमाऊँ, गढ़वाल के पर्वतीय क्षेत्रों पर अपना अधिकार भी करना चाहते थे. इसके अतिरिक्त तिब्बत पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए उनका नेपाल पर अपना प्रभाव स्थापित करना भी आवश्यक था. नेपाल की साम्राज्य–विस्तार की महत्वाकांक्षा में कांगड़ा, तिब्बत और पहाड़ी दर्रों पर अधिकार करने तक पहुँच गयी थी. 1814–16 के आंग्ल–गोरखा युद्ध की पृष्ठभूमि में दोनों शक्तियों के मध्य इन्हीं हितों का टकराव था. गवर्नर–जनरल लार्ड हेस्टिंग्स ने अवध के नवाब से आर्थिक सहायता प्राप्त की. अंग्रेज़ी सेना ने गोरखों से नालापानी, जयथक, मलाऊ में युद्ध किए और उन्हें 1816 में सगौली की संधि करने के लिए विवश किया. अंग्रेज़ों की यह एक बड़ी सैनिक सफलता तो थी ही पर उस से भी बड़ी यह उनकी कूटनीतिक सफलता थी. ब्रिटिश भारत सरकार ने गोरखों से कुमाऊँ और गढ़वाल के क्षेत्र प्राप्त किए. अब तराई के एक विशाल भू–भाग पर उनका अधिकार हो गया. अंग्रेज़ों ने गोरखों को ब्रिटिश सेना में प्रवेश दिया जिसके कारण उन्हें 1857 के विद्रोह को कुचलने में सफलता मिली. गोरखा–सैनिकों ने प्रथम विश्वयुद्ध तथा द्वितीय विश्व–युद्ध में अपने पराक्रम के कीर्तिमान स्थापित किए. आज भी गोरखा सैनिक ब्रिटिश सेना का अविभाज्य अंग हैं.

1-6-14 औपनिवेशिक इतिहास लेखन

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन अनवरत शोषण और दमन की गाथा है किन्तु पाश्चात्य देशों के इतिहासकारों ने इसका इतिहास इस प्रकार लिखा है जिस से यह प्रतीत होता है कि औपनिवेशिक शासकों ने ही इन परतंत्र राष्ट्रों में पहली बार सभ्यता के बीज बोए थे और

स्थानीय निवासियों को सभ्यता का पहला पाठ पढ़ाया था. रुडयार्ड किपलिंग की अवधारणा – 'वाइट मैन्स बर्डन' इस मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है.

1-6-15 विजित जाति का दमन

उपनिवेशवाद का अर्थ है – किसी सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी सैनिक दृष्टि से निर्बल किन्तु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र पर अपनी शक्ति के बल पर अधिकार कर उसके संसाधनों का अपने हित में उपयोग करना. उपनिवेशवाद में उपनिवेश की जनता एक विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित होती है और उसे शासन में न तो पूरे राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं और न ही पूरे आर्थिक अधिकार.

औपनिवेशिक शासन दृ इसमें अनवरत दमन, दोहन, शोषण, जातिभेद, रंगभेद और धर्मभेद की निर्मम गाथा है. उपनिवेशवाद के निहितार्थों में उपनिवेश के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, उपनिवेशों के लिए अपने उत्पादों के लिए नए बाज़ारों का निर्माण, और उपनिवेश (अधीनस्थ देश) में अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक मूल्यों का विस्तार करना सम्मिलित है.

1-7 सारांश

भौगोलिक खोजों से यूरोपीय देशों को अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका में सैनिक दृष्टि से कमज़ोर किन्तु प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध क्षेत्रों पर अपना अधिकार करने का अवसर मिला. अपने–अपने उपनिवेशों का विभिन्न शासक राज्यों ने जिस प्रकार बहु–आयामी दोहन किया वह नैतिक दृष्टि से निन्दनीय है.

यूरोपीय राज्यों के साम्राज्य–विस्तार ने उनके संसाधनों में अपार वृद्धि की. उपनिवेशों से अपार धन–सम्पदा आ जाने से यूरोपीय जन–जीवन स्तर में सुधार आया तथा कला का सर्वतोमुखी विकास हुआ. यूरोपीय सन्दर्भ में उपनिवेशवाद ने विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया. यूरोप में वाणिज्यिक क्रान्ति ने उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया. यह सिद्धान्त कि – उपनिवेश का अस्तित्व शासक राज्य के लाभ के लिए है' उपनिवेशों के दोहन का मूल मन्त्र बन गया.

सोलहवीं शताब्दी तक समुद्री मार्ग द्वारा दुनिया के एक बड़े भाग की खोज कर ली गई थी. पुनर्जागरण के दौरान वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप यूरोपीय देशों ने न केवल नौ–चालन के क्षेत्र में बहुत प्रगति कर ली थी अपितु अस्त्र–शस्त्र के क्षेत्र में भी समान रूप से प्रगति कर ली थी. इन अनुकूल परिस्थितियों में अनेक यूरोपीय देशों में 'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एण्ड लस्ट फॉर ग्लोरी' (धन का लोभ और यश की लालसा) की भावना के वशीभूत होकर औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई. अपने देश में उत्पादित माल की बिक्री के लिए नए बाज़ारों की तलाश और अपने यहां तैयार उत्पादों के लिए आवश्यक कच्चे

माल की सस्ते में और नियमित एवं निर्बाध आपूर्ति की समस्या, इन दोनों का ही समाधान अधिक से अधिक और बड़े से बड़े उपनिवेशों की स्थापना में मिल सकता था.

साम्राज्य–विस्तार की होड़ में स्पेन, साम्राज्य–विस्तार की होड़ में पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैंड और फ्रांस की तुलना में इंग्लैंड पीछे रह गया था. 1583 में न्यू फाउंडलैंड में ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित हुआ. सोने–चांदी की लालसा ने सोने–चांदी की लालसा, आ.हुआ. सोने–चांदी की लालसा, सोने–चांदी की लालसा, व्यापारिक लाभ, गर्म मसालों, तम्बाकू और चीनी आदि के लिए इंग्लैंड ने 17 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही अपने साम्राज्य–विस्तार के प्रयास तेज़ कर दिए. अमेरिका में जेम्सटाउन, वर्जीनिया, मैरीलैंड, रोड, कैरोलिना प्रान्त की स्थापना हुई. फ़ोर्ट एम्सटर्डम के समर्पण के बाद अंग्रेज़ों ने डच उपनिवेश न्यू नीदरलैंड पर अधिकार कर लिया और इसका नाम न्यूयॉर्क रखा. विलियम पेन ने

पेन्सिलवेनिया की स्थापना की.

कैरीबियन द्वीपों में दृ सेंट किट्स, बारबडोस, नेविस तथा जमैका पर ब्रिटिश आधिपत्य हो गया. 1670 तक परवर्ती डोमिनियन ऑफ़ कनाडा के अधिकांश भू–भाग पर भी ब्रिटिश अधिकार हो गया.18 वीं शताब्दी में इंग्लैंड विश्व की सबसे बड़ी औपनिवेशिक शक्ति बन गया. अमेरिका की स्वतंत्रता के बाद ब्रिटेन का ध्यान एशिया तथा प्रशांत–महासागरीय क्षेत्र में साम्राज्य–विस्तार की ओर केन्द्रित हो गया. अब तक इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी और अब वह मुक्त–व्यापार के नाम पर अपने उपनिवेशों को कच्चा माल उपलब्ध कराने की मंडी तथा अपने तैयार माल को खरीदने का बाज़ार बनाने के लिए तत्पर था. जेम्स कुक ने ऑस्ट्रेलिया में श्जेम्स कुक ने ब्रिटेन के लिए न्यू साउथवेल्स उपनिवेश की स्थापना की. जेम्स कुक ने न्यूज़ीलैंड में भी ब्रिटिश उपनिवेश स्थापित किया. एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भी योगदान रहा. पनांग, लाबुआन तथा हांगकांग पर ब्रिटिश अधिग्रहण में उसकी भूमिका रही.अफ्रीका में केप कॉलोनी, मिस्र, रोडेशिया, ज़िम्बाबवे तथा युगांडा ब्रिटिश उपनिवेश बने.

वैश्विक पुलिस की भूमिका (पैक्स ब्रिटैनिका) निभाते हुए और शानदार पृथक्कीकरण की नीति अपनाते हुए ब्रिटेन ने 1815 से 1914 तक अपने साम्राज्य में लगभग 2 करोड़ 60 लाख वर्ग किलोमीटर की वृद्धि की. ब्रिटेन के संरक्षित राज्य सभी महाद्वीपों में थे. इन पर उसका आधिपत्य तो नहीं था किन्तु उनकी आर्थिक तथा विदेश नीतियां उसके नियंत्रण में होती थीं. ब्रिटेन के औपनिवेशिक शासन के इतिहास में दास–व्यापार एक बहुत बड़ा कलंक था. दासों को बेचना, खरीदना और उन से पालतू जानवरों से भी बुरा व्यवहार करते हुए उनके श्रम का शोषण करना नितांत अमानवीय था.ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार से ब्रिटेन में अथाह संपत्ति आई और इस से पूंजीवादी व्यवस्था मज़बूत हुई तथा वाणिज्यवाद को बढ़ावा मिला. इसने ब्रिटेन में

औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि भी तैयार कर दी.ब्रिटेन सहित समस्त यूरोप में कला का सर्वतोमुखी विकास भी साम्राज्य–विस्तार की देन था.साम्राज्य–विस्तार की होड़ ने यूरोपीय देशों में प्रतिस्पर्धा को भी जन्म दिया.

अंग्रेजों ने अपने दमनकारी औपनिवेशिक शासन को अपने गुलाम देशों की प्रजा के लिए कल्याणकारी सिद्ध करने का अनवरत प्रयास किया. परन्तु उनका शासन दमन और शोषण की पराकाष्ठा द्योतक था. ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों में लार्ड डलहौज़ी द्वारा लागू किया गया व्यपगत का सिद्धांत दृ 'समरथ को नहीं दोस गुसाईं' की उक्ति को चरितार्थ करता है. कुशासन के बहाने वफ़ादार और मददगार दोस्त अवध का हस्तगत किया जाना भी घोर अनैतिक था. 1858 के महारानी के घोषणापत्र के बाद से भारतीय रियासतों को जीवनदान अवश्य मिल गया किन्तु उनको ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा और स्वामिभक्ति का निरंतर ज्ञापन करना पड़ा. ब्रिटिश साम्राज्य में व्यापारिक लाभ तथा औद्योगिक हितों को सर्वोपरि रक्खा गया. ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में व्यापारिक कम्पनियों की उल्लेखनीय भूमिका रही.

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार में प्लासी का युद्ध, बक्सर का युद्ध, मैसूर राज्य से युद्ध, गोरखों से युद्ध, मराठों से युद्ध और सिक्खों से युद्ध प्रमुख हैं. भारतीय शासकों के साथ लार्ड वेलेज़ली द्वारा लागू सहायक संधियों ने अंग्रेज़ों को भारत की प्रमुख शक्ति बनाने के साथ उन्हें क्षेत्रीय लाभ भी कराया था. लार्ड हेस्टिंग्स के काल में राजपूत शासकों के साथ हुई अधीनस्थ पृथक्कीकरण की संधियों ने अंग्रेज़ों को रणजीत सिंह के राज्य को छोड़कर शेष भारत की एकमात्र शक्ति बना दिया था और 1858 की महारानी की घोषणा से पूरा भारत ब्रिटिश ताज के अधीन हो गया था. अंग्रेज़ों की यह नीति थी कि अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए वो अपने अधीनस्थ राज्यों के पड़ौसी राज्यों की विदेश नीतियों पर भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपना नियंत्रण रक्खें.

आंग्ल–गोरखा युद्ध हिमालयी पहाड़ी क्षेत्र तथा तराई के क्षेत्र पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करने के लिए हुआ था. 1816 की सगौली की संधि से अंग्रेज़ों को गढ़वाल और कुमाऊँ भी प्राप्त हुए और ब्रिटिश सेना को बहादुर गोरखा सेना भी प्राप्त हुए. इस विषय में 'रशो–फ़ोबिया' (थल मार्ग से अफगानिस्तान होते हुए भारत पर रूसी आक्रमण का भय) के करण तीन अनावश्यक आंग्ल–अफ़गान युद्ध हुए जिनका परिणाम अंग्रेज़ों के लिए लाभकारी नहीं रहा. 1904 में कर्नल यंग हसबैंड का तिब्बत अभियान हिमालयी क्षेत्र पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करने का एक अनैतिक किन्तु सफल अभियान था.तीन आंग्लि–बर्मा युद्धों के माध्यम से अंग्रेज़ों ने बर्मा को पूरी तरह से अपना अधीनस्थ राज्य बना लिया.विजित जाति का आर्थिक दोहन और राजनीतिक दमन ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सबसे बड़ा कलंक है. जाति–भेद रंग–भेद और धर्म–भेद तथा

अपनी भाषा तथा अपनी संस्कृति को गुलाम देश के निवासियों पर थोपना इस प्रकार के शासन का अंग था.

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए

1- अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार

2- लार्ड वेलेज़ली की सहायक संधियाँ

3- 'रशो–फ़ोबिया' के परिप्रेक्ष्य में आंग्ल–अफ़गान युद्ध

1-8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- देखिए 1-4-4-3 अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य–विस्तार

2- देखिए 1-6-9 भारतीय रियासतों के साथ ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध

3- देखिए 1-6-11 आंग्ल–अफगान युद्ध

1-9 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रांट ऑफ़ दीवानी दृ मुग़ल बादशाह शाह आलम द्वारा ईस्ट ऑफ़ इंडिया कंपनी को बंगाल बिहार तथा उड़ीसा का दीवान बनाया जाना (इन प्रान्तों का राजस्व एकत्र करने का अधिकार प्रदान किया जाना)

'ग्रीड ऑफ़ गोल्ड एंड लस्ट फॉर ग्लोरी' – धन का लोभ और यश की लालसा

'वाइट मेन्स बर्डन' – श्वेत–वर्ण जाति का, समस्त मानव–जाति को सभ्य बनाने का दायित्व

'सेफ्टी–वाल्व थ्योरी' – भारतीयों को किंचित राजनीतिक, प्रशासनिक अधिकार देकर उनके असंतोष को शांत करना

'रशो–फ़ोबिया' दृ ब्रिटिश भारत पर थल मार्ग से, अफगानिस्तान होते हुए रूसी आक्रमण का भय

1-10 सन्दर्भ ग्रन्थ

मार्शल, पी. जे. तथा लो, एलेन 'दि ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ दि ब्रिटिश एम्पायर वॉल्यूम 2] दि एटीन्थ सेंचुरी' ऑक्सफ़ोर्ड, 2011

डफ़ी, माइकल 'वर्ड वाइड वॉर एंड ब्रिटिश एक्सपेंशन दृ 1793–1815*

म्यूर, रैमज़े 'दि करैक्टर ऑफ़ दि ब्रिटिश एम्पायर' ऑक्सफ़ोर्ड, 1917

म्यूर, रैमज़े ब्रिटिश हिस्ट्री' 1928] ऑक्सफ़ोर्ड

म्यूर रैमज़े 'दि एक्सपेंशन ऑफ़ यूरोप दि कल्मिनेशन ऑफ़ मॉडर्न हिस्ट्री' लन्दन, 2006

नौरोजी, दादाभाई 'पावर्टी एंड दि अन–ब्रिटिश रूल इन इंडिया' लन्दन, 1902

केनी, निकोलस दृ 'दि ओरिजिंस ऑफ़ एम्पायर दि ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश एम्पायर, वॉल्यूम 1] ऑक्सफ़ोर्ड, 2009

लॉयड, ट्रेनर ओवेन 'दि ब्रिटिश एम्पायर 1558–1995] ऑक्सफ़ोर्ड, 2009

थरूर, शशि 'एन एरा ऑफ़ डार्कनेस दि ब्रिटिश एम्पायर इन इंडिया', नई दिल्ली, 2016

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटेन द्वारा विजित जातियों के आर्थिक शोषण तथा उनके प्रति दमनकारी नीतियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए.

ब्लॉक दो

इकाई दोः आँग्ल फ्रांसिसी प्रतिस्पर्धा–कर्नाटक युद्ध

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 आँग्ल फ्रांसिसी संघर्ष का कारण

2.3.1 कर्नाटक एवं त्रिचना पल्ली

2.3.2 कनार्टक का प्रथम युद्ध (1746–48)

2.3.3 कर्नाटक का द्वितीय युद्ध (1749,–54)

2.3.4 युद्ध का घटनाक्रम

2.3.5 कर्नाटक का तीसरा युद्ध (1756–1763)

2.4 फ्रांसिसियों की असफलता के कारण

2.4.1 फ्रांस का यूरोप को अधिक महत्व देना

2.4.2 दोनो देशों की प्रशासनिक भिन्नताएं

2.4.3 दोनों कम्पनियों के गठन एवं प्रकृति में असमानता

2.4.4 फ्रासीसीयों के पास उत्तम बस्तियों का अभाव

2.4.5 अंग्रेजो का बंगाल पर अधिकार

2.4.6 अंग्रेज एवं फ्रासीसी अधिकारियों की योग्यता में अन्तर

2.4.7 नौसेना की भूमिका

2.4.8 डूप्ले की वापसी

2.5 डूप्ले का जीवनचरित एवं मूल्यांकन

2.6 बोध प्रश्न

2.7 सन्दर्भित ग्रन्थ

2.1 प्रस्तावना

भारत में यूरोप से व्यापार करने हेतु यूरोप की चार प्रमुख जातियां भारत आयी। सर्वप्रथम भारत में पुर्तगालियों का आगमन हुआ और इन्होने पूर्वी व्यापार पर एक शताब्दी तक नियन्त्रण करते हुये खूब धन कमाया। इसके बाद डचो का पूर्व में आगमन हुआ डचो ने पुर्तगालियों के व्यापारिक अधिकारी को समापत करते हुये गर्म गसलों के द्वीपों पर नियन्त्रण

स्थापित कर लिया। डचों के बाद अग्रेजों ने पूर्वी व्यापार में सक्रियता से भाग लेना शुरू किया और शीघ्र ही पुर्तगालियों एवं डचो से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा में बहुत आगे निकल गयें। पूर्व के व्यापार में फ्रांसिसीयों का आगमन सबसे बाद में हुआ। भारतीय व्यापार की प्रतिद्वन्दिता एवं उपनिवेश स्थापना तथा राजनीतिक प्रमुखता के प्रश्न पर अंग्रेजो एवं फ्रांसिसीयों के मध्य संघर्ष हुआ। दोनो यूरोपीय शक्तियों का संघर्ष दक्षिण भारत के कर्नाटक में प्रारम्भ हुआ जिसमें अंग्रेजो ने फ्रांसिसीयों को परास्त करते हुए भारतीय व्यापार एवं राजनीति से बाहर कर दिया।

2.2 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन का उद्येश्य निम्न है–

1– भारत में यूरोपीयों का व्यापारिक अगामन एवं उनके मध्य व्यापारिक प्रतिस्पर्धा एवं एकाधिकार प्राप्त कर अधिकाधिक मुनाफा कमाने की प्रवत्ति ने एक दूसरे को कैसे समाप्त करने का प्रयास किया।

2– अंग्रेजो एवं फ्रांसिसीयो के मध्य संघर्ष के कारणों एवं यूरोप में इन दोनों देशों के मध्य पारिस्परिक संबधो का इनके क्रिया–कलापो एवं व्यवहारों में कितना प्रभाव पड़ता था।

3– दक्षिण भारत की राजनीतिक दशा का परीक्षण करना।

4– इस संघर्ष में फ्रांसिसीयों की असफलता के कारणो को समझने में असानी होगी।

2.3 आँग्ल फ्रांसिसी संघर्ष का कारण

आग्ल फ्रांसिसीयों के मध्य संघर्ष का मूलतः निम्न कारण था।

1– व्यापारिक एकाधिकार की स्थापना का प्रयास –

भारत मे आने वाले यूरोपीय कम्पनियों का प्रारम्भिक उद्येश्य व्यापार करके अधिकाधिक धन कमाना था। यह तभी सम्भव था जब किसी एक का व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त हो जाय और वह अन्य कम्पनियों को अपने मार्ग से हटा दे जिससे वह अपना माल न्यूनतम दाम पर खरीद सके और उसे अधिकतम भाव में बेचें। इसी व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त करने की चेष्टा ने अंग्रेजो एवं फ्रांसिसीयों को एक दूसरे का शत्रु बना दिया।

2– 17वी शताब्दी के अन्त तक पुर्तगालियों डचों एवं अंग्रेजों के मध्य होने वाला त्रिकोणीय व्यापारिक संघर्ष समाप्त हो गया था और अंग्रेजो को इसमे विजय प्राप्त हो गयी थी इस संघर्ष के बाद ही फ्रांस ने व्यापारिक एवं औपनिवेशिक क्षेत्र में पदार्पण किया जिससे फ्रांस एवं अंग्रेजो के मध्य प्रतिद्वन्दिता अवश्यम्भावी हो गयी।

3– 17वी, 18वी शताब्दी में अंग्रेज एवं फ्रांसिसी एक दूसरे के शाश्वत शत्रु थे। यूरोप में जब भी इन दोनो देशो के मध्य युद्ध छिड़ता, संसार के उस हर कोने में जहां दोनो देशों की कम्पनियॉ होती वे आपस में टकरा जाती थी। वाल्टेयर का कथन था कि ''हमारे

देश में चलने वाली पहली गोली अमेरिका और एशिया के सब तोप खानों में दिया सलाई दिखा देता है।

4– भारत की कमजोर केन्द्रीय सत्ता इस संघर्ष का एक प्रमुख कारण है। क्योंकि जब तक भारत पर मुगलों का शासन हठ एवं शक्तिशाली था तब तक में विदेशी व्यापारी नियन्त्रण में थे। मुगलों के पतन से भारत की राजनीतिक स्थिरता नष्ट हो गयी फलतः इस अराजक स्थिति में विदेशी कम्पनियां बेलगाम हो गयी और आपस में संघर्ष करने लगी।

5– कर्नाटक की बिगड़ती राजनीतिक दिशा ने भी अंग्रेजो एवं फ्रांसिसीयों का एक दूसरे से संघर्ष के लिये प्रेरित किया। अतः यहां कर्नाटक की राजनीतिक स्थिति को समझना आवश्यक है।

मुगलों के कमजोंर होने की स्थिति में दक्षिण भारत में दो प्रमुख राजनीतिक शक्ति थे मराठे एवं हैदराबाद के निज़ाम। लेकिन इनके अलावा भी छोटे–छोटे हिन्दू राजाओं एवं मुस्लिम नवाबों का दक्षिण भारत मे ंशासन था। दक्षिण की इन छोटी–बड़ी राजनीतिक शक्तियों के मध्य राजनीतिक द्वेष एवं आपसी संघर्ष ने दक्षिण भारत को युद्ध एवं षड्यन्त्र का मैदान बना दिया था। दक्षिण भारत का एक प्रमुख्य राजनीतिक शक्ति हैदाराबाद राज्य था जिसकी स्थापना निजामुल मुल्क आसफ जाह ने की थी। आसफ जाह एक महत्वाकांक्षी एवं योग्य मुगल सरदार था मुगल सम्राट मुहम्मद शाह के समय में इसने दक्षिण में आकर हैदराबाद मे ंअपने को स्वतंत्र बना लिया। तथा छोटे–छोटे दक्षिण के मुगल क्षेत्रो ंका स्वामी बन गया। 1748 में आसफ जांह की मृत्यु से हैदराबाद राज्य में उत्तराधिकार के प्रश्न पर आसफजाह के पुत्र नासिर जंग एवं पौत्र मुजफ्फरजंग के मध्य संघर्ष शुरू हो गया।

2.3.1 कर्नाटक एवं त्रिचना पल्ली

यद्यपि आसफ जांह दक्षिण के समस्त मुगल क्षेत्रों के स्वामी होने का दावा करता था तथापि कर्नाटक का नवाब दोस्त अली निज़ाम की अधीनता का दिखावा करते हुए कर्नाटक पर स्वतत्रता पूर्वक शासन कर रहा था। कर्नाटक की राजधानी अर्काट थी। कर्नाटक में अधीन ही त्रिचना पल्ली का एक छोटा हिन्दू राज्य था जिसे दोस्त अली के दामाद चाँदा साहब ने हिन्दू रानी से विवाहोंपरान्त प्राप्त कर लिया था। 1741 मे ंदोस्त मुहम्मद की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सफदर अली कनार्टक का नवाब बना किन्तु इसके चचेरे भाई मुर्तजा अली ने षड्यन्त्र कर सफदर अली की हत्या कर दी एवं स्वयं नवाब बन गया किन्तु अर्काट की जनता ने मुर्तजा के विरूद्ध विद्रोह कर दिया जिससे मुर्तजा अली को भेष बदलकर भागना पड़ा। पुनः सफदर अली के अल्प वयस्क पुत्र मुहम्मद अली को नवाब बनाया गया। कर्नाटक के इस अशान्त माहौल का फायदा उठाते हुए निजाम ने कर्नाटक मे ंहस्तक्षेप किया तथा वहां अपने समर्थक अनवरूद्दीन

को मुहम्मद अली का संरक्षक बना दिया। अवसर देखकर अनवरूद्दीन ने मुहम्मद अली की हत्या कर दी तथा स्वयं नवाब बन बैठा। इन्हीं आन्तरिक एवं उत्तराधिकार के संघर्षो अंग्रेजो तथा फ्रांसिसीयों के मध्य प्रथम कर्नाटक युद्ध छिड़ा।

2.3.2 कनार्टक का प्रथम युद्ध (1746–48)

कर्नाटक के प्रथम युद्ध का कारण 1740ई0 में इग्लैण्ड एवं फ्रांस के बीच यूरोप में आस्ट्रियां के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर हुआ सघर्ष था। परिणामस्वरूप विश्व में जहां भी दोनों जातियां थी वही संघर्ष प्रारम्भ हो गया। शुरूआत अंग्रेजो की तरफ से हुई, अंग्रेज कप्तान वारनेट ने कुछ फ्रांसिसी जलपोत पकड़ लिये। पांडिचेरी का नवनियुक्त गर्वनर डूप्ले ने मारीशस के फ्रांसिसी गर्वनर ला–वूर्डोने से सहायता मांगी। ला वूर्डोने 3000 सैनिकों के साथ कोरो मण्डल तट की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसने अंग्रेजी नौसेना को परास्त कर दिया फ्रांसिसीयों ने जल एवं थल दोनो ओर से मद्रास को घेर लिया। डूप्ले ने कर्नाटक के नवाब अनवरूद्दीन को मद्रास देने का प्रलोभन देकर अपनी ओर कर लिया 21 सितम्बर 1746 को मद्रास ने आत्म समर्पण कर दिया। यह स्मरण करने योग्य है कि इन युद्ध वन्दियों में क्लाइव भी एक था। इसी समय डूप्ले एवं लाबूर्डोन के बीच मतभेद हो गया। लाबूर्डोने एक अच्छी फिरौती के बदले मद्रास को लौटाना चाहता था जबकि डूप्ले मद्रास को फ्रांसिसीयों के अधीन करना चाहता था। लावूर्डोने एक ऊँची कीमत पर मद्रास अंग्रेजो को बेच दिया। किन्तु डूप्ले ने इसको स्वीकार नही किया तथा पुनः मद्रास पर अधिकार कर लिया। परन्तु डूप्ले फोर्डसेंट डेविड जो पांडचेरी से 18 मील दूर था को जीतने में असफल रहा। दूसरी ओर अंग्रेजी कमाण्डर वास्कोवे के नेतृत्व में अंग्रेजो ने पांडिचेरी पर घेरा डाल दिया, किन्तु फ्रांसिसीयों ने बिना समुद्री सहायता के वास्को के इस प्रयास को विफल कर दिया। मद्रास को फ्रांसिसी संरक्षण में देखकर कर्नाटक के नवाब अनवरूद्दीन ने पूर्व शर्त के अनुसार डूप्ले से मद्रास की मांग की किन्तु डूप्ले अपनी बात से मुकर गया जिससे कुछ क्षुब्ध होकर नवाब ने एक बड़ी सेना फ्रांसिसीयों के विरूद्ध भेजी। नवाब की इस भेजी सेना को डूप्ले ने 'सेट टोमे' के युद्ध में पराजित कर दिया। कर्नाटक का यह पहला युद्ध 'सेंट टोमे' के युद्ध के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध है। सेंट टोमे या अड़यार का युद्ध पहला युद्ध है जो किसी भारतीय सेना एवं यूरोपीय सेना के बीच हुआ इस युद्ध में कैप्टन पैराडाइज के नेतृत्व में एक छोटी सी फ्रांसिसी सेना जिसमे 230 फ्रांसिसी तथा 700 भारतीय सैनिक थे, ने महफूज खां के नेतृत्व में 10000 भारतीय सेना को आसानी से पराजित कर दिया। इस युद्ध ने तोपखाने से सुसज्जित, अनुशासित यूरोपीय सेना का मुख्यतः घुसड़वार युक्त ढीली एवं असंगठित भारतीय सेना पर श्रेष्ठता साबित कर दिया इस युद्ध ने ही भारत में यूरोपीय राजनीतिक नियन्त्रण की नींव डाली क्योंकि युद्ध का परिणाम अप्रत्याशित एवं अचम्भित करने वाला था।

यूरोप में युद्ध बन्द होते ही कर्नाटक का यह प्रथम युद्ध समाप्त हो गया 'एक्स ला शापेल' 1748 की सन्धि के द्वारा दोनो शक्तियों के मध्य समझौता हो गया तथा परस्पर जीते हुये प्रदेश एक दूसरे को दे दिये गयें। प्रो0 315 वेल के अनुसार **"1748ई0 की एम्स ला शायेल** की सन्धि भारत के इतिहास में एक नये युग का द्योतक है। इससे समुद्री शक्ति के प्रभाव का प्रदर्शन हुआ एवं भारतीय युद्ध पद्धति पर यूरोपीय युद्ध पद्धति की सफलता का प्रदर्शन हुआ। इससे यह स्पष्ट हो गया कि

भारतीय राज्यों के ह्रदय में कौन सा राजनैतिक विनाश धुन की भॉति अपना कार्य कर रहा है।''

कर्नाटक के प्रथम युद्ध एवं सन्धि डूप्ले के प्रयत्नों पर तुषारापात किया फ्रासिसीयों को हुए सारे लाभ छिन गये किन्तु फिर भी भारत में फ्रासिसीयो की घाक जम गयी। इस युद्ध से यूरोपीयों की तुलना में भारतीय सेना की दुर्बलता प्रकट हो गयी जिससे बाद में कर्नाटके के आन्तरिक संघर्षो में दोनो शक्तियों ने हस्तक्षेप की नीति का अनुसराण करना प्रारम्भ किया।

2.3.3 कर्नाटक का द्वितीय युद्ध (1749,–54)

कनार्टक का द्वितीय युद्ध प्रथम युद्ध के समान दोनो शक्तियों में प्रत्यक्ष रूप से नही हुआ वरन भारतीयों के आपसी संघर्षो से लाभ उठाने के उपक्रम यें दोनों शक्तियों में अप्रत्यक्ष रूप से संघर्ष हुआ। इस समय दक्षिण भारत में मराठे एवं मुस्लिम नवाबों के मध्य श्रेष्ठता की जंग छिड़ी थी जिसमे हैदराबाद कर्नाटक की गद्दी के उत्तराधिकारी के प्रश्न ने इसे और उलझा दिया।

कर्नाटक के प्रथम युद्ध ने डूप्ले की राजनैतिक महत्वाकांक्षा को जगा दिया था जब उसने भारतीय झगड़ो के माध्यम से फ्रासिसी प्रभाव जमाने की सूची। भालेसन ने इसे जो लिखा ''महत्वाकॉंक्षाएं जाग उठी परस्पर द्वेष बढ़ गये। जब बढ़ते हुए प्रभाव की आकाक्षॉंए द्वार खट–खटा रही थी तो उन्हे (यूरोपीयों को) शान्ति से क्या लेना देना।''

इस समय कर्नाटक, हैदराबाद तथा तन्जौर तीनों राज्यों में उत्तराधिकार के लिये संघर्ष चल रहा था।

कर्नाटक में नवाब दोस्त अली के पौत्र मोहम्मद अली की हत्या कर अनवरूद्दीन नवाब के रूप में शासन कर रहा था किन्तु भूतपूर्व नवाब दोस्त अली का निकट सम्बन्धी चॉंदा साहब जो त्रिचनापल्ली पर राज्य कर रहा था, कर्नाटक की गद्दी प्राप्त करना चाहता था परन्तु वह स्वयं इस समय मराठो का कैदी एवं सतारा में बन्दी था। चॉंद साहब ने मुजफ्फर जंग (जो हैदराबाद गद्दी का दावेदार था) से एक दूसरे की सहायता का वचन लेते हुए डूप्ले से सहायता मांगी डूप्ले ने इसे अवसर के रूप में देखा और सहायता का वचन दे दिया। हैदराबाद राज्य की नींव डालने वाला चिनकिलिच खॉरिज जिसे निजामुल मुल्क की उपाधि प्राप्त थी की 21 मई 1748 को मृत्यु हो गयी। नवाब का पुत्र नासिर जंग नवाब बन गया किन्तु इसके भतीजे

अथवा भान्जे मुजफ्फर जंग ने इस दावे को चुनौती दी मुजफ्फरजंग ने मजबूती के लिये चॉद साहब से परस्पर सहायता का समझौता कर लिया।

तंजौर में गद्दी के लिये मराठो के मध्य संघर्ष चल रहा या जिसमें अंग्रेजो की सहायता से शाहजी गद्दी पर बैठने में सफलता पायी थी।

2.3.4 युद्ध का घटनाक्रम

चॉदा साहब के द्वारा सहायता मांगी जाने पर डूप्ले ने उसे सहायता देकर मराठो की कैद से मुक्त करवा लिया। अब डूप्ले, चॉद साहब एवं मुजफ्फर जंग की सम्मिलित सेना ने नवाब अनवरूद्दीन को अगस्त 1749 में वेल्लोर में नजदीक अम्बर अथवा अम्बूर के स्थान पर हराकर मार दिया। अनवरूद्दीन का पुत्र अर्काट छोड़कर त्रिचना पल्ली भाग गया अतः कर्नाटक अब चॉदा साहब के हाथ में आ गया जिसके बदले उसने फ्रासिसीयों को पॉडिचेरी के निकट 80 गॉव भेंट में दिया अब डूप्ले की नीति सफल होती प्रतीत होने लगी। जिससे घबराकर अंग्रेजो ने अनवरूद्दीन के पुत्र एवं हैदराबाद में नासिर जंग का साथ देने का फैसला किया। और दोनो को सहायता भेजी। अंग्रेजी सहायता की मदद से नासिर जंग युद्ध के लिये कर्नाटक की ओर बढ़ा उसने चॉदा साहब को अकार्ट से भगा दिया तथा मुजफ्फर जंग ने आत्म समर्पण कर दिया कि अब स्थिति अंग्रेजो के पक्ष में हो गयी किन्तु डूप्ले इससे हतोत्साहित नही हुआ उसने नासिरजंग के विरूद्ध एक सेना भेजी जिससे एक झड़प में दिसम्बर 1750 को नासिर जंग मारा गया। अब डूप्ले ने मुजफ्फर जंग को बन्दी गृह से मुक्त कर हैदराबाद को नवाब बना दिया। कृतार्थ मुजफ्फरजंग ने फ्रासिसीयों को बहुत सा प्रदेश, धन, एवं डूप्लू को राजा की उपाधि प्रदान की। डूप्ले ने वुस्सी की अध्यक्षता से एक फ्रेंच सैनिक टुकड़ी मुजफ्फरजंग की सहायता के लिये हैदराबाद में तैनात कर दिया। 1751 में चॉदा साहब कर्नाटक के नवाब बन गये डूप्ले इस समय अपनी शक्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। फ्रासिसीयों की इस सफलता से अंग्रेजो की स्थिति ढावाढोल हो गयी। अब डूप्ले का केवल एक शत्रु अनवरूद्दीन का पुत्र त्रिचला पल्ली में शरण लिये हुआ था, डूप्ले एवं चॉदा साहब की सेना ने त्रिचना पल्ली पर घेरा डाल दिया यद्यपि उन्हे त्रिचना पल्ली को जीतने में सफलता नही मिली। तथापित अंग्रेजी सेना भी फ्रासिसी घेरे को तोड़ने में असफल रही। ऐसी विषम स्थिति में क्लाइव ने त्रिचना पल्ली पर दबाव कम करने के लिये केवल 210 सैनिको की सहायता से अकार्ट पर घेरा डाला और उसे जीत लिया। चान्दा साहब द्वारा भेजी गयी 4 हजार की सेना भी अकार्ट को अपने अधीन नही कर पायी। क्लाइव ने मुट्ठी भर सेना के साथ 53 दिनों तक इस सेना का प्रतिरोध किया। इससे फ्रासिसी प्रतिष्ठा पर गहरा आघात लगा। 1752 में स्ट्रिगर लारेन्स के नेतृत्व में एक दूसरी अंग्रेज सेना त्रिचना पल्ली पहुंच गयी जून 1752 में त्रिचना पल्ली पर घेरा वाली फ्रासिसी सेना ने हथियार डाल दिये। चॉदा साहब तन्जौर भागा जहां धोखे से उसकी हत्या हो गयी। त्रिचना

पल्ली की इस पराजय ने डूप्ले के भाग्य का सर्वनाश कर दिया। फ्रासिसी कम्पनी के डाइरेक्टरो ने इन युद्धो में व्यय हुए धन एवं हानि का जिम्मेदार डूप्ले को मानता उसे वापस बुला लिया। 1754 मे ंगोडेहू को भारत में फ्रांसिसी गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया 1755 में दोनो कम्पनियों के बीच पाडिचेरी की एक अस्थाई सन्धि हो गयी। इस सन्धि के द्वारा दोनो शक्तियो ने देशी नरेशो के संघर्ष में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया। यह भी निश्चित किया गया कि जब तक यूरोप में शान्ति रहे, भारत में भी शान्ति बनाए रखी जायेगी। और किसी नये दुर्ग का निर्माण नही किया जायेगा।

इस प्रकार कर्नाटक युद्ध को दूसरे दौर भी अनिर्णित रहा। थल पर अंग्रेजी सेना की प्रधानता सिद्ध हुई उनका प्रत्याशी मोहम्मद अली (नवाब अनवरूद्दीन का पुत्र) कर्नाटक का नवाब बन गया परन्तु हैदराबाद में फ्रासिसी अभी भी जमे रहे मुजफ्फर जंग की मृत्यु के बाद फ्रासिसीयों ने सलावतजंग को नवाब बना दिया तथा और भी धन प्राप्त किया इस दूसरे युद्ध से फ्रासिसी प्रतिष्ठा को कुछ ठेस पहुँची तथा अंग्रे जो की स्थिति दृढ़ हुई। कुछ इतिहासकारों के अनुसार 1754 की सन्धि पर हस्ताक्षर कर गोडेहू ने वह अपना सब कुछ बलिदान कर दिया जिसके लिये डूप्ले ने संघर्ष किया था। स्वयं डूप्ले ने गोडेह पर यह आरोप लगाया कि उसने 'देश के विनाश एवं जाति के अपमान पर हस्ताक्षर कर दिये।'

2.3.5 कर्नाटक का तीसरा युद्ध (1756–1763)

सन् 1756 मे ं यूरोप में सप्त वर्षीय युद्ध आरम्भ हो गया फलतः भारत में भी शान्ति समाप्त हो गयी दोनो शक्तियों ने युद्ध की तैयारियों शुरू कर दी फ्रासिसी सरकार ने अप्रैल 1757 को काउन्ट डी लाली को गर्वनर एवं कमाण्डर इन चीफ बना कर भारत भेजा जो लगभग 12 महीने की यात्रा के बाद 1758 में भारत पहुंचा इस बीच अंग्रेजो ने बंगाल में प्लासी के युद्ध में सिराज को हरा दिया तथा मीर जाफर को बंगाल का नवाब बना दिया। बंगाल में अंग्रेजो की इस सफलता एवं बंगाल में सत्ता परिवर्तन से अंग्रेजो को अकूत धन की प्राप्ति हुई। अब अंग्रेजो के सामने धन की कोई चिन्ता नही थी दूसरी ओर नवनियुक्त फ्रासिसी सेनापति लाली अत्यन्त वीर एवं योग्य व्यक्ति था किन्तु उग्र स्वभाव एवं हठी होने के कारण उसे असफलता मिली लैली के सामने एक प्रमुख समस्या धन की थी इसलिये फ्रासिसी सरकार ने यह आदेश देकर भेजा था कि वह भारत के राजाओं के मामले में हस्तक्षेप न करें अपितु अंग्रेजी व्यापार का विनाश करें। लैली के आते ही युद्ध आरम्भ हो गया 1758 में ही लाली ने फोर्ड सेंट डेविड जीत लिया तथा तंजौर पर बकाया 56 लाख न मिलने के कारण उस आक्रमण कर दिया किन्तु तंजौर अभियान सफल न हो सका अब लाली ने मद्रास का घेरा डाल दिया किन्तु एक शक्तिशाली नौसेना के आने पर उसे मद्रास का घेरा उठाना पड़ा। लाली ने अब हैदराबाद से वुस्सी को वापस बुला लिया यह उसकी भयंकर भूल थी क्योंकि वुस्सी के हटते ही हैदराबाद पर फ्रासिसी

प्रभाव समाप्त हो गया। लाली के क्रोधी एवं दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर फ्रासिसी जहाजी बड़े का प्रधान, भारत छोड़कर मारीशस चला गया। फलतः अंग्रेजी बेड़े ने पोकाक के नेतृत्व में फ्रासिसी बेड़े को तीन बार पराजित किया तथा भारतीय सागर से लौटने के लिये वाहय किया। इससे अंग्रेजी विजय स्वष्टतः दिखने लगी। 1760 में सर आयर कूट ने वाण्डिवास नामक स्थान पर फ्रासिसी सेना को बुरी तरह परास्त किया तथा वुस्सी को बन्दी बना लिया तथा पॉडिचेरीं की किलेबन्दी नष्ट कर दी इस प्रकार फ्रांस की शक्ति का आधार ही नष्ट हो गया।

इस युद्ध का समापन 1763 मे पेरिस की सन्धि द्वारा हुआ इस सन्धि ने फ्रासिसीयों के भारत मे साम्राज्य स्थापित करने के स्वप्न को छिन्न–भिन्न कर दिया। इस प्रकार युद्ध का तीसरा चरण पूर्णरूप से निर्णायक सिद्ध हुआ। पेरिस सन्धि से पॉडिचेरी, फ्रॉसिसीयों को मिल तो गया किन्तु इसकी किले बन्दी नष्ट कर दी गयी पॉडिचेरी के अतिरिक्त माही, कराइकल एवं चन्द्र नगर फ्रासिसीयों को वापस कर दिया गया किन्तु वहां कोई दुर्ग का निर्माण नही हो सकता था तथा अब स्पष्टतः भारत में इन का पत्ता साफ हो चुका था ईश्वरी प्रसाद के अनुसार अब केवल भारतीय शक्तियों से अंग्रेजो को निपटारा करना शेष रह गया''।

2.4 फ्रांसिसियों की असफलता के कारण

डूप्ले के नेतत्व में फ्रासिसियों ने एक समय मे अपनी राजनैतिक विजयों से भारतीय राजनीतिक मंच को हतप्रम कर दिया डूप्ले की अप्रत्याशित सफलता से यूरोप में खलवली मच गयी परन्तु इसके बाद भी फ्रांसिसी अन्ततः हार गये और भारतीय रंगमंच से विलुप्त हो गये। फ्रासिसीयों की यह पराजय आकस्मिक एवं अकारण नही थी अपितु इस पराजय के पीछे कई कारण छिपे ये जो निम्न है–

2.4.1 फ्रांस का यूरोप को अधिक महत्व देना

प्राचीन समय से फ्रांस यूरोप का एक सर्व प्रमुख देश था। 18वी शताब्दी में फ्रासिसी सम्राट अपनी प्राकृतिक सीमा स्थापित करने के उद्देश्य से अपने पड़ोसियों इटली, बेल्जियम एवं जर्मनी से युद्धो में उलझे हुए थे। फ्रासिसी सम्राटो की इस यूरोपीय महत्वाकाक्षां के कारण उनके आर्थिक साधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ता था। वास्तव में फ्रासिसीयों को यूरोप में कुछ वर्ग मील क्षेत्र की अधिक चिन्ता थी और भारत एवं उत्तरी अमेरिका के हजारों वर्ग मील की चिन्ता कम थी। इग्लैण्ड प्राकृतिक रूप से यूरोप के मुख्य भूमि से अलग है। इसलिये इग्लैड अपने आपको यूरोप से अलग मानता था और उसकी यूरोप में प्रसार की कोई इच्छा नही थी। यूरोप में इग्लैण्ड की भूमिका हमेशा शक्ति सन्तुलन बनाए रखने की होती है। इसलिये यूरोप के झगड़ो से दूर इग्लैण्ड की भूमिका हमेशा शक्ति सन्तुलन बनाए रखने की होती है इसलिये यूरोप के झगड़ो से दूर इग्लैण्ड एक चित्त होकर अपने व्यापार एवं उपनिवेश निर्माण में लगा

रहा तथा नौसैनिक श्रेष्ठता के बल पर उसने भारत एवं उत्तरी अमेरिका में फ्रांस को पछाड़ दिया।

2.4.2 दोनो देशों की प्रशासनिक भिन्नताएं

फ्रांस एवं इग्लैण्ड की शासन प्रणाली में बड़ी भिन्नता थी जहां फ्रांस में शासन पूरी तरह स्वेच्छाचारी निरंकुश राजाओं के हॉथ में था वही इग्लैण्ड में एक जागरूक अल्पतंत्र शासक कर रहा था। फ्रासिसी इतिहासकारो ने फ्रांस की असफलता के पीछे अपनी घटिया शासन प्रणाली को ही अधिक जिम्मेदार ठहराया है। वुर्वो वंश के अधीन महान लुई चौदहवे के निरन्तर युद्धो ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति खराब कर दी लुई चौहवे के अयोग्य उत्तराधिकारियों ने इस स्थिति को सम्भालने की जगह अपने ऐशो आराम विलासिता पर मनमाना खर्च किया जिससे फ्रांस की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी। इस आर्थिक विपन्नता की स्थिति में जब कम्पनी को धन की आवश्यकता हुई तो वह पूरी न की जा सकी। अल्फ्रेड लायल के अनुसार डूप्ले की वापसी लावोर्डाने तथा 5 आश की भूले, लाली की अदम्यता, इत्यादि से कहीं अधिक लुई पन्द्रहवे की भ्रान्तिपूर्ण नीति तथा उसके अक्षम मंत्री फ्रांस की असफलता के लिये उत्तरदायी थे।

2.4.3 दोनों कम्पनियों के गठन एवं प्रकृति में असमानता

दोनो कम्पनियों के निर्माण प्रशासन एवं कार्यप्रणाली में बड़ा अन्तर था। यह भिन्नता भी फ्रासीसीयों के असफलता का एक बड़ा कारण था। फ्रासीसी कम्पनी एक सरकारी कम्पनी थी जिसका 55 लाख फ्रैंक की पूॅजी से निर्माण किया गया जिसमे 35 लाख सम्राट ने लगाए थे। कम्पनी के डायरेक्टर सरकार द्वारा मनोनीत होते थे तथा लाभांश की सरकार गारंटी देती थी, अतएव कम्पनी के लोगों को इसकी समृद्धि की कोई विशेष आकांक्षा नही थी। यह कम्पनी 1721 से 1740 तक उधार के धन से व्यापार करती रही तथा सरकारी आर्थिक मदद से जैसे तैसे कम्पनी को चलाया जा रहा था। उदासीनता का आलम यह था कि कम्पनी के डायरेक्टरों की 1725 से 1765 के बीच एक भी बैठक नहीं हुई थी। ऐसी कम्पनी डूप्ले की महत्वाकाक्षाएं एवं युद्धो के लिये धनापूर्ति करने में सक्षम नही थी। दूसरी ओर अग्रेजी कम्पनी एक निजी कम्पनी थी तथा इसमें कर्मचारियों में कार्य को उत्साह पूर्वक आगे ले जाने की उत्कट अभिलाषा थी। अपनी कम्पनी की समृद्धि को बनाए रखने के लिये वे हर सम्भव कोशिश करते थे क्योंकि उनकी अपनी समृद्धि कम्पनी पर ही अधारित थी। अंग्रेजी कम्पनी की वित्तीय अवस्था अधिक सुदृढ़ थी कम्पनी के प्रबन्ध में कोई विशेष हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। अंग्रेजी कम्पनी की नीति पहले व्यापार फिर राजनीति थी। कम्पनी के अधिकारी सदैव व्यापार के महत्व पर बल देते थे दोनों कम्पनियों के व्यापार पर दृष्टि डाले तो अंग्रेजी कम्पनी का व्यापार फ्रासीसी कम्पनी से चार गुना ज्यादा था जिसका परिणाम यह हुआ कि कम्पनी को युद्ध के लिये धन की कमी कभी

भी महसूस नहीं हुई। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी कम्पनी के अधिकारियों के मध्य सहयोग एवं सहायता की भावना थी जबकि फ्रासीसी कम्पनी के अधिकारियों सेनापतियों के मध्य सहयोग एवं सहायता की भावना का अभाव था।

2.4.4 फ्रासीसीयों के पास उत्तम बस्तियों का अभाव

अंग्रेजी व्यापारी भारत में फ्रासीसीयों से लगभग 65 वर्ष पहले आये थे अतः उन्होने भारत में उत्तम तथा बढ़िया बस्तियां स्थापित कर ली थी बम्बई की बस्ती माही की अपेक्षा बढ़िया थी जबकि चन्द्र नगर कलकत्ता की तुलना में कुछ भी नही था, पॉडिचेरी मद्रास से कभी भी बराबरी नही कर सकता था। अंग्रेजो ने भारत मे बम्बई कलकत्ता एवं मद्रास में महत्वपूर्ण ठिकाने बना लिये थे जबकि फ्रासीसीयों के पास केवल पॉडिचेरी था।

अंग्रेजो का मुख्य केन्द्र बम्बई हर दृष्टि से उत्तम था जहां जहाजों को सुरक्षित रखने एवं मरम्मत की सुविधा थी। बम्बई उत्तर भारत के साधनो पर नियन्त्रण के लिये सर्वथा उपयुक्त था। फ्रासीसीयों के पास उत्तर भारत में ऐसा कोई स्थल नही था जिससे वे उत्तर भारत के साधनो का यथोचित प्रयोग कर सकते थे। पॉडिचेरी से आरम्भ करके भारत में साम्राज्य स्थापित करना प्रायः असम्भव था। डा0वी0ए0 स्मिथ ने लिखा है ''पॉडिचेरी को आधार बनाकर तो सिकन्दर महान अथवा नेपोलियन जैसा विजेता भी भारत वर्ष में उस सत्ता से लोहा नहीं ले सकता था जिसका बंगाल पर अधिकार था समुद्र पर नियन्त्रण ''

2.4.5 अंग्रेजो का बंगाल पर अधिकार

फ्रासीसीयों की पराजय का एक बड़ा कारण अंग्रेजो की बंगाल पर विजय थी क्योकि प्लासी की विजय ने अंग्रेजो को बंगाल के अपार धन एवं जनसंख्या का स्वामी बना दिया। जिस समय काउंट लाली को अपने सैनिकों को वेतन देने की चिन्ता थी बंगाल कर्नाटक में धन एव जन दोनो की पर्याप्त आपूर्ति कर रहा था इसी के बल पर अंग्रेजो ने कर्नाटक में फ्रासीसीयों पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध थी। मेरियट ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि ''डूप्ले ने मद्रास में भारत की चावी खोजने का निष्फल प्रयत्न किया। क्लाइव ने यह चावी बंगाल में खोजी और प्राप्त करली''

2.4.6 अंग्रेज एवं फ्रासीसी अधिकारियों की योग्यता में अन्तर

अंग्रेज और फ्रासीसी अधिकारियों की योग्यता में अन्तर भी अंग्रेजो की विजय एवं फ्रासीसीयों की पराजय का एक महत्वपूर्ण कारण था। अंग्रेजी कम्पनी का राजनैतिक एवं सैनिक नेतृत्व फ्रासीसी कम्पनी की अपेक्षा अधिक उत्तम था। डूप्ले तथा वुस्सी व्यक्तिगत रूप से क्लाइव लारेन्स एवं साण्डर्स से कम नही थे किन्तु उन्हे न तो अपने अधिकारियों से और न ही गृह सरकार से वह मदद मिली जो आवश्यक थी। डूप्ले साहसी एवं सफल कूटनीतिज्ञ तो था किन्तु उसकी कमी यह थी कि वह स्वयं अपने सैनिको में जोश एवं उत्साह नही भर सकता

था। लाली भी योग्य था किन्तु उसका स्वभाव बड़ा उग्र था वह पॉडिचेरी में कम्पनी के सभी कार्यकर्ताओं को बेइमान एवं झूठा समझता था तथा डरा–धमकाकर कार्य करवाने की प्रवृत्ति से उसके अधीनस्थ इतने नाराज थे कि जब लाली पराजित हो गया तो इन लोगो को प्रसन्नता हुई। लाली यह समझने की भूल कर गया कि विदेशी भूमि पर आपसी सहयोग एवं त्याग ही सबसे बड़ी शक्ति है। मालेसन के अनुसार लारेन्स, साण्डर्स, कैलियाड, फोर्ड आदि अनेक अंग्रेज पदाधिकारी डूप्ले के लाज, दा–व्यूल, ब्रेनियर जैसे फ्रासीसी अधिकारियों से कई गुना वीर, साहसी एवं उत्तम थे।

2.4.7 नौसेना की भूमिका

अंग्रेजो की नौसैनिक श्रेष्ठता भी फ्रासीसीयों के विरूद्ध उनकी सफलता का निर्णायक तत्व रहा है। यह बात पहले से स्पष्ट थी कि ' जो समुद्र पर राज करेगा वही संसार पर राज करेगा' डूप्ले को प्रारम्भिक सफलता नौसेना के माध्यम से ही मिली क्योकि उस समय अंग्रेजी नौसेना निष्क्रिय थी किन्तु सप्तवर्षीय युद्ध के कारण अंग्रेजी नैसेना जब सक्रिय हुई तो उसने अपने वरिष्ठता सिद्ध कर दी इसी कारण लाली को डूप्ले जैसी सफलता नही मिल सकी। डआस के वापस मारीशस जाने से भारतीय जल क्षेत्र का मार्ग अंग्रेजो के लिये बिल्कुल साफ हो गया इससे अंग्रेजो के लिये न केवल भारतीय व्यापार मार्ग खुले रहे अपितु बम्बई से कलकत्ता तक जलमार्ग द्वारा सेना का आवागमन अबाध रूप से चलता रहा। इसीलिये कहां जाता है कि यदि शेष कारण बराबर भी होते तो भी जलसेना की वरिष्ठता फ्रासीसीयों को परास्त करने के लिये पर्याप्त थी। प्रा0 डाडवेल ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'सामुद्रिक शक्ति का प्रभाव ही मुख्य कारण था जो अंग्रेजी सफलता का कारण बना। यद्यपि फ्रासीसी नौसेना कभी भी पूर्णरूपेण नष्ट नही हुई तथापि विभिन्न युद्धो के फलस्वरूप अंग्रेजो को अजेय वरिष्ठता प्राप्त हो गयी। अंग्रेजो को बंगाल से धन, रसद तथा यूरोप से नई भरती की गयीं सेना और उत्तरी भारत से अन्न मिलता रहा किन्तु फ्रासीसीयों को यह सब नही मिल सका इसीलिए अंग्रेज निरन्तर शक्तिशाली होते गये जबकि फ्रासीसी निरन्तर कमजोर परिणामस्वरूप आयर कूट को लाली पर स्पष्ट विजय प्राप्त हो गयी तथा फ्रासीसी पॉडिचेरी में सिमटने के लिये विवश हुए।

2.4.8 डूप्ले की वापसी

कई इतिहासकार फ्रासीसीयों के हार के लिये डूप्ले पर आक्षेप करते है। इन इतिहासकारों के मतानुसार यद्यपि डूप्ले एक योग्य एवं उत्तम नेता था तथापि वह राजनैतिक मसलो में ऐसा उलझ गया कि उसने व्यापार एवं वित्तीय पक्ष की अवहेलना की जिससे कम्पनी के व्यापार में अत्यधिक गिरावट आ गयी। द्वितीय कर्नाटक युद्ध के दौरान 1754 में उसे वापस बुला लिया गया किन्तु इतिहासकारों का एक बड़ा वर्ग फ्रांसीसी हार के लिये डूप्ले को जिम्मेदार नही मानता है इनके कथानुसार कम्पनी के हार के पीछे सैनिकों एवं धन की कमी थी। डूप्ले

एक चतुर राजनेता था यदि उसे फ्रासीसी सरकार द्वारा वापस न बुलाया गया होता तो इस युद्ध का परिणाम कुछ दूसरा होता डूप्ले के अतिरिक्त अन्य दूसरा इतनी कुशलता से भारतीय मामलों का संचालन नही कर सकता था। अतः फ्रासीसी हार के पीछे डूप्ले नही, डूप्ले की वापसी जिम्मेदार थीं।

2.5 डूप्ले का जीवनचरित एवं मूल्यांकन

जोसेफ फ्रांसिस डूप्ले का जन्म 1697 में लेड्रेसीज नामक स्थान पर हुआ। इसका पिता फ्रासीसी इंडिया कम्पनी का डायरेक्टर जनरल था। सन् 1720 में वह पिता के प्रभाव से पॉडिचेरी में एक उच्च पद प्राप्त किया। व्यक्तिगत व्यापार से उसने खूब धन कमाया परन्तु सन्देह के कारण डायरेक्टरों ने 1726 से इसे निलम्बित कर दिया। डूप्ले भारत में ही रहा तथा इस निर्णय के खिलाफ अपील की जिसमें इसे सफलता मिली तथा इसको सम्मान सहित बरी करते हुए 1730 मे चन्द्र नगर का डायरेक्टर नियुक्त किया गया। अपनी योग्यता एवं कार्य के कारण 1742 में उसे पॉडिचेरी का गवर्नर तथा भारत में फ्रासीसी बस्तियों का डायरेक्टर जनरल नियुक्त कर दिया गया जिस पद पर वह 1754 तक आसीन रहा। मुगल सम्राट द्वारा कृष्णा नदी से कन्याकुमारी के बीच के क्षेत्र का वह नवाब घोषित किया गया था।

डूप्ले एक महान प्रशासक, दक्षकूटनीति था जिसमें राजनीतिक अन्तदृष्टि तथा दूरदर्शिता भी समाहित थी।

डूप्ले भारत में आने पर अपनी निजी व्यापार के कारण शीघ्र ही धनी हो गया लेकिन उसके विभिन्न गुणों के प्रदर्शन का मौका चन्द्र नगर के डायरेक्टर बनाये जाने पर मिला। डूप्ले के एक योग्य प्रशासन से चन्द्र नगर बंगाल में सबसे अच्छी यूरोपीय बस्ती बन गया। डूप्ले ने व्यापारिक उन्नति के लिये अपनी निजी पूँजी व्यापार में लगाई, सहयोगियों का ऋण प्रदान किया तथा भारतीयों को चन्द्र नगर में बसने के लिये प्रोत्साहित किया। चन्द्र नगर की उन्नति में डूप्ले द्वारा प्रदर्शित असाधारण योग्यता ने फ्रांस मे डायरेक्टर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया जिससे उसे पॉडिचेरी का गर्वनर जनरल बना दिया गया। डूप्ले में विद्यमान ऊर्जा एवं गुणों के विकास की दृष्टि से चन्द्र नगर छोटी बस्ती थी किन्तु अब जबकि वह पॉडिचेरी का गवर्नर बना उसकी प्रतिभा को पूर्णरूप से विकसित होने का अवसर मिला। जिस समय वह पॉडिचेरी का गवर्नर बना उस समय पॉडिचेरी एक उजाड़ एवं वीरान क्षेत्र था। खेती नही हो रही थी तथा दुर्भिक्ष से जन संख्या भी थोड़ी ही रह गयी थी। कर्नाटक में उत्तराधिकार के संघर्ष से यह स्थिति और भी भयानक हो चुकी थी पॉडिचेरी की सुरक्षा का इन्तजाम भी नाकाफी था यूरोप में अंग्रेज एवं फ्रांस के मध्य युद्ध की सम्भावना बनी हुई थी ऐसी स्थिति मे डूप्ले ने पॉडिचेरी की सुरक्षा का पुख्ता बन्दोबस्त करना चाहा किन्तु कम्पनी के डायरेक्टरों की रूचि भारत की अपेक्षा उत्तरी अमेरिका में होने के कारण इस पर ध्यान नही दिया जा रहा था तथा

डूप्ले को व्यय में कमी करने की सलाह दी गयी। डूप्ले इस विनाशकारी आदेश की अवहेलना करते हुए पॉडिचेरी की दृढ़ किलेबन्दी की और इसमें अपना भी बहुत सा धन व्यय किया। आय एवं व्यय पर नियन्त्रण स्थापित किया शीघ्र ही पॉडिचेरी दक्षिण भारत की सर्वप्रमुख मण्डी बन गयी। इस प्रकार चन्द्र नगर एवं पॉडिचेरी के उत्थान ने डूप्ले के प्रशासनिक योग्यता को सिद्ध कर दिया।

अनेक इतिहासकारों ने डूप्ले की गणना विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञों एवं चतुर कूटनीतिज्ञों के रूप में की है। कुशल राजनीतिज्ञ होने के कारण उसने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि यदि अंग्रेजो को भारत से निकाल दिया जाय तो भारत में फ्रासिसियों का साम्राज्य सुगमता पूर्वक स्थापित किया जा सकता है इसी कारण उसने अंग्रेजो के साथ कर्नाटक युद्धो का सूत्रपात किया। वह वास्तव मे ंमौलिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था तथा उसने कल्पनाशील उर्वर मस्तिष्क से साम्राज्य स्थापना की एक नयी नीति को जन्म दिया। कर्नाटक के प्रथम दो युद्धो में डूप्ले की कूटनीति का लोहा उसके विरोधी भी मानते है। प्रथम कर्नाटक युद्ध दौरान जब उसे लगा कि ब्रिटिश सरकार द्वारा भेजा गया नौसेना का कमाण्डर वारनेट पॉडिचेरी घेर लेगा तो उसने नवाब से प्रार्थना की कि वह अंग्रेजो को नवाब के क्षेत्र मे ंयुद्ध करने से रोके, नवाब ने यह प्रार्थना स्वीकार कर अंग्रेज गर्वनर को आदेश दिया कि अंग्रेजो को फ्रासीसी बस्ती पर आक्रमण की अनुमति नहीं देंगा। इस प्रकार का कार्य डूप्ले के कूटनीतिक क्षमता को दर्शाता है आगे चलकर ला वोर्डाने की सहायता से जब डूप्ले मद्रास जीतने की स्थिति में आया तो उसने नवाब को यह समझाया कि मद्रास जीतकर वह इसे नवाब को दे देगा। डूप्ले की यह कूटनीति पूर्णतः सफल रही। दूसरे कर्नाटक युद्ध में उसकी यह कूटनीति और भी सफल हुई। डूप्ले का मुख्य उद्देश्य राजनैतिक प्रभाव को बढ़ाना या उसने यह स्पष्ट कर दिया कि कैसे यूरोपीय लोग देशी राजाओं के आपसी द्वन्द का सफलतापूर्वक फायदा उठा सकते हैं। उसने कर्नाटक तथा हैदराबाद के उत्तराधिकार के लिये चान्दा साहब एवं मुजफ्फरजंग का समर्थन कर दोनो से फ्रासिसियों के लिये बहुत सा लाभ प्राप्त कर लिया तथा भारतीय नरेशों द्वारा उसे नवाब की उपाधि से सुशोभित किया गया।

डूप्ले एक योग्य एवं जन्मजात नेता था उसके अधीनस्थ कर्मचारी डूप्ले के निर्णयो एवं नीतियों पर आँख बन्द कर विश्वास करते थे तथा उसकी आज्ञाओं का पालन बिना किसी हिचकिचाहट के करते थे। 1754 में जब डायरेक्टरों ने डूप्ले को दोषी मानते हुए वापस बुलाने का आदेश दिया तो बहुत से अधीनस्थों ने त्यागपत्र देने का निश्चय कर लिया वुस्सी ने भी त्याग पत्र दे दिया तो डूप्ले ने उससे कार्य करते रहने का अनुरोध किया प्रति उत्तर में वुस्सी ने जो लिखा है उसे पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि डूप्ले को उसके अधीनस्थो का समर्थन प्राप्त था और वे डूप्ले की वापसी के आदेश को आत्महत्या जैसा कदम मानते थे। वुस्सी ने डूप्ले को पत्र लिखा कि 'आपका यूरोप जाना वह वज्राघात है जिससे मै भयभीत हो उठा हूं

तथा किंकर्तव्यविभूढ़ हो गया हूं आप जा रहे हो और मुझे कहते हो कि देश सेवा में लगे रहो और उस कार्य को जो नष्ट प्राय है उसे करते रहो। क्या आप वस्तुतः विश्वास करते है कि मेरा भी वही अपमान नही होगा जो आपका हुआ है। परन्तु जो भी हो मैने निश्चय कर लिया है कि यह मेरा कर्तव्य है कि आपका परामर्श स्वीकार कर उसका अनुसरण करूं।

मालेसन ने ''भारत में फ्रांसीसीयों का इतिहास' नामक पुस्तक में इस बात को उल्लिखित किया है कि डूप्ले की वापसी में अंग्रेजो का हाथ था आगे इन्होने लिखा कि अंग्रेजी राजदूत ने फ्रांसीसी विदेशामन्त्री को कहा था कि डूप्ले की नीतियां दोनो देशो के हित में नही है। माालेसन का कथन है कि 'हम उस अन्धेपन, मूर्खता तथा उन्माद पर जिससे डूप्ले को वापस बुलाया केवल विस्मय ही प्रकट कर सकते है। भालेसन का विश्वास है कि अगर डूप्ले 2 वर्ष और भारत में रह जाता तो बंगाल का धन अंग्रेजो के स्थान पर फ्रांस की गोद में जा गिरता।

डूप्ले एक अग्रगामी नीतियों वाला राजनीतिज्ञ था भारत में अपने कार्यकाल के प्रारम्भ में उसने व्यापार एवं सुरक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया किन्तु भारत की बिगड़ती राजनीतिक दशा को देखकर भारत मे फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगा। डूप्ले पहला व्यक्ति था जिसने देशीय राज्यों के मामले में हस्तक्षेप किया जिसने अनुशासित सिपाहियों की श्रेष्ठता स्थापित की। डूप्ले के राजनैतिक विचारों एवं उद्देश्यों पर कुछ इतिहासकारों का कहना है कि डूप्ले साम्राज्य निर्माताओं के अग्रगामी थे, तथा उन्होने भारत विजय की सुनिश्चित योजना बनाई हुई थी। मैकाले ने भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है कि भारतीयों के संघर्ष में हस्तक्षेप करके साम्राज्य विस्तार करने की योजना उसकी मौलिक कल्पना थी। परन्तु कुछ इतिहासकार इससे सहमत नही है। डूप्ले के जीवनी लेखक अल्फ्रेड मार्टिन्यू का विश्वास है कि 1749 अथवा 1750 तक डूप्ले का ऐसा कोई स्वप्न नही था मार्टिन्यू के अनुसार भारत में फ्रांसीसी उपनिवेश का विचार वित्तीय आवश्यकता के फलस्वरूप पैदा हुआ। डूप्ले के समक्ष सदैव धन की कठिनाई सामने आती थी और फ्रांस भी धन नही उपलब्ध करा पाता था। अन्ततः उसने यह सोचा कि इन कठिनाइयो से बचने का केवल एक ही उपाय है कि फ्रांस से धनप्राप्ति की आशा त्याग कर भारत में ही पर्याप्त धन प्राप्त करने की व्यवस्था की जाय। इसके लिये यह आवश्यक है कि स्थानीय प्रदेशों से एक निश्चित आय प्राप्त हो और यह तभी सम्भव है जब राजसत्ता उसके हॉथ मे हो यही विचार पहले डूप्ले के मन में उठा फिर उसने इसे विकसित किया तथा भारत में अपने लाभ के लिये औपनिवेशिक साम्राज्य बनाने का विचार बनाया।

प्रो0 डाडवेल एवं पी0ई0 राबट्र्स, मार्टिन्यू के विचारों का समर्थन करते है। पी0ई0 राबट्र्स ने डूप्ले के बारे में लिखा है कि 'अपनी अन्तिम असफलताओं के बावजूद भी डूप्ले भारतीय इतिहास का एक प्रतिभावान एवं तेजस्वी व्यक्ति है हम उसके प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी अपनाएं तब भी महानता विषयक उसके दावे का झुठलाया नही जा सकता। डूप्ले

ने कुछ वर्षो तक पूर्व में फ्रांस की प्रतिष्ठा को विस्मयजनक ऊंचाईयों तक उठाया। भारतीय राजाओं एवं राजनायिकों की दृष्टि में जितना सम्मान उसका था उतना किसी अन्य विदेशी को नही मिला, उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि एवं असाधारण व्यक्तित्व के बल पर अपने अंग्रेज प्रतिद्वन्दियों में भय एवं आतंक फैला दिया था।''

डूप्ले ने पहली बार जिन हथकण्डो का उपयोग भारत जीतने के लिये किया बाद में वही अंग्रेजो का मार्ग दर्शक बना। यह डूप्ले ही था जिसने पहली बार यूरोपीय सेनाओं को देशी राजदरबारों में भारतीय व्यय पर नियुक्त करवाया तथा जिसने पहली बार यूरोपीय हितो के लिये भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप किया। तथा वह पहला व्यक्ति था जिसने भारत में यूरोपीय साम्राज्य निर्माण की नींव डाली। मालेसन ने लिखा है कि ''डूप्ले की योजनाओं का प्रभाव उसके जाने के बाद भी रहा वह भूमि जिसे उसने अपनी सुझबूझ से जीता तथा उर्वर बनाया और वह क्षमता जो उसने दर्शाई उसके लौटाने के तुरन्त पश्चात् उसके प्रतिद्वन्दियों ने उपयोग की और उससे अत्यधिक लाभ उठाया। परन्तु डूप्ले के भारत में उसकी सूझबूझ राजनीतिक चतुराई के बावजूद सफलता नही मिली। उसकी असफलता के कारणों का मूल्यांकन करते हुए जीवनी लेखक मार्टिन्यू लिखता है कि डूप्ले के गलत निर्णय एवं उसकी हठधर्मी ही उसके पतन का कारण बनी उसने अपनी राजनीतिक योजनाओं की सही एवं पूरी जानकारी फ्रांसीसी सरकार को नहीं दी इसलिये फ्रांस ने भारतीय मदद में रूचि नही ली। डूप्ले की उद्देश्य पूर्ति के लिये भारत में फ्रांसीसी साधन पर्याप्त नही थे। डूप्ले की इसी भूल ने इसे असफल बना दिया। प्रो0 डाडवेल का विचार है कि डूप्ले ने अपनी पहुंच से अधिक प्राप्त करने का प्रयत्न किया जिसके कारण वह अपने साधन भी गवां बैठा तथा असफल भी हुआ। दकन एवं कर्नाटक इतना उर्वर एवं सक्षम क्षेत्र नहीं था जिसे प्राप्त करने के लिये विदेशी शक्ति से टक्कर ली जाती, उसकी योजनाओं की सफलता के लिये डूप्ले को अधिक धनी प्रदेश की आवश्यकता थी। अंग्रेजो का सफलता बंगाल जैसे समृद्ध प्रदेश के कारण ही मिली। क्लाइव के मैदान में उतरते ही डूप्ले के सौभाग्य का सितारा मन्द पड़ने लगा डूप्ले भारत में असफल हो गया जबकि क्लाइव ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित कर दिया। यदि डूप्ले के पास भी एक धनी कम्पनी होती जैसाकि इग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी थी और उसे भी अंग्रेजो जैसे प्रगतिशील जाति का समर्थन प्राप्त होता तो निश्चय ही वह अपने समकालीनों से अधिक सफल होता। भारतीय इतिहास में जिस प्रेरणा एवं राजनीतिज्ञ चातुर्य का प्रदर्शन डूप्ले ने किया उसकी बराबरी को सम्भवतः किसी यूरोपीय व्यक्ति ने नही की। डूप्ले के चरित्र में कुछ दोष भी थे वह अहंकारी षड्यंत्रकारी एवं कपटी स्वभाव का था यद्यपि इन गुणो से ही कार्य सिद्धि सम्भव हो सकता था तथापि डूप्ले का प्रतिद्वन्दी क्लाइव उससे कई अधिक कपटी एवं षड्यंत्रकारी था। क्लाइव को सफलता मिली जिससे उसके सब दोष छिप गये। डूप्ले के भाग से जो सफलता उसे नही मिली अन्यथा वह ही क्लाइव के स्थान पर भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य के संस्थापक के रूप में जाना जाता। कुछ

भी हो असफलता वह पाप है जिसे संसार में कभी क्षमा नही किया जाता यही दुर्घटना डूप्ले के साथ घटी उसकी असफलता उसका पाप बन गयी जबकि क्लाइव की सफलता पुण्य बन गयी।

2.6 बोध प्रश्न

1– कनार्टक का प्रथम युद्ध कब हुआ

2– अडयार या सेंटटोमे के युद्ध में सफलता किसे प्राप्त हुई।

3– प्रथम कर्नाटक युद्ध की समाप्ति किस सन्धि से हुई।

4– अकार्ट का घेरा किसने डाला।

5– पॉडिचेरी की सन्धि कब हुई।

6– वाडिवास का युद्ध कब हुआ।

7– कर्नाटक का तीसरा युद्ध कब समाप्त हुआ।

1– ऑग्ल–फ्रांसीसी संघर्ष के मुख्य कारण क्या थे।

2– कर्नाटक युद्ध के समय दक्षिण भारत की राजनीतिक दशा पर प्रकाश डाले।

3– कनार्टक युद्ध में अंग्रेजो की सफलता के क्या कारण थे।

4– डूप्ले के जीवन एवं योगदान पर प्रकाश डाले।

2.7 सन्दर्भित ग्रन्थ

1– पी0ए0 स्मिथ – आक्सफोर्ड हिस्टीऑफ इण्डिया

2– जे0 मेरियट– द इंग्लिश इन इण्डिया

3– मालेसन – हिस्ट्री ऑफ द फ्रेंच इन इण्डियों, डूप्ले

4– डाडवेल – कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, डूप्ले एण्ड क्लाइव

5– मार्टिन्यू – डूप्ले

6– ग्रोवर एवं यशपाल – आधुनिक भारत का इतिहास

ब्लॉक दो

इकाई तीनः बंगाल में अंग्रेजी सत्ता स्थापना : प्लासी से 1772 तक

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 बंगाल में अंग्रेजी कम्पनी का प्रवेश

3.3.1 बंगाल की राजनीतिक दशा

3.3.2 अंग्रेज और सिराजुद्दौला

3.3.3 ब्लैक होल की घटना

3.3.4 अलीनगर की सन्धि फरवरी 1957

3.4 प्लासी का युद्ध

3.4.1 प्लासी के युद्ध का महत्व

3.4.2 प्लासी के बाद

3.5 अंग्रेज एवं मीर कासिम

3.5.1 नवाब के रूप में कासिम

3.5.2 कम्पनी एवं कासिम

3.6 बक्सर का युद्ध सन् 1764

3.6.1 बक्सर के युद्ध का महत्व

3.6.1.1 बंगाल में कम्पनी का राजनैतिक शक्ति के रूप में उदय

3.6.1.2 इलाहाबाद की सन्धि

3.6.1.3 मुगल सम्राट से सन्धि

3.7 बंगाल में व्यवस्था स्थापन

3.7.1 द्वैध प्रणाली (**Dual System**)

3.7.2 द्वैध शासन प्रणाली का प्रभाव

3.7.3 क्लाइव द्वारा आन्तरिक सुधार

3.7.4 क्लाइव का मूल्यांकन

3.8 बोध प्रश्न

3.9 अन्य पठनीय ग्रन्थ

3.19 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी राजसत्ता का श्रीगणेश बंगाल प्रान्त से शुरू हुआ। बंगाल में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना की कहानी बड़ी रोचक एवं विस्मयकारी है। बंगाल से शुरू करके अंग्रेजों ने धीरे–धीरे मराठों, अफगानों को किनारे करते हुए सम्पूर्ण भारत पर कब्जा जमा लिया। यहां सवाल यह उठता है कि एक व्यापारिक कम्पनी अपने मुट्ठी भर सैनिकों के बल पर यह कार्य कैसे कर सकती है। हम इस यूनिट में इसी ''कैसे'' का जवाब ढूंढने की कोशिश करेंगे।

प्राचीन समय से ही बंगाल भारत का सबसे समृद्ध प्रान्त था। यह प्रान्त न केवल अपने उर्वर भूमि के कारण कृषि में अपितु व्यापार वाणिज्य एवं लघु उद्योगों के लिये भारत में ही नहीं संसार भर में प्रसिद्ध था। बंगाल की इस समृद्धि ने ही अंग्रेजों को आकर्षित किया।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- बंगाल में अंग्रेजी कम्पनी के प्रारम्भिक व्यापारिक प्रवेश के बारे में जान सकेंगे।
- कम्पनी के व्यापारिक शक्ति से राजनीतिक शक्ति बनने की कहानी जान सकेंगे।
- अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के क्रम में प्लासी एवं बक्सर युद्ध के कारणों एवं परिणामों को समझ सकेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से बंगाल में स्थापित द्वैध शासन प्रणाली के बारे में जान सकेंगे।
- बंगाल में द्वैध शासन के दुष्परिणामों को जान सकेंगे।
- क्लाइव के कार्यो एवं योगदान से परिचित हो सकेंगे।

3.3 बंगाल में अंग्रेजी कम्पनी का प्रवेश

सर्वप्रथम 1651 में अंग्रेजों ने बंगाल के सूबेदार शाहशुजा की अनुमति से हुगली में अपना गोदाम बनाया। उसी वर्ष आगरा में मुगल राज परिवार की महिला का अंग्रेज डाक्टर वौटन द्वारा सफल शल्य चिकित्सा से प्रसन्न होकर मुगल सम्राट ने 3000 रूपये वार्षिक में बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा में मुक्त व्यापार की अनुमति दे दी। शीघ्र ही अंग्रेजों ने पटना, कासिम बाजार एवं अन्य महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थलों पर कोठियां (गोदाम) बना लिया। 1698 में मुगल सम्राट औरंगजेब के पुत्र एवं बंगाल के तत्कालीन सूबेदार अजीमुशान ने 1200 रूपये के बदले अंग्रेजों को तीन गांवों सुतानती, कालीघाट एवं गोविन्दपुर की जमींदारी दे दी। इसी क्षेत्र को अंग्रेजों ने कलकत्ता के रूप में विकसित किया, जहां उन्होंने बंगाल के अपने पहले किले सेंट फोर्ट विलियम की स्थाना की। वर्ष 1717 में सम्राट फर्रूखसीयर ने पुराने सूबेदारों द्वारा दी गयी समस्त व्यापारिक रियायतों की पुष्टि कर दी।

3.3.1 बंगाल की राजनीतिक दशा

मुगलों के अधीन बंगाल का शासन सम्राट द्वारा नियुक्त सूबेदार द्वारा होता था। सल्तनत काल के समय से ही बंगाल अपनी समृद्धि एवं दिल्ली से दूर होने के कारण महत्वाकांक्षी सरदारों को विद्रोह के लिये प्रेरित करता था। मुगलों ने बंगाल में सूबेदारों के विद्रोह को नियंत्रित करने के लिये प्रायः राज परिवार के व्यक्ति को ही बंगाल की सूबेदारी

प्रदान की। सूबेदार की अनुपस्थिति में यह कार्य दीवान करता था। सन् 1700 में सम्राट औरंगजेब ने मुर्शीदकुली खान को बंगाल का दीवान बनाया। सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु ने मुगल शक्ति के खोखले आवरण को नष्ट कर दिया। सम्राट बनने के लिये मुगल राजकुमारों ने षड़यन्त्र, धोखा एवं निर्लज्ज लोलुपता दिखाई, जिससे बड़े–बड़े सूबेदारों ने अपने लाभ को दृष्टिगत रखते हुए इस लड़ाई में भाग लिया। मुगलों की इस स्थिति को देखते हुए मुर्शीदकुली खान ने बंगाल में अपने को स्वतन्त्र कर लिया तथा बंगाल का नवाब बन गया। मुर्शीदकुली खान की मृत्यु के बाद शुजाउद्दीन तथा उसकी मृत्यु के बाद सरफराज खां बंगाल का नवाब बना। सन् 1741 में बिहार का नायब सूबेदार अलीवर्दी खां बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के नायब सरफराज खां से विद्रोह करके उसे युद्ध में परास्त कर मार डाला तथा इस क्षेत्र का स्वयं नवाब बन गया। मुगल सम्राट मोहम्मदशाह ने बहुत से धन के बदले अलीवर्दी खां को बंगाल का नवाब स्वीकार कर लिया। अलीवर्दी खां एक योग्य एवं महत्वाकांक्षी सरदार था, इसने बंगाल की स्थिति को मजबूत बनाने का प्रयास किया, किन्तु इसका अधिकांश समय एवं शक्ति मराठों से अपने राज्य को बचाने में नष्ट हो गयी। मराठों के बार–बार आक्रमण ने बंगाल में भय एवं अराजकता फैलाई।

अलीवर्दी खां की मृत्यु (1756) से बंगाल की राजनीति में षड़यन्त्र, गुटबन्दी एवं आपसी द्वेष की शुरूआत हुई। अलीवर्दी खां को कोई पुत्र नहीं था, केवल तीन पुत्रियां थीं। इनमें बड़ी पुत्री घसीटी बेगम, दूसरी पुत्री का पुत्र शौकत जंग जो पूर्णिया का अधिकारी था तथा छोटी पुत्री का पुत्र सिराजुद्दौला का आपसी सम्बन्ध अच्छा नहीं था। अलीवर्दी ने अपने दौहित्र 17 वर्षीय सिराजुद्दौला को बंगाल का नवाब बनाया, किन्तु घसीटी बेगम एवं शौकत जंग सिराज को नवाब मानने के लिये तैयार नहीं थे। इसलिये सिराजुद्दौला ने सबसे पहले इस आन्तरिक झगड़े को सुलझाने का प्रयास किया। सिराज ने पुर्णिया के नवाब शौकत जंग को परास्त कर मार डाला तथा घसीटी बेगम की शक्ति को तोड़ दिया, लेकिन इससे सिराज की समस्याओं का अंत नहीं हुआ। मराठे और यूरोपीय लोग राज्य में अशान्ति के कारण बने रहे।

3.3.2 अंग्रेज और सिराजुद्दौला

सिराज के नवाब बनने के समय अन्य यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों ने परम्परानुसार दरबार में पेश हुए किन्तु अंग्रेज दरबार में नहीं गये। यूरोप में इस समय सप्तवर्षीय युद्ध की आशंका के कारण भारत में अंग्रेज एवं फ्रांसीसी अपने को सुदृढ़ बनाने लगे। फ्रांसीसी चन्द्र नगर की तथा अंग्रेज कलकत्ता की किलेबन्दी शुरू कर चुके थे। सिराज ने ऐसे कार्यो को अपने राज्य में अनुचित मानते हुए इसे रोकने को कहा। फ्रांसीसी तो मान गये किन्तु अंग्रेजों ने

फोर्ट विलियम के चारो ओर खाई तथा परकोटे पर तोपे चढ़ा लिया और सिराज के विरूद्ध कुछ भगोड़ों को शरण भी। इससे क्रुद्ध होकर सिराज ने अंग्रेजों के विरूद्ध अभियान किया। 15 जून 1756 को फोर्ट विलियम घेर लिया गया तथा 5 दिनों में ही अंग्रजों ने आत्मसमर्पण कर दिया। गर्वनर रोजर ड्रेक एवं अन्य महत्वपूर्ण अंग्रेज पीछे के द्वार से भाग निकले। नवाब कलकत्ता को जीत कर इसका नाम अलीनगर करते हुए इसे मानिकचन्द्र को सौंपकर वापस मुर्शिदाबाद लौट गया।

3.3.3 ब्लैक होल की घटना

यह एक बहुचर्चित घटना है, जिसे अंग्रेज कम्पनी ने नवाब के विरूद्ध आक्रामक युद्ध के लिये प्रचार का साधन बनाये रखा। इस घटना के अनुसार फोर्ट विलियम के पतन के बाद बन्दी बनाये गये अंग्रेज स्त्रियों एवं बच्चों की जिनकी संख्या 146 थी एक 14 फुट 10 इंच की कोठरी में बन्द कर दिया गया। भयंकर गर्मी एवं दम घुटने से अगले प्रातः केवल 23 बन्दी ही जीवित बचे शेष घुटन अथवा कुचले जाने के कारण मर गये।

अंग्रेजों ने इस घटना के लिये सिराज को उत्तरदायी ठहराया। यद्यपि इतिहासकार गुलाम हुसैन अपनी पुस्तक सियार–उल–मुत्खैरीन में इसका कोई उल्लेख नहीं करता है। जे0जेड0 हालवैल जो जीवित बच गया था तथा इस कहानी का रचयिता माना जाता है, किसी बन्दी अथवा करने वाले के नाम का उल्लेख नहीं करता है। इसलिये यह घटना सन्देहास्पद प्रतीत होती है। यदि यह घटना सत्य भी हो तो यह कार्य किसी अधीनस्थ अधिकारी का था, जिसका दोष सिराज पर मढ़ना न्यायोचित नहीं लगता।

3.3.4 अलीनगर की सन्धि फरवरी 1757

मद्रास के अधिकारियों ने कलकत्ता के पतन का समाचार सुनते ही फ्रांसीसियों के विरूद्ध गठित सेना को क्लाव के नेतृत्व में कलकत्ते को इस हिदायत के साथ भेजी कि शीघ्रातिशीघ्र कार्य करके इस सेना को लौटना था, क्योंकि कभी भी इसकी आवश्यकता फ्रांसीसियों के विरूद्ध पड़ सकती थी थी। क्लाइव ने बड़ी आसानी से बिना युद्ध के नवाब के प्रभारी अधिकारी मानिक चन्द्र को घूस देकर कलकत्ता वापस प्राप् तकर लिया। इधर सिराज मराठों के भय के कारण अंग्रेजों से युद्ध न करके फरवरी 1757 में अली नगर की सन्धि कर लिया। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को व्यापार के पुराने अधिकार वापस मिल गये। कलकत्ता के किलेबन्दी की अनुमति भी मिली तथा क्षतिपूर्ति का भी वचन दिया गया।

3.4 प्लासी का युद्ध

राबर्ट क्लाइव जो एक महत्वाकांक्षी एवं अत्यन्त चालाक व्यक्ति था वह अली नगर की सन्धि से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसे अपने गुप्तचरों से यह ज्ञात हो चुका था कि सिराजुद्दौला के कई अधिकारी लालची एवं भ्रष्ट हैं, जो पैसों के लिये कुछ भी कर सकते हैं। मानिकचन्द्र का उदाहरण उसके सामने था, अतः क्लाइव ने एक षड़यन्त्र रचा जिसमें नवाब के सेनापति मीर जाफर, प्रभावशाली साहूकार जगत सेठ, राय दुर्लभ एवं अमीनचन्द सम्मिलित हो गये। इसमें निश्चय हुआ कि मीर जाफर को बंगाल का नवाब बना दिया जाय, जिसके लिये वह कम्पनी एवं मददगार लोगों को धन एवं पद से कृतार्थ करेगा।

उकसावे के लिये अंग्रजों ने फ्रांसीसी बस्ती चन्द्रनगर को मार्च 1757 में जीत लिया। एक ऐसे समय में जब अफगानों एवं मराठों का भय नवाब को सता रहा था, क्लाइव सेना सहित नवाब के विरूद्ध मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ा। जिससे विवश होकर सिराज को भी युद्ध के लिये आगे बढ़ना पड़ा। 23 जून 1757 को दोनो सेनायें मुर्शिदाबाद से 22 मील दक्षिण में प्लासी के स्थान पर एक दूसरे से टकरायी। यद्यपि संख्या की दृष्टि से अंग्रेजों की तुलना में नवाब की सेना बहुत बड़ी थी, किन्तु सेनापति मीर जाफर के विश्वासघात के कारण नवाब की सेना की पराजय हुई। नवाब की सेना के अग्रगामी दल ने जिसका नेतृत्व मीर मदान एवं मोहन लाल कर रहे थे, अंग्रेजी सेना को पीछे हटने के लिये बाध्य किया था, किन्तु सिराज का 2000 घुड़सवारों के साथ वापस युद्ध से लौटना तथा मीर जाफर के असहयोग से बाजी अंग्रेजों के हाथ लगी। मीर जाफर 25 जून को मुर्शिदाबाद लौटा तथा अपने आपको नवाब घोषित कर दिया। सिराज को बन्दी बना लिया गया तथा उसकी हत्या कर दी गयी। मीर जाफर ने अंग्रेजों को उनकी सेवाओं के लिये 24 परगना की जमींदारी से पुरस्कृत किया। क्लाइव को 2 लाख 34 हजार पौंड की भेंट तथा 50 लाख रूपया सेना एवं नाविकों को दिया। बंगाल की समस्त फ्रांसीसी बस्ती अंग्रेजों को दे दी गयी तथा अंग्रेज पदाधिकारियों एवं व्यापारियों को निजी व्यापार पर चुंगी से छूट दे दी गयी।

3.4.1 प्लासी के युद्ध का महत्व

सामरिक दृष्टि से देखा जाय तो इस युद्ध का कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि यह कोई युद्ध नहीं अपितु छोटी सी झड़प थी, जिसमें अंग्रेजों की तरफ से 65 तथा नवाब की सेना के 500 व्यक्ति हताहत हुए, इसीलिये के0एम0 पन्निकर ने इस युद्ध के बारे में लिखा है – ''यह एक सौदा था, जिसमें बंगाल के धनी सेठों तथा मीर जाफर ने नवाब को अंग्रेजों के हाथ बेच डाला।''

प्लासी के युद्ध का महत्व केवल उसके बाद होने वाली घटनाओं के कारण है, इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए मालेसन ने लिखा है कि ''सम्भवतः इतिहास में इतना प्रभावित करने वाला युद्ध कभी नहीं लड़ा गया, इस युद्ध के कारण इंग्लैण्ड मुस्लिम संसार की सबसे बड़ी शक्ति बन गया, इसी के कारण उसे मारीशश तथा आशा अन्तरीय को विजय करने तथा उन्हें अपना उपनिवेश बनाने पर बाध्य होना पड़ा तथा मिश्र को अपने संरक्षण में लेना पड़ा।''

यद्यपि मालेसन की यह बात में अतिशयोक्ति होते हुए भी काफी हद तक उचित ही लगती है क्योंकि बंगाल अंग्रेजों के अधीन हो गया और फिर स्वतन्त्र नहीं हो सका। इस युद्ध के बाद बंगाल की लूट ने अंग्रेजों को अपार साधनों का स्वामी बना दिया। मैकाले के अनुसार अंग्रेजों को बंगाल से मिले धन की पहली किस्त 8 लाख पौंड की थी, जो चांदी के सिक्कों के रूप में थी तथा जिसे 100 से अधिक नावों में भरकर कलकत्ता से लाया गया। बंगाल के इसी धन ने अंग्रेजों को दक्षिण में फ्रांसीसियों के खिलाफ विजय दिलवाई तथा कम्पनी का भी कायाकल्प कर दिया। बंगाल के इसी धन ने आगे चलकर अंग्रेजों की भारत पर सत्ता स्थापित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3.4.2 प्लासी के बाद

मीर जाफर को क्लाइव का गीदड़ कहा जाता है, वह अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली था, जो अपने पद तथा रक्षा के लिये अंग्रेजों पर निर्भर था। प्लासी युद्ध के बाद कम्पनी व्यापारिक कम्पनी की जगह सैनिक कम्पनी बन गयी, जिसे अपने युद्धों के लिये निरन्तर धन की आवश्यकता था। इस धन की पूर्ति मीर जाफर नहीं कर सकता था। शीघ्र ही वह अंग्रेजों के दासत्व से दुखी हो गया। मीर जाफर के ऊपर कम्पनी का बकाया सन् 1760 तक 25 लाख हो गया। इस बकाया धन को चुकाने का सामर्थ्य मीर जाफर में नहीं था, अतः वह डच लोगों से मिलकर अंग्रेजों को भगाने की सोचने लगा। लेकिन क्लाइव ने नवम्बर 1759 में वेदरा के युद्ध में डचों को परास्त कर इस षड़यन्त्र को असफल बना दिया। जब मीर जाफर ने इन घटनाओं से अपने को अनभिज्ञ बताया तो उसे गद्दी छोड़ने के लिये बाध्य किया गया।

3.5 अंग्रेज एवं मीर कासिम

मीर जाफर का दामाद मीर कासिम एक योग्य एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति था, उसने इस स्थिति का लाभ उठाकर अपने आपको अंग्रेजों का मित्र तथा नवाब के प्रत्याशी के रूप में प्रस्तुत किया। फलतः मीर कासिम एवं कलकत्ता काउंसिल के बीच सितम्बर 1760 में एक सन्धि हो गयी, जिसके अनुसार :–

1– मीर कासिम ने कम्पनी को वर्दवान, मिदनापुर तथा चटगांव के जिले देना स्वीकार किया।

2– सिल्हट के चूने के व्यापार में कम्पनी का आधा हिस्सा होगा।

3– मीर कासिम कम्पनी को दक्षिण अभियानों के लिये 5 लाख रूपये देगा।

4– मीर कासिम कम्पनी के मित्र को मित्र एवं शत्रु को शत्रु मानेगा।

5– कम्पनी आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी तथा नवाब को सैनिक सहायता देगी।

सन्धि को कार्यान्वित करने के लिये वेनसिटार्ट एवं केलाड मुर्शिदाबाद पहुंचे। महल घेर लिया गया विश्वासघाती मीर जाफर ने गद्दी छोड़ दी तथा 15 हजार पेंशन पर कलकत्ते में रहना स्वीकार किया। मीर जाफर को अपने कर्मो का फल मिल चुका था। अब अगली बारी मीर कासिम की थी।

3.5.1 नवाब के रूप में कासिम

नवाब बनते ही मीर कासिम ने वेनसिटार्ट, केलार्ड एवं अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों को 17 लाख रूपये घूस के रूप में दिया। मीर कासिम एक योग्य व्यक्ति था, उसने राजधानी अंग्रेजों से दूर मुंगेर में स्थानान्तरित किया। सेना का गठन यूरोपीय ढंग से तथा तोपों एवं बन्दूकों को बनाने की व्यवस्था की। नवाब मीर कासिम की इच्छा थी कि वह अपना शासन स्वतन्त्र होकर करे। वह अपने राज्य को नेपाल की ओर विस्तारित करने की आशा रखता था, इसलिये उसने पहले बंगाल में शान्ति एवं स्थिरता पैदा करने की कोशिश की उसने बिहार के उप सूबेदार राम नरायन को जो बिहार में लगभग स्वतन्त्र होकर कार्य कर रहा था, उसे सेवा से हटा दिया तथा मार डाला। उसने उन अधिकारियों पर जिन्होंने गबन किया था, उन पर जुर्माने लगाये तथा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिये कुछ नये एवं अतिरिक्त कर लगाये। समकालीन इतिहासकार गुलाम हुसैन मीर कासिम के प्रशासन की बड़ी प्रशंसा करता है, वह लिखता है कि मीर कासिम ने प्रशासन की गुत्थियों विशेषकर वित्तीय मामलों को बड़ी कुशलता से सुलझाया। सेना तथा सेवकों को नियमित रूप से वेतन मिलता था, अच्छे लोगों का आदर होता था, उसके व्यवहार में उदाहरता एवं कृपणता दोनो का समावेश था।

3.5.2 कम्पनी एवं कासिम

शुरू में नवाब कासिम एवं कम्पनी के सम्बन्ध मधुर रहे, क्योंकि कासिम ने कम्पनी की आर्थिक मांगों को सफलता से पूरा कर रहा था, किन्तु यह सम्बन्ध अधिक दिनों

तक अच्छे नहीं रह सके, कारण था कम्पनी एवं कासिम के उद्देश्य एवं हित एक दूसरे के विपरीत थे। जहां कम्पनी एक डरपोक एवं कठपुतली नवाब चाहती थी, वहीं कासिम स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष नवाब बनने की आकांक्षा रखता था।

गर्वनर हैरी वेरेलस्ट ने अपनी पुस्तक में मीर कासिम एवं कम्पनी के झगड़ों को दो भागों में बांटते एवं लिखा है कि झगड़े का तात्कालिक कारण आन्तरिक व्यापार था, किन्तु वास्तविक कारण नवाब की राजनैतिक महत्वकांक्षा थी, वह लिखता है – ''यह असम्भव था कि मीर कासिम अपनी सरकार की नींव हमारे समर्थन पर रखते हुए स्वाधीनता का व्यवहार करे।'' प्रो0 डाडवेल भी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं कि ''स्थिति की प्रमुख बात यह थी कि अंग्रेज तथा नवाब के हित एक दूसरे के विरोधी थे, स्थिति में स्थिरता उस समय तक नहीं आ सकती थी, जब तक नवाब अपने आपको स्वतन्त्र मानता रहता तथा अंग्रेज वे अधिकार मांगते रहते जो इस परिस्थिति के अनुकूल नहीं थे।''

मीर कासिम एवं कम्पनी का झगड़ा आन्तरिक व्यापार को लेकर शुरू हुआ। कम्पनी को 3000 रूपये के बदले मुगल सम्राट ने व्यापारिक कर से छूट दे दी थी। कम्पनी के आन्तरिक व्यापार पर कोई विवाद नहीं था, बल्कि विवाद कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार को लेकर था। कासिम आन्तरिक व्यापार में उस दस्तक की बात उठाता था, जिसमें कम्पनी के अधीनस्थ कर्मचारी निजी व्यापार करते थे। यह दस्तक केवल अंग्रेज कर्मचारी ही नहीं भारतीय लोगों को भी बेचे जाते थे, इससे नवाब को आन्तरिक व्यापार पर कर का नुकसान होता था। कम्पनी के कर्मचारी केवल कर रहित व्यापार से ही संतुष्ट नहीं थे, वे बाजार से बल प्रयोग द्वारा सामान सस्ता खरीदते थे तथा नवाब के कानूनों का निरादर एवं अपमान करते थे। मीर कासिम ने कम्पनी को लिखा ''आपके भद्र पुरूष इस प्रकार का व्यवहार करते है, वे समस्त देश में गड़बड़ी फैलाते हैं,लोगों को लूटते हैं तथा मेरे अधिकारियों का निरादर करते हैं तथा उन्हें शारीरिक यातनाएं देते हैं। मूल्य का चौथाई दाम देते हैं। इनके ऐसे कार्यो से मुझे 25 लाख का वार्षिक नुकसान हो हरा है।''

आन्तरिक व्यापार के इस गतिरोध को दूर करने के लिये वेससिटार्ट के नेतृत्व में एक दल नवाब से मिला तथा एक समझौता हो गया जिसमें अंग्रेज कर्मचारियों को व्यापार पर 9 प्रतिशत कर देना था तथा दस्तक देने का अधिकार नवाब का माना गया, किन्तु इस समझौते को कलकत्ते की काउंसिल ने अस्वीकार कर दिया, जिससे क्रुद्ध होकर नवाब ने आन्तरिक व्यापार पर लगे कर को ही समाप्त कर दिया। नवाब के इस निर्णय को अनुचित नहीं ठहराया जा सकता, किन्तु अब अंग्रेजों को होने वाला लाभ कम हो गया। कम्पनी चाहती थी कि नवाब अपनी प्रजा पर कर लगाये। यहां झगड़ा न्याय एवं अन्याय का न होकर शक्ति

का था। मीर कासिम की स्थिति विकट हो गयी, लोग उस पर हंसते थे, जो कार्य उसने अपने श्वसुर के विरूद्ध किया था, वही उसके गले आ पड़ा।

3.6 बक्सर का युद्ध सन् 1764

कम्पनी तथा नवाब के इस तनावपूर्ण सम्बन्ध में शान्ति की कोई गुंजाइश नहीं थी। नवाब अपनी कमजोर स्थिति से अनभिज्ञ नहीं था, इसलिये मीर कासिम ने अवध के नवाब एवं मुगल सम्राट से मिलकर अंग्रेजों का खदेड़ने की योजना बनाई। इन तीनों की सम्मिलित सेना का मुकाबला बक्सर नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना से हुआ। 22 अक्टूबर 1764 को हुए इस मुकाबले में अंग्रेजी सेनापति मेजर मनरो की जीत हुई। बक्सर में घमासान युद्ध हुआ था। इसमें अंग्रेजों के 847 तथा दूसरी ओर के 2000 सिपाही घायल अथवा हताहत हुए। दोनो ओर से डटकर युद्ध लड़ा गया, किन्तु अधिक कुशल एवं प्रशिक्षित सेना की विजय हुई।

3.6.1 बक्सर के युद्ध का महत्व

बक्सर का युद्ध भारत के इतिहास में होने वाले महत्वपूर्ण युद्धों में से एक है। इस युद्ध के परिणाम भारत के लिए स्थायी एवं दीर्घजीवी हुए। अब प्लासी युद्ध के निर्णय पर पक्की मोहर लग गयी।

भारत में अब अंग्रेजों को चुनौती देने वाला कोई नहीं रह गया। बंगाल में फिर वही कठपुतली मीर जाफर को नवाब बनाया गया। अवध का नवाब अंग्रेजों का आभारी एवं मुगल सम्राट उनका पेंशनर बन गया। इलाहाबाद तक का प्रदेश अंग्रेजों की अधीनता में आ गया तथा दिल्ली को लेने का रास्ता खुल गया। भारत की दासता अब निश्चित थी।

बक्सर युद्ध के बाद फौरी तौर पर मीर जाफर को पुनः नवाब बना दिया गया, किन्तु अब जबकि पूरा उत्तर भारत कम्पनी के कदमों में था, इस जटिल राजनीतिक स्थिति को नियंत्रित करना, बंगाल में शान्ति व्यवस्था बनाना तथा व्यापार को नियमित कर अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने हेतु एक कर्मठ एवं योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी। बक्सर के युद्ध का समाचार जब ब्रिटेन पहुंचा तो सबका मत यह था कि जिस व्यक्ति ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव रखी है उसे ही उस साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिये भेजा जाय।

अतएव लार्ड क्लाइव को भारत में अंग्रेजी प्रदेशों का सेनापति एवं गर्वनर बनाकर भेजा गया। क्लाइव ने भारत आकर देखा कि विजय के उपरान्त राजनैतिक स्थिति अनिश्चय की अवस्था में है तथा प्रशासन अस्त व्यस्त है। कम्पनी के कार्यकर्ता एवं पदाधिकारी धन लोलुप होकर पूर्णतया भ्रष्ट हो गये हैं, जिससे कम्पनी का व्यापार एवं जनता की स्थिति

चिन्ताजनक बन चुकी है। क्लाइव को अब शीघ्रता से उस स्थिति को सम्भालना था, जिसके लिये उसने निम्न कदम उठाये।

3.6.1.1 बंगाल में कम्पनी का राजनैतिक शक्ति के रूप में उदय

गर्वनर के रूप में क्लाइव के सामने सबसे महत्वपूर्ण चुनौती राजनैतिक व्यवस्था की थी उसे निर्णय लेना था कि अवध एवं मुगल सम्राट के साथ क्या करना है तथा बंगाल में राजनैतिक सत्ता के स्वरूप में किस प्रकार का परिवर्तन करना है।

3.6.1.2 इलाहाबाद की सन्धि

क्लाइव राजनैतिक व्यवस्था के तहत सबसे पहले अवध गया, अवध के नवाब शुजाउद्दौला से इलाहाबाद में भेंट की तथा इलाहाबाद की सन्धि (16 अगस्त 1765) की जिसके अनुसार –

(1) शुजाउद्दौला इलाहाबाद एवं कारा का जिला सम्राट शाह आलम को देगा।

(2) युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिये कम्पनी को 50 लाख रूपया देगा।

(3) बनारस के जागीरदार को उसकी जागीर में प्रस्थापित करेगा। इसके बदले कम्पनी उसके समस्त क्षेत्र को लौटा देगी।

इस व्यवस्था के अतिरिक्त नवाब शुजाउद्दौला ने कम्पनी के साथ आक्रामक एवं रक्षात्मक सन्धि की।

3.6.1.3 मुगल सम्राट से सन्धि

क्लाइव ने बड़ी चालाकी से मुगल सम्राट शाह आलम से इलाहाबाद में ही दूसरी सन्धि की, जिसके अनुसार भगोड़े शाह आलम को अंग्रेजी संरक्षण में लिया गया तथा अवध के नवाब से मिले दोनो जिले इलाहाबाद एवं कारा, शाह आलम को दे दिये गये, बदले में सम्राट ने कम्पनी को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी स्थायी रूप से दिया।

क्लाइव द्वारा इलाहाबाद की सन्धि तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप थी, उसने बड़ी चतुराई से कम्पनी को मराठों एवं अफगानों के झगड़े से बचाते हुए नवाब को मित्रता की सन्धि में बांध दिया तथा सम्राट को अंग्रेजों की कठपुतली बना दिया तथा कम्पनी को कानूनी रूप से बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा का स्वामी बना दिया।

3.7 बंगाल में व्यवस्था स्थापन

क्लाइव ने इलाहाबाद की सन्धि के द्वारा जटिल राजनीतिक समस्या का समाधान तो कर दिया, लेकिन उसे अब बंगाल में व्यवस्था स्थापित करने की चुनौती का भी सामना करना था। बंगाल में व्यवस्था स्थापित करने का जो समाधान क्लाइव ने निकाला उसे ही बंगाल में शासन की 'द्वैध प्रणाली' कहा जाता है।

3.7.1 द्वैध प्रणाली (Dual System)

मुगलों की प्रशासनिक प्रणाली में सूबे का शासन दो अधिकारियों के द्वारा होता था। पहला अधिकारी सूबेदार कहलाता था, जिसका कार्य शान्ति व्यवस्था, फौजदारी एवं सैनिक मामलों को देखना था। सूबे के दूसरे अधिकारी को दीवान कहा जाता था, जिसका प्रमुख कार्य कर व्यवस्था एवं दीवानी कानून देखना था, ये दोनो अधिकारी एक दूसरे से स्वतन्त्र किन्तु केन्द्र के अधीन होते थे, जिससे वे एक दूसरे को नियंत्रित करते थे। मुगलों की इस व्यवस्था को ही क्लाइव ने थोड़े परिवर्तन के साथ लागू किया। क्लाइव ने 26 लाख के बदले दीवानी का कार्य कम्पनी के ऊपर ले लिया तथा मीर जाफर की मृत्यु के बाद नजमुद्दौला को नवाब बनाने की अनुमति के बदले निजामत का कार्य भी कम्पनी के हाथों में केन्द्रित कर लिया। इस प्रकार निजामत एवं दीवानी दोनो का अधिकार कम्पनी के पास आ गया। कम्पनी ने अपने दीवानी कार्य के लिये बंगाल में मुहम्मद रजा खां एवं बिहार के लिये राजा शितान राय को उप दीवान नियुक्त कर दिया। अर्थात इन दो भारतीय अधिकारियों द्वारा ही कम्पनी ने अपना दीवानी कार्य शुरू किया। निजामत के कार्य के लिये कम्पनी ने नवाब को 53 लाख रूपये देना स्वीकार किया। इस प्रकार कम्पनी ने बंगाल के शासन को इसी द्वैध शासन प्रणाली द्वारा चलाने का प्रयास किया।

3.7.2 द्वैध शासन प्रणाली का प्रभाव

तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए क्लाइव द्वारा अपनायी गयी यह द्वैध शासन प्रणाली अंग्रेजों के लिये हितकर थी क्योंकि द्वैध शासन प्रणाली से कम्पनी का वास्तविक चेहरा छिपा ही रहा, जिससे भारतीय राज्यों के अतिरिक्त यूरोपीय राज्य भी संगठित हो अंग्रेजों का विरोध न कर सके। साथ ही भारतीय माल एवं रीति रिवाजों ने अनभिज्ञ अंग्रेजों के पास कर्मचारी एवं अधिकारी भी नहीं थे, जो इस कार्य को कर सकते थे। किन्तु बंगाल में रहने वाली जनता की दृष्टि से देखे तो यह शासन प्रणाली पूर्णतया खोखली, भ्रष्ट एवं विनाशक थी।

द्वैध शासन प्रणाली के स्वरूप को प्रकट करते हुए सर जार्ज कार्नवाल ने ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स में कहा था ''मैं निश्चय पूर्वक यह कह सकता हूँ कि 1765–84 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार से अधिक भ्रष्ट झूठी तथा बुरी सरकार संसार के किसी भी सभ्य देश में नहीं थी।'' इस शासन प्रणाली का दुष्परिणाम जीवन के सभी क्षेत्रों में पड़ा। प्रशासन पूरी तरह से ठप्प एवं चौपट हो गया था। कम्पनी प्रशासन का उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करती थी और नवाब के पास प्रशासन का सामर्थ्य नहीं था। डाकू एवं चोर दिन में लूट पाट करते थे, न्याय केवल विडम्बना मात्र रह गया। भ्रष्ट अंग्रेज अधिकारी एवं उनके भारतीय मातहत गरीब जनता का रक्त चूस रहे थे।

– इस शासन प्रणाली से अन्न एवं खाद्यान्न से भरपूर प्रदेश को उजाड़ बना दिया। कर संग्रह का कार्य अधिक बोली लगाने वाले को ठेके पर दिया जाने लगा, जिनका उद्देश्य अधिकाधिक कर संग्रह था। इस अधिक कर एवं इसके एकत्रित करने की कड़ाई ने कृषकों को कृषि छोड़ने के लिये बाध्य किया। किसान अपनी भूमि एवं गांव छोड़कर जंगलो में भागने एवं छिपने को मजबूर हो गये।

– कृषि को अवनति ने व्यापार एवं वाणिज्य को भी प्रभावित किया। व्यापार एवं वाणिज्य पर अंग्रेजों का एकाधिकार हो गया, जिससे वे माल को कम से कम कीमत पर खरीदते एवं मनमाने दाम पर बेचते थे। भारतीय व्यापारी वर्ग धीरे धीरे नष्ट हो गया। अब वे व्यापारी से भिखारी बन गये।

– जो बंगाल अपने हस्त कुटीर उद्योगों के लिये विश्व प्रसिद्ध था, जहां के कारीगरों की कारीगरी और कौशल का सानी विश्व में कहीं नहीं मिलता था, वह बंगाल एवं उसके करीगर अन्न के लिये मोहताज हो गये। कपास, सिल्क एवं मलमल के कारीगरों को अंग्रेजों ने अपने काम करने के लिये बाध्य किया, जिन्होंने आनाकानी की उनके हाथ के अंगूठे काट लिये गये। कारीगरों एवं जुलाहों को पेशगी के बदले दास बना लिया गया। इस प्रकार इस शासन प्रणाली ने बंगाल के लोगों का बहुत कष्ट दिया, कृषि, व्यापार, उद्योग सब नष्ट हो गये। बंगाल के लोगों का चारित्रिक एव नैतिक पतन हुआ।

3.7.3 क्लाइव द्वारा आन्तरिक सुधार

क्लाइव जब गवर्नर बन कर भारत आया तो उसके सम्मुख केवल राजनीतिक व्यवस्था बनाने का कार्य ही नहीं था, अपितु उसके सामने कम्पनी के अधीनस्थ अंग्रेज कर्मचारियों एवं कम्पनी प्रशासन को सुधारने की भी चुनौती थी। क्लाइव इस सुधार के लिये

दृढ़ था, उसने असैनिक क्षेत्र में उत्पन्न भ्रष्टाचार व घूसखोरी को समाप्त करने के लिये उपहार लेने एवं निजी व्यापार को प्रतिबन्धित कर दिया, किन्तु क्लाइव के इस कार्य का अंग्रेजों ने विरोध शुरू कर दिया।

क्लाइव ने सैनिक क्षेत्र में सैनिकों को मिलने वाले दोहरे भत्ते को बन्द कर दिया क्योंकि इससे बंगाल के सैनिकों का वेतन मद्रास के सैनिकों से अधिक होता था। श्वेत अधिकारियों ने क्लाइव के इस निर्णय का विरोध करने के लिये सामूहिक त्याग पत्र की धमकी दी। लेकिन क्लाइव ने बिना डरे त्याग पत्र मंजूर करते हुए नये लोगों को कमीशन देना प्रारम्भ कर दिया। मद्रास से कुछ अफसर बुलाये गये तथा क्लाइव ने निर्भीकता से सैनिक क्षेत्र में इन सुधारों को कार्यान्वित किया।

क्लाइव 1767 में पुनः इंग्लैण्ड लौट गया। 1760 में जब वह इंग्लैण्ड पहली बार लौटा था तो इंग्लैण्ड में उसका विशेष सम्मान हुआ था तथा वह ''लार्ड'' की उपाधि से विभूषित किया गया। किन्तु 1769 में जब वह इंग्लैण्ड पहुंचा तो उसका विरोध हुआ। उस पर रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार के अनेक आरोप लगा कर बदनाम किया गया। हालांकि इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट ने उसे इन आरोपों से मुक्त करते हुए उसके देशभक्ति की सराहना की। किन्तु इन आरोपों से क्लाइव इतना दुखी हुआ अथवा उसकी आत्मा ने भारत में उसके किये गये अनैतिक कार्यो से मुक्ति के लिये 1774 में आत्महत्या करने पर विवश किया।

1767 से 1769 तक वेरेलस्ट एवं 1769 से 1772 तक कार्टियर बंगाल के गर्वनर रहे। किन्तु इन दोनो के काल में कम्पनी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। द्वैध शासन के अधीन बंगाल की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। किसान, मजदूर, व्यापारी सबका पतन हो रहा था। बंगाल में भयंकर दुर्भिक्ष एवं महामारी ने बंगाल की जनता की पीड़ा को असहनीय बनादिया। कम्पनी के सेवक अपने स्वार्थ एवं भ्रष्टाचार में इतने लिप्त थे कि ऐसी विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने बलपूर्वक अधिक लगान वसूला।

बंगाल को इस दुगर्ति से उबारने तथा कम्पनी की साख को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये वारेन हेस्टिंग्स को 1772 में बंगाल का गर्वनर नियुक्त किया गया। अपने 12 वर्ष के शासन काल में वारेन हेस्टिंग्स ने इस उत्तरदायित्व को योग्यता पूर्वक निभाया जिसके कारण कुछ इतिहासकार ब्रिटिश साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक वारेन हेस्टिंग्स को ही मानते हैं।

3.7.4 क्लाइव का मूल्यांकन

सामान्य परिवार में जन्मा व्यक्ति जिसने जीवन की शुरूआत साधारण पद से की हो और जो सर्वोच्च पद को सुशोभित किया हो वह व्यक्ति साधारण नहीं हो सकता। उपरोक्त बातें क्लाइव को असाधारण बना देती हैं। क्लाइव के मूल्यांकन में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। उसका कारण दृष्टिकोण का अन्तर है। अंग्रेजों के दृष्टिकोण से देखें तो क्लाइव ही वह व्यक्ति है जिसने अर्काट का घेरा डाला और फ्रांसीसियों से अंग्रेजों को बचाया। बंगाल में उसने मुट्ठी भर अंग्रेजी सेना की मदद से प्लासी का युद्ध जीतकर अंग्रेजी सत्ता की नींव डाली। एडमण्ड वर्क ने लिखा है ''लार्ड क्लाइव ने स्वयं तो अज्ञात गहराई वाली नदी को अत्यन्त कठिनता से पैदल ही पार किया, परन्तु वह अपने उत्तराधिकारियों के लिये एक ऐसा पुल तैयार कर गया, जिस पर लंगड़े भी चल सकें और अन्धे भी अपना रास्ता टटोल सकें..... अपने विशेष गुणों के कारण क्लाइव उस अभिनय के लिये असाधारण रूप से उपयुक्त था, जो उसे भारतीय रंगमंच पर करना था। तनिक तीखी तात्विक शक्ति और अनथक उत्साह यही दो विशेषताओं ने उसे एक साम्राज्य का सच्चा संस्थापक बना दिया।''

अल्फ्रेड लायल के अनुसार ''अंग्रेज लोग भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव के लिये अन्य व्यक्तियों से अधिक इस ऊंची उत्तेजना वाले, साहसी तथा अजेय व्यक्ति के ऋणी हैं।''

लार्ड मैकाले ने क्लाइव के कार्य एवं उससे उपजे परिणाम को संतुलित करते हुए लिखा है ''उन मनुष्यों की भांति जो जन्मजात तीव्र उत्तेजना एवं प्रलोभनों से प्रेरित होते हैं, क्लाइव ने भी बहुत सी भूलें की परन्तु प्रत्येक व्यक्ति जो उसके समस्त जीवन पर न्याय संगत तथा पक्षपात रहित दृष्टि डालेगा उसे स्वीकार करना होगा कि हमारे द्वीप, जिसने बहुत से वीरों को जन्म दिया है, ने बिरले ही इतने महान व्यक्ति को जो शास्त्रों से तथा सूझबूझ से अलंकृत हो, जन्म दिया है। क्लाइव के भारत में दूसरे आगमन से हमारा राजनैतिक उत्कर्ष आरम्भ होता है। इतना विशाल उर्वर प्रदेश, इतना अधिक कर, इतनी अधिक प्रजा अंग्रेजों के अधीन कभी नहीं हुई।''

इस प्रकार अंग्रेजों को हुए लाभ की दृष्टि से क्लाइव महान है, किन्तु यदि हम भारतीयों की दृष्टि से बात करें तो क्लाइव अजेय तो था, किन्तु उसने कोई युद्ध कौशल एवं वीरता से नहीं बल्कि छल, प्रलोभन एवं धोखे से जीता। उसमें अनेक मानवीय दुर्बलताएं थीं। वह धन लोलुप, कुचक्री, विश्वासघाती एवं कपटी था। क्लाइव ने भारतीय जनता के हितों की अनदेखी की, उसके द्वारा स्थापित द्वैध शासन व्यवस्था ने भारतीयों को अकथनीय कष्ट एवं क्षति पहुंचाई। के0एम0 पन्निकर ने लिखा है कि – ''सन् 1765 से 1772 तक कम्पनी ने बंगाल में

डाकुओं का राज्य स्थापित कर दिया तथा बंगाल को अविवेकी ढंग से लूटा। इस अवधि में अंग्रेजी साम्राज्य का सबसे भौंड़ा रूप देखने को मिला तथा बंगाल की जनता ने बहुत दुःख उठाया।''

प्रायः यह कहा जाता है कि भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना का उद्देश्य शान्ति एवं व्यवस्था बनाना था। यदि हम इस कथन पर ध्यान दें तो इस कार्य में क्लाइव का कोई योगदान नहीं था। वस्तुतः उसके कार्य से व्यवस्था की जगह अव्यवस्था ही फैली।

अन्ततः कहा जा सकता है कि यद्यपि उसने अपने देश का महान हित किया, किन्तु इस कार्य में उसने बेईमानी, छल–कपट एवं विश्वासघात का सहारा लिया। लाभ के लिये अनैतिक साधनों का प्रयोग करने वाला व्यक्ति कभी भी महान नहीं हो सकता।

3.8 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न –

1– अली नगर की सन्धि कब हुई?
2– काल कोठरी दुर्घटना की कहानी का जनक कौन है?
3– प्लासी का युद्ध कब लड़ा गया?
4– मीर जाफर कौन था?
5– मीर कासिम की राजधानी कहॉ था?
6– बक्सर का युद्ध किसके बीच लड़ा गया?

3.9 अन्य पठनीय ग्रन्थ

- आधुनिक भारत का इतिहास – यशपाल एवं ग्रोवर
- लाइफ आफ लार्ड क्लाइव – जॉन मालेसन
- हिस्टोरिकल ऐसे – लार्ड मैकाले
- क्लाइव इज एन एडमिनिस्ट्रेटर – नन्दलाल चटर्जी
- मास्टर आफ बंगाल – पर्सीवेल स्पीयर
  क्लाइव एण्ड हिज इण्डिया

3.19 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1– प्लासी युद्ध के कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डालिये?
2– बक्सर युद्ध से अंग्रेजों को क्या लाभ हुआ?
3– द्वैध शासन प्रणाली एवं गुण दोषों की विवेचना करें।
4– लार्ड क्लाइव का ब्रिटिश राज के संस्थापक के रूप में मूल्यांकन करें।

ब्लॉक तीन

इकाई एकः आंग्ल–मराठा संघर्ष

1-1– प्रस्तावना

1-2– उद्देश्य

1-3– मराठा साम्राज्यः एक संक्षिप्त विवरण

1-4– पेशवा और मराठा सम्राज्य

1-5– आंग्ल–मराठा संघर्ष की पृष्ठभूमि

1-5-1– सूरत की संधि

1-6– प्रथम आंग्ल–मराठा संघर्ष

1-6-1– पुरंदर की संधि

1-6-2– सालबाई की संधि

1-6-3– परिणाम

1-7– द्वितीय आग्ल मराठा युद्ध

1-8– तृतीय आंग्ल मराठा युद्ध

1-9– मराठाओं का पतन

1-9-1– मराठों के आंतरिक मतभेद

1-9-2– मराठा शासन व्यवस्था में दोष

1-9-3– राजनैतिक दूरदर्शिता का अभाव

1-9-4– अयोग्य नेतृत्व

1-9-5– माराठा सैन्य व्यवस्था

1-9-6– अंग्रेजों की श्रेष्ठ कुटनीति एवं गुप्तचर व्यवस्था

1-10– सारांश

1-11 पारिभाषिक शब्दावली

1-12 स्वमूल्यांकित प्रश्न के उत्तर

1-13 संदर्भ ग्रंथ की सूची

1-14 निबंधात्मक प्रश्न

1-1 प्रस्तावना

17वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया प्रारंभ होने के साथ ही देश में स्वतंत्र राज्यों की स्थापना का जो सिलसिला आरंभ हुआ, उनमें राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य मराठों का था. यह मूल रूप से वर्तमान महाराष्ट्र में शिवाजी के द्वारा स्थापित हुआ. 18वीं शताब्दी के दूसरे दशक में मराठा साम्राज्य का शासन मुख्य रूप से पेशवा के हाथों में आ गया. पेशवा का पद क्रमशः पैतृक और शक्तिशाली होता गया. यदि यह कहा जाए कि पेशवा ही मुख्य रूप से शासक थे तो गलत नहीं होगा. दरअसल पेशवाओं ने मुगल साम्राज्य के खंडहर पर मराठा साम्राज्य का विस्तार किया परन्तु इन्हीं परिस्थितियों का लाभ उठाकर अंग्रेजों का कंपनी शासन भी अपना विस्तार कर रहे थे. यदि मराठे शेष भारतीय शक्तियों में सर्वाधिक शक्तिशाली थे तो अंग्रेज भी शेष यूरोपीय कंपनियों में सर्वश्रेष्ठ थे. अतः दोनों में संघर्ष निश्चित था. 18वीं शताब्दी के अंतिम दशक में आंग्ल–मराठा संघर्ष का सूत्रपात हुआ, जो प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय आंग्ल–मराठा संघर्ष के रूप में घटित हुआ और अंततः अंग्रेज विजयी रहे फलस्वरूप अंग्रेजों ने मराठा राज्यों का विलयअपने राज्य में कर लिया.

1-2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको अंग्रेज और मराठों के बीच हुए संघर्ष से अवगत कराना है. सर्वप्रथम हम संक्षिप्त चर्चा मराठा साम्राज्य के बारे में एवं पेशवा की भूमिका पर करेंगे. इसके बाद ब्रिटिशदृमराठा संघर्ष के कारण, परिस्थितियां, संघर्ष के विभिन्न युद्ध, उनके परिणामस्वरूप उभरने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे. अंत में आंग्ल–मराठा संघर्ष में माराठा साम्राज्य के पतन एवं हार के लिए उत्तरदायी कारकों की भी समीक्षा करेंगे.

1-3 मराठा साम्राज्यः एक संक्षिप्त विवरण

मराठा राज्य की औपचारिक स्थापना 14 जून 1674 को शिवाजी के राज्याभिषेक से माना जाता है. शिवाजी (1627–80) अपने संपूर्ण शासन काल में मुगलों से संघर्ष करते रहे. 1680 में उनकी मृत्यु के पश्चात पुत्र शंभाजी उत्तराधिकारी बने परंतु 1689 में मुगल सेना ने शंभाजी को पराजित कर मार डाला तथा उनके पुत्र साहूजी को कैद कर लिया. मुगलों के विरूद्ध चलने वाले मराठा संघर्ष का नेतृत्व शंभाजी के सौतेले भाई राजाराम (1689–1700) ने जारी रखा. राजाराम के 1700 ई. में मृत्यु के उपरांत उनकी विधवा पत्नी ताराबाई ने अपने चार वर्षीय पुत्र को शिवाजी द्वितीय के नाम सेगद्दी पर बैठाया परन्तु 1707 में मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल शासन की शिथिलताओं का लाभ मराठों को मिला तथा इसी वर्ष साहूजी तो मुगल कैद से रिहा कर दिया गया और वह मराठवाड़ा लौट आया. उसने सत्ता पर अपना अधिकार जताया.

सत्ता के विवाद के कारण वर्तमान शासक शिवाजी द्वितीय एवं उनकी संरक्षिका ताराबाई तथा साहूजी के मध्य खेड़ा का युद्ध हुआ. इस युद्ध में साहूजी को बालाजी विश्वनाथ की सहायता से विजय मिली तथा साहूजी मराठा शासक (1707–1748) बने तथा शिवाजी द्वितीय एवं ताराबाई को एक समझौते के तहत कोल्हापुर दे दिया गया. साहूजी ने 1713 में अपने सेनापति बालाजी विश्वनाथ को पेशवा (प्रधानमंत्री) नियुक्त किया. साहूजी के नेतृत्व में पेशवा की सहायता से एक नवीन मराठा साम्राज्य की स्थापना की गई.

1-4 पेशवा और मराठा साम्राज्य

मराठा शासन व्यवस्था में पेशवा नवीन साम्राज्यवाद के प्रवर्तक थे. ये औपचारिक तौर पर तो छत्रपति के प्रधानमंत्री थे परन्तु शासन की वास्तविक शक्तियां क्रमशः पूरी तरह से पेशवा में निहित होती चली गई. बालाजी विश्वनाथ के प्रयास से मुगलों और मराठों के मध्य एक समझौता हुआ. जिसमें दक्कन के 6 मुगल प्रातों में चौथ एवं सरदेशमुखी का अधिकार, मालवा एवं गुजरात में चौथ वसूली का अधिकार तथा साहूजी को महाराष्ट्र में स्वतंत्र स्थिति की मान्यता दी गई. पेशवा मराठा साम्राज्य में सत्ता और हर प्रकार के संरक्षण का स्रोत बन गया.

बालाजी विश्वनाथ की 1720 में मृत्यु के बाद उनके पुत्र बाजीराव प्रथम (1720–40) को पेशवा नियुक्त किया गया. इस तरह से पेशवा का पद भी पैतृक हो गया. बाजीराव प्रथम के नेतृत्व में मराठा शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई. उसने न केवल दक्कन में सर्वोच्चता स्थापित की अपितु दिल्ली में मुगल बादशाह तक उसने आक्रमण किया. बाजीराव प्रथम की मृत्यु के पश्चात बालाजी बाजीराव (1740–61) पेशवा नियुक्त हुए. इन्हीं के कार्यकाल में साहूजी का निधन 15 दिसंबर 1749 को हो गया. साहूजी को कोई संतान नहीं थी. अतः उन्होंने ताराबाई के पौत्र राजाराम द्वितीय को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था. जनवरी 1750 में राजाराम द्वितीय का छत्रपति के रूप में राज्याभिषेक हुआ. ताराबाई शासन पर अपना बर्चस्व चाहती थीं परन्तु पेशवा को यह स्वीकार नहीं था. अतः 1750 में राजाराम द्वितीय एवं पेशवा के बीच संगोला की संधि हुई. जिसके अनुसार मराठाछत्रपति केवल नाममात्र के शासक रह गए. जबकि वास्तविक शासन पेशवा वंशानुगत तौर पर बन गए. मराठे इतने शक्तिशाली थे कि मुगल बादशाह का निर्णय करने लगे. अवध, बंगाल, उड़ीसा, लाहौर, सरहिंद तक आक्रमण किये.

मराठों को सर्वाधिक क्षति पानीपत के तृतीय युद्ध में अहमद शाद अब्दाली के आक्रमण से हुआ. अब्दाली ने इस युद्ध में मराठों को परास्त किया. इस युद्ध में मराठों का सर्वाधिक जनक्षति हुई. प्रमुख मराठा सरदार मारे गए. इसी के बाद बालाजी बाजीराव की 23 जून 1761 को मृत्यु हो गई. उनका पुत्र माधव राव प्रथम मात्र 17 वर्ष की आयु में पेशवा बना. माधव राव पानीपत के

युद्द से हुई क्षति से आगे निकलकर पुनः एकबार मराठा साम्राज्य के प्रभाव को पुनः स्थापित करने का प्रयास कर ही रहा था कि नवंबर 1772 में क्षय रोग से उसकी मृत्यु हो गई.

1-5 आंग्ल–मराठा संघर्ष की पृष्ठभूमि

पेशवा माधव राव की मृत्यु के बाद उसका भाई नारायण राव पेशवा बना परन्तु एक वर्ष बाद ही उसके चाचा रघुनाथ राव ने उसकी हत्या करवा दी और स्वयं पेशवा का पद प्राप्त करने का प्रयास करने लगा. पेशवा पद प्राप्त करने का यही आंतरिक मतभेद एवं संघर्ष ने अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का अवसर दे दिया.

रघुनाथ राव (रघोबा) पेशवा का पद प्रप्त करने में असफल रहा क्योंकि उसपर हत्या के आरोप के कारण प्रमुख मराठा सरदार उससे नाराज थे तथा इसी बीच नारायण राव की विधवा गंगाबाई ने 18 अप्रैल 1774 को एक पुत्र को जन्म दिया. मराठा सरदारों के परिषद ने 28 मई 1774 को गंगाबाई के पुत्र को माधवराव नारायणराव द्वितीय के नाम से पेशवा स्वीकार कर लिया. अल्पायु के पेशवा माधव नारायण राव द्वितीय की सहायता के लिए मराठा सरदारों का एक 12 सदस्यीय परिषद बना. जिसे 'बाराभाई परिषद' के नाम से जाना जाता था. इस परिषद में सखा राम बापू, महादजी सिंधिया और नाना फड़नवीस जैसे प्रमुख मराठा सरदार थे. वहीं दूसरी ओर मराठा सरदारों की परिषद ने रघुनाथ राव पर हत्या की जांच की सिफारिश भी कर दी. रघुनाथ राव ने अपने जीवन को खतरे में देख अंग्रेजों की शरण ली और उनसे स्वयं को पेशवा बनाने की अपील की. इस प्रकार अब पेशवा पर को लेकर मराठों के बीच चल रहा आंतरिक संघर्ष खुलकर सामने आ गया.

1-5-1 सूरत की संधि

6 मार्च 1775 ई. में रघुनाथ राव और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के बंबई प्रेसिडेंसी के बीच एक संधि हुई. जिसे 'सूरत की संधि' के नाम से जाना जाता है. इस संधि की प्रमुख शर्तों के अनुसार –

–ईस्ट इंडिया कंपनीरघुनाथ राव को पेशवा पद प्राप्त करने में सहायता प्रदान करेगी.

–रघुनाथ राव कंपनी की बंबई प्रेसिडेंसी को बसीन, सालसेट और जम्बूसर (गुजरात) के प्रदेश देगा.

–इसके बदले रघुनाथ की सहायता के लिए 2500 अंग्रेज सैनिक पूना में रखे जाएंगे. जिसका खर्च

1.25 लाख रुपये प्रति वर्ष के हिसाब से रघुनाथ कंपनी को देगा.

–रघुनाथ राव अंग्रेजों को शामिल किए बिना कोई संधि नहीं करेगा.

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 1773 ई. में ब्रिटिश संसद में रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित होता है. जिसके माध्यम से बंबई और मद्रास प्रेसिडेंसियों पर बंगाल के गर्वनर जनरल एवं उसकी काउंसिल का नियंत्रण स्थापित किया गया. जबकि बंबई प्रेसिडेंसी ने बिना गर्वनर जनरल के अनुमति के सूरत की संधि की और मात्र पत्र लिखकर गर्वनर जनरल को इसकी सूचना भेज दी.

इस तरह मराठे के आपसी झगड़े, अंग्रेजों की महात्वाकांक्षा एवं सूरत की संधि के कारण आंग्ल–मराठा संघर्ष की नींव डाल दी. सूरत की संधि (6 मार्च 1775) के बाद बंबई की कंपनी सरकार ने रघुनाथ राव की सहायता के लिए अंग्रेज सेना भेज दी. यहीं से आंग्ल–मराठा युद्ध की शुरूआत होती है.

1-6 प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध (1775–82)

प्रथम आंग्ल–मराठा संघर्ष लगभग 7 वर्ष तक चलता है. इसकी शुरूआत 18 मई 1775 को अरास नामक जगह पर होती है, जहां मराठा एवं अंग्रेजी सेना के बीच युद्ध से होता है. जिसमें मराठे परास्त हुए और सालसेट पर अधिकार कर लिया. परंतु उसी समय बंगाल के गवर्नर जनरल की काउंसिल ने सूरत की संधि को अस्विकार करते हुएमराठों के विरूद्ध चल रहे युद्ध को बंद करने का आदेश दिया क्योंकि यह संधि रेग्यूलेटिंग एक्ट के विरूद्ध थी तथा इसके चलते कंपनी को अनावश्यक युद्ध में भाग लेना पड़ा. उसके बावजूद भी ये युद्द बंद नहीं हुआ. बंगाल काउंसिल ने कर्नल आप्टन को मराठों से बातचीत के लिए भेजा परंतु आप्टन एवं मराठों के बीच रघुनाथ राव को लेकर मतभेद हो गया. मराठे चाहते थे कि रघुनाथ राव को कंपनी उन्हें सौंप दे जबकि आप्टन इस बात पर तैयार नहीं था. साथ ही आप्टन सालसेट व बसीन पर अधिकार बनाए रखना भी चाहता था, अतः वार्ता असफल हो गई.

1-6-1–पुरंदर की संधि

प्रथम आंग्ल–मराठा संघर्ष (1775–1782) के बीच इस तरह के संधि करने के कई प्रयास हुए परंतु सफलता नहीं मिली. 1776 ई. में दोनों पक्षों ने पुरंदर में बातचीत की, जिसे पुरंदर की संधि कहा गया. इस पर संधि मराठों की ओर से सुखाराम बापू तथा ब्रिटिश की तरफ से कर्नल आप्टन अधिकृत रूप से बात कर रहे थे. इसी संधि को 'पुरंदर की संधि' कहा जाता है. इस संधि की प्रमुख शर्ते इस प्रकार थीं–

–कंपनी ने माधवराव नारायण राव द्वितीय को पेशवा और नाना फड़नवीस को उसका संरक्षक मान लिया.

–अंग्रेजों ने रघुनाथ राव (रघोबा) को युद्द में लिए समर्थन के लिए जो राशि खर्च की है. उसके लिए मराठा अंग्रेजों को 12 लाख रुपये देंगे.

–सूरत की संधि को रद्द कर दिया गया.

–मराठों ने रघोबा को 3 लाख 15 हजार रुपये वार्षिक पेंशन देना स्वीकार कर लिया.

–रघोबा कोई सेना नहीं रखेगा तथा गुजरात के कोपरगांव में जा कर रहेगा.

–कंपनी ने मराठों से सालसेट एवं बसीन जो प्राप्त किए थे, कंपनी के पास ही रहेंगे.

परंतु कुछ महीने शांति रहने के बाद दोनों पक्षों में फिर से युद्ध आरंभ हो गए. जनवरी 1779 में पूना के निकट तेलगांव में भयंकर युद्ध हुआ. जिसमें मराठा सेना ने ब्रिटिश सेना को बुरी तरह से परास्त कर दिया और अंग्रेज बड़गांव की अपमानजनक संधि करने पर मजबूर हो गए. इस संधि की शर्तों के अनुसार कंपनी रघोबा को मराठों के हवाले करेगी तथा कंपनी ने अबतक जिन मराठा प्रदेशों पर अधिकार किया था, वे मराठों को सौंप देंगे. कंपनी जब तक शर्तें न पूरा करे तब तक दो अंग्रेज अधिकारी बंधक के तौर पर मराठों की कैद में रहेंगे.

यह संधि अंग्रेजों के लिए घोर अपमानजनक थी. वारेन हेस्टिंग ने इसे स्वीकार नहीं किया तथा मराठों के खिलाफ दो अलग–अलग सेना भेज दी. जिनमें से एक का नेतृत्व कर्नल पोफम कर रहा था,वहीं दूसरी सेना का नेतृत्व कर्नल गॉडर्ड कर रहा था. जब नाना फड़नवीस को यह खबर मिली तो उसने हैदराबाद के निजाम और मैसूर के हैदर अली को अपने साथ मिलाया किंतु वारेन हेस्टिंग ने निजाम को कूटनीति से अलग कर दिया. कर्नल गॉडर्ड अहमदाबाद एवं बसीन पर अधिकार करते हुए 1780 में बड़ौदा पहुंचा और वहां से पूना की ओर प्रस्थान किया किंतु पूना के निकट मराठों ने उसे काफी क्षति पहुंचाई. इधर कर्नल पोफम अगस्त ने 1780 में ग्वालियर दुर्ग पर अधिकार कर लिया. उसके बाद सिप्री नामक स्थान पर महादजी सिंधिया ने कर्नल पोफम को बुरी तरह से परास्त किया. इधर दूसरी तरफ हैदर अली ने कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया. इसके बाद अंग्रेज निरंतर हारने लगे. जिसके कारण उनका मनोबल गिरने लगा. ऐसी परिस्थिति को देखते हुए वारेन हेस्टिंग ने एंडरसन को मराठों से संधि करने के लिए भेजा. हेस्टिंग ने एंडरसन और नान फड़नवीस को जो पत्र लिखा है, उससे स्पष्ट होता है कि हेस्टिंग संधि करने के लिए बहुत व्यग्र था.

1-6-2– सालबाई की संधि

17 मई 1782 को अंग्रेजों एवं मराठों के बीच 'सालबाई की संधि' हुई. इस संधि की प्रमुख शर्तें इस प्रकार हैं.

–अंग्रेजों ने रघोबा का साथ छोड़ने का आश्वासन दिया तथा मराठे रघोबा को 25 हजार रुपये की मासिक पेंशन देंगे.

–सालसेट तथा भड़ौच को छोड़कर कंपनी सभी अधिकृत मराठा प्रदेशों पर अपना अधिकार छोड़ने के लिए सहमत हो गई.

–कंपनी ने माधव राव नारायण राव द्वितीय को पेशवा तथा फतेह सिंह गायकवाड़ को बड़ौदा का शासक स्वीकार कर लिया.

–इस संधि के स्वीकृति के 6 महीने के भीतर मैसूर शासक हैदर अली जीते हुए प्रदेशों को लौटा देगा.

इस संधि पर महादजी सिंधिया और नाना फड़नवीस के बीच मतभेद उत्पन्न हो गए क्योंकि नाना फड़नवीस का मित्र हैदरअली अभी भी अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध मैदान में था. अतः अंग्रेजों से संधि करना हैदर अली के साथ विश्वासघात जैसा था. जब 7 दिसंबर 1782 को हैदर अली की मृत्यु हो गई, तब नाना फड़नवीस ने 20 दिसंबर 1782 को इस संधि पर हस्ताक्षर किया.

1-6-3– प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध का परिणाम

सामान्य तौर पर सालबाई की संधि की शर्तें मराठों के पक्ष में दिखाई पड़ती हैं. इसके बाद लगभग 20 वर्ष तक मराठों एवं अंग्रेजों के बीच शांति बनी रही. इस संधि से पेशवा एवं महादजी सिंधिया का महत्व बढ़ गया. यहां तक कि महादजी सिंधिया को अंग्रेजों ने आश्वासन दिया कि वो मुगल बादशाह शाह आलम के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगे. परन्तु विशेष तथ्य यह है कि इस संधि के द्वारा अंग्रेजों ने मराठे एवं मैसूर की मित्रता समाप्त कर दी. मैसूर का शासक मराठा सहायता नहीं प्राप्त कर सका. हालांकि हैदर अली के मरने के बाद भी उसके बेटे टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष को जारी रखा किंतु मराठों की ओर से उसे कोई सहायता नहीं दी गई. अंग्रेजों ने मैसूर को पराजित करके दक्षिण भारत में कंपनी का प्रभुत्व स्थापित कर दिया. अतः सालबाई के संधि के द्वारा अंग्रेजों ने अपने को भारतीय शक्ति के सामूहिक विरोध से बचा लिया तथा दूसरी तरफ भारतीय शक्ति को विभाजित करने में भी सफलता प्राप्त कर ली.

1-7 द्वितीय आंग्ल–मराठा युद्ध (1798–1805)

लार्ड वेलेजली (1798–1805)को बंगाल का गर्वनर जनरल नियुक्त किया गया. उस समय अंग्रेजों को फ्रांसीसियों से भी भय था, जो अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के विरूद्ध मदद किए थे. वेलेजली ने सहायक संधि की प्रणाली का विकास किया. जिसके माध्यम से वह समस्त भारतीय राज्यों पर कंपनी का प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था और इसी क्रम में वो मराठों को भी सहायक संधि के जाल में फंसाना चाहता था.

दूसरी तरफ पेशवा माधवराव नारायणराव द्वितीय की 1796 में मृत्यु हो गई. जिसके बाद रघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय (1796–1818) मराठा साम्राज्य का अंतिम पेशवा बना. पेशवा के उत्तराधिकार के विवाद ने पूरे मराठा साम्राज्य को ही उलझा कर रख दिया. बाजीराव द्वितीय प्रधानमंत्री नाना फड़नवीस को पसंद नहीं करता था और उससे आजादी चाहता था. इसी बीच

1800 ई. में नाना फड़नवीस की मृत्यु होगई. कहा जाता है कि नाना की मृत्यु के साथ ही मराठाओं में नेतृत्व एवं सूझबूझ समाप्त हो गया. बाजीराव द्वितीय ने खुद मराठा सरदारों के मध्य झगड़े और षड़यंत्र करवाए परंतु खुद भी उसमें उलझ गया. दौलत राव सिंधिया एवं जसवंत होल्कर दोनों ही पूना में अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे. जिसमें सिंधिया सफल रहा तथा बाजीराव द्वितीय के समर्थन में आ गया. यशवंत राव होल्कर ने मल्हाव राव होल्कर की हत्या करके उसके पुत्र को बंदी बना लिया. 1801 में पेशवा बाजीराव द्वितीय ने यशवंत राव होल्कर के भाई की हत्या कर दी. यशवंत राव ने पूना पर आक्रमण कर दिया तथा सिंधिया और पेशवा को संयुक्त रूप से पराजित किया और पूना को अपने अधिकार में ले लिया. उसने अमृतराव के बेटे विनायक राव को पूना की गद्दी पर बैठा दिया. बाजीराव द्वितीय ने भागकर बेसिन में शरण ली और अंग्रेजों से मदद की गुहार लगाई. 13 दिसंबर को पेशवा बाजीराव और अंग्रेजों के बीच एक सहायक संधि हुई. जिसे 'बेसिन की संधि' के नाम से जाना जाता है. विदित हो कि इससे पूर्व कंपनी हैदराबाद के निजाम से सहायक संधि कर चुकी थी तथा मैसूर को पूरी तरह से शक्तिहीन कर चुकी थी. इस संधि के अनुसार पेशवा निम्न शर्तों को मानने के लिए तैयार हो गए थे–

–6000 अंग्रेजी सैनिक पेशवा की सहायता के लिए तैनात किए जाएंगे, जिसका खर्च 26 लाख रुपये प्रति वर्ष था. पेशवा इतने ही वार्षिक आय का भूभाग अंग्रेजों के देगा. साथ ही अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजिडेंट नियुक्त करेगा.

–पेशवा अंग्रेजों की अनुमति के बिना किसी भी अन्य यूरोपियन को अपने राज्य में न तो नियुक्त करेगा और न ही रहने की आज्ञा देगा.

–पेशवा हैदराबाद के निजाम एवं बड़ौदा के गायकवाड़ के साथ अपने विवादों में कंपनी की मध्यस्थता स्वीकार करेगा.

–पेशवा सूरत से अपना अधिकार छोड़ देगा.

–पेशवा कंपनी की अनुमति के बिना किसी भी देसी राज्य के साथ युद्ध या संधि नहीं करेगा.

बेसिन की संधि के द्वारा कंपनी को मराठों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिल गया. पेशवा ने मराठों के सम्मान एवं स्वतंत्रता को कंपनी के हाथों में बंधक रख दिया. मराठों के लिए यह राष्ट्रीय अपमान से कम नहीं था. दूसरी तरफ इस संधि ने ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के लिए अनुकूल परिस्थियां उत्पन्न कर दी.

कंपनी ने बाजीराव द्वितीय को सेना के संरक्षण में पूना भेजकर गद्दी पर तो बैठा दिया परंतु मराठा सरदार इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं थे. मराठा सरदार आपस में एकता का प्रयास करने लगे. गायकवाड़ अंग्रेजों का मित्र था, इसलिए उसने अंग्रेज विरोधी संघ में शामिल होने से इंकार कर दिया परंतु सिंधिया और भोंसले एक हो गए. होल्कर भी सिंधिया से व्यक्तिगत दुश्मनी

के कारण इसमें शामिल नहीं हुआ. अतः सिंधिया और भोंसले अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध की तैयारी शुरू कर दी. उधर लार्ड वैलेजली ने एक सेना अपने भाई आर्थर वैलेजली तथा दूसरी सेना जनरल लेक के नेतृत्व में मराठों के खिलाफ भेज दी. आर्थर वैलेजली ने अहमदनगर जीतते हुए अजंता एवं एलोरा के निकट असाई नामक स्थान पर सिंधिया एवं भोंसले की संयुक्त सेना को पराजित किया फिर असीरगढ़ एवं अरगाव में भी परास्त किया. अंततः 17 दिसंबर 1803 को रघु जी भोंसले एवं अंग्रेजों के बीच गेवगांव की संधि हुई. इस संधि की शर्तों के अनुसार–

–भोंसले ने कटक एवं वर्धा नदी के तटवर्ती क्षेत्र कंपनी को दे दिए.

–अपनी सेवा से सभी विदेशियों को निकाल दिया.

–निजाम एवं पेशवा के साथ मतभेद सुलझाने के लिए कंपनी की मध्यस्थता स्वीकार करेगा.

भोंसले ने अंग्रेजों की सहयक संधि की सभी शर्तों को मान तो लिया,किंतु राज्य में कंपनी की सेना रखने की शर्त स्वीकार करने से मना कर दिया. वैलेजली ने भी इसपर ज्यादा दबाव नहीं दिया.

उधर जनरल लेक ने उत्तर भारत के अलीगढ़ से अपनी विजय शुरू करते हुए दिल्ली और फिर भरतपुर पर आक्रमण किया. भरतपुर के बाद आगरा पर आक्रमण किया और अंत में लासवाड़ी नामक जगह पर सिंधिया को हराकर 30 दिसंबर 1803 ई. को सिंधिया से'सूरजी–अर्जनगांव की संधि' की. इस संधि की शर्तों के अनुसार–

–गंगा एवं यमुना के बीच का क्षेत्र कंपनी को दे दिया गया.

–बुंदेलखंड और अहमदनगर का दुर्ग, भड़ौच, अजंता घाट भी कंपनी को दे दिए गए.

–अपने दरबार में ब्रिटिश रेजिडेंट रखना स्वीकार कर लिया.

–सिंधिया को 6 बटालियन की सेना दी जाएगी. जिसका खर्च उसके द्वारा दिए गए भू–क्षेत्र से प्राप्त राजस्व से पूरा किया जाएगा.

–अंग्रेजों की अनुमति के बिना किसी भी यूरोपियन को नहीं रखा जाएगा.

इस प्रकार सिंधिया और भोंसले ने भी बेसिन की संधि को स्वीकार कर लिया. इस सफलता से उत्साहित कंपनी ने घोषणा कर दी कि युद्ध के प्रत्येक उद्देश्य को प्राप्त कर लिया गया है. परंतु होल्कर, जो अंत तक इन घटनाओं से अलग था. उसने अप्रैल 1804 ई. में राजस्थान में कंपनी के मित्र राज्यों पर आक्रमण कर दिया. हालांकि शुरूआत में होल्कर को कुछ आरंभिक सफलता मिली परंतु बाद में वैलेजली के निर्देश पर आर्थर वैलेजली के नेतृत्व में दक्षिण से तथा कर्नल मेर के नेतृत्व में गुजरात की ओर से होल्कर के राज्यों पर आक्रमण किया गया. बाद में एक और सेना कर्नल मान्सन के नेतृत्व में राजपूताने की ओर से भेजी गई और अंततः होल्कर को पराजित होना पड़ा. 25 दिसंबर 1805 को 'राजपुर घाट संधि' करनी पड़ी. इस संधि की शर्तों के अनुसार–

–चंबल नदी के उत्तरी प्रदेश, बुंदेलखंड छोड़ दिए गए.

–अपनी सेवा में किसी यूरोपियन की नियुक्ति नहीं करना.

–इसके बदले मालवा और मेवाड़ पर होल्कर का अधिकार मान लिया गया.

इस प्रकार से यह द्वितीय आंग्ल–मराठा संघर्ष का अंत था. लार्ड वैलेजली भी वापस इंग्लैंड चले गए और उनकी जगह सर जार्ज बार्लो को भेजा गया. इस युद्ध के अंत तक कंपनी भारत में सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में स्थापित हो गई.

1-8 तृतीय आंग्ल–मराठा युद्ध (1817–18)

तृतीय आंग्ल–मराठा संघर्ष की शुरूआत लार्ड हेस्टिंग्स के कार्यकाल में हुआ, जो 1813 में कंपनी का गर्वनर जनरल नियुक्त हुआ. हेस्टिंग्स ने मराठों के अनियमित सैनिक, जिनको पिण्डारी कहा जाता था, उनके खिलाफ अभियान से शुरू हुआ. पिण्डारी मालवा एवं राजस्थान के गावों में लूटपाट किया करते थे. हेस्टिंग्स के अभियान से मराठा प्रभुत्व को चुनौती मिली. हेस्टिंग्स ने भोंसले (1816), पेशवा (1817) तथा सिंधिया (1817) को बहुत अपमानजनक संधि करने के लिए बाध्य किया. इससे विवश होकर पेशवा ने विद्रोह कर दिया. सभी मराठा अपमान की आग में जल रहे थे. पेशवा ने र्किकी की रेजिडेंसी पर आक्रमण कर जला दिया परंतु अंत में पराजित हुआ और उसे पीछे हटना पड़ा. पेशवा भागकर सतारा गया परंतु वहां से भी उसे भागना पड़ा और पहले कोरेगांव और उसके बाद 20 फरवरी 1818 को आस्थी में उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा. जून 1818 में उसने आत्मसमर्पण कर दिया. इसके बाद कंपनी ने पेशवा का पद ही समाप्त कर दिया और उसके संपूर्ण राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया. पेशवा को 8 लाख रुपये वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के नजदीक बिठूर नामक स्थान पर भेज दिया गया. पेशवा के सहायक त्रिंबक जी को भी पकड़कर चुनार के किले में जीवनपर्यंत के लिए कैद रखा गया.

एक–एक करके अन्य मराठा सरदार भोंसले और होल्कर को भी युद्द में पराजित करके शक्तिहीन बना दिया गया. सिंधिया और गायकवाड़ तो युद्ध में भाग लेने का साहस तक नहीं कर सके. मराठा संघ समाप्त हो गया और उसके साथ ही भारत में अंग्रेजी शक्ति का मुकाबला करने वाली अंतिम शक्ति का भी अंत हो गया. अंग्रेजों ने नाममात्र के लिए शिवाजी के एक वंशज प्रताप सिंह को सतारा का राजा बना दिया परंतु उनमें अंग्रेजी सत्ता के विरोध का कोई साहस नहीं था.प्रिंसेप के अनुसार, " अंग्रेजी प्रभाव और सत्ता जादू की तरह भारत में फैल गई." इस प्रकार भारत की राजसत्ता के लिए अंग्रेजों से हुआ संघर्ष समाप्त हो गया.

1-9 मराठों के पतन का कारण

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत में शीघ्रता से मराठों ने प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया. मराठे संपूर्ण भारत पर शासन तो नहीं स्थापित कर सके परंतु संपूर्ण भारत उनसे आतंकित था. वे भारत के सभी भागों से चौथ और सदेशमुखी वसूलते थे. बंगाल और पंजाब के अलावा राजस्थान, अवध, हैदराबाद, कर्नाटक, मैसूर आदि के शासक उन्हें कर देते थे. गुजरात, मालवा, बुंदेलखंड, महाराष्ट्र आदि उनके अधीन थे. मुगल बादशाह तक उनके पेंशनर थे. उस समय मराठे ही भारत में सबसे शक्तिशाली माने जाते थे. मराठों की यह शक्ति जिसने पूरे भारत को रौद दिया था, अंग्रेजों के सामने कमजोर पड़ गई. प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध वारेन हेस्टिंग के समय, दूसरा आंग्ल–मराठा युद्ध लार्ड वैलेजली तथा तीसरा लार्ड हेस्टिंग्स के कार्यकाल में हुआ. तीसरे व अंतिम संघर्ष के परिणाम स्वरूप पेशवा का पद समाप्त करके कंपनी का पेंशनर बना दिया गया. मराठा राज्यों में अंग्रेजी सेनाएं नियुक्त कर दी गईं. आंतरिक व विदेश नीति कंपनी के अधिकारी तय करते थे. अतः संपूर्ण भारत में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने वाले मराठा अंग्रेजों के अधीन हो गए.

मराठा साम्राज्य के पतन को लेकर इतिहासकारों में अलग–अलग मत हैं.

जानेमाने इतिहासकार डॉक्टर तारा चंद के अनुसार 1761 ई. में हुए पानीपत के तृतीय युद्ध से बहुत पहले ही मराठों के पतन के कारण विद्यमान थे. जबकि डॉक्टर जदुनाथ सरकार ने पानीपत के तृतीय युद्द की पराजय को मराठों के पतन का कारण बताया. डॉक्टर एम.एन सेन के अनुसार मराठा साम्राज्य की प्रगति में ही उसके पतन के कारण निहित हैं. मराठों की तीव्र प्रगति ने उन्हें आपस में विभाजित कर दिया, जो उनके पतन का मुख्य कारण बना. ग्राण्ट डफ और सरदेसाई भी पानीपत के तृतीय युद्ध की पराजय को मराठों के पतन का मुख्य कारण मानते हैं. सरदेसाई के अनुसार पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु के समय से मराठों का पतन शुरू हो गया था.

आंग्ल–मराठा संघर्ष में मराठों के पराजय के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1-9-1– मराठों के आंतरिक मतभेद

मराठा साम्राज्य एक राज्य न होकर संघ राज्य था. जिसमें शक्तिशाली मराठा सरदार स्वतंत्र व्यवहार करते थे. उनमें एकता का पूर्ण अभाव था. जैसे–जैसे पेशवा कमजोर होते गए, मराठा संघ बिखरता चला गया. सिंधिया, होल्कर, गायकवाड़ और भोसले जैसे मराठा सरदार आपस में ही लड़ते रहे और जरूरत पड़ने पर एक–दूसरे के विरूद्ध अंग्रेजों की मदद लेने से भी परहेज नहीं करते थे. अतः अंग्रेजों को मराठों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने तथा उन्हें कमजोर करने का अवसर मिल गया. पूना दरबार के झगड़े का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध में भाग लिया था. अतः मराठों का पारस्परिक संघर्ष, एकता का अभाव और केंद्रीय राज्य की कमी सबसे बड़ी कमजोरी थी.

1-9-2– मराठा शासन व्यवस्था का दोष

मराठा राज्य के राजनीतिक एवं प्राशासनिक व्यवस्था में भारी दोष थे. मराठों ने कभी भी आम नागरिकों की शिक्षा, रक्षा, सामुदायिक विकास, भौतिक उन्नति का कोई प्रयत्न नहीं किया. उन्होंने जनता के एकीकरण का भी कोई प्रयास नहीं किया. उनका कार्य धन लूटना और अपनी शक्ति को स्थापित करना भर था. लूटमार एवं उत्तर भारत से प्राप्त होने वाली धन–संपत्ति ने उन्हें विलासप्रिय बना दिया था. उनके सरदारों का भी नैतिक पतन हो चुका था. जिस नागरिक समाज ने मुगल साम्रज्य से संघर्ष में विशेष भूमिका निभाई थी, आंग्ल–मराठा संघर्ष में उदासीन बने रहे.

1-9-3– राजनैतिक दूरदर्शिता का अभाव

मराठा सरदारों में राजनीतिक दूरदर्शिता का स्पष्ट अभाव दिखाई देता है. मराठों ने कभी भी पतन की ओर अग्रसर हो रहे मुगल साम्राज्य पर अपना दावा नहीं किया. वे चाहते तो मुगल बादशाह को हटाकर छत्रपति या पेशवा को भारत का सम्राट बना सकते थे. उस स्थिति में मराठों के नेतृत्व में भारत की एकता संभव थी,परंतु मराठों ने एक राजनीतिक गुट की तरह केवल मुगल बादशाह को अपनी कठपुतली बनाने में अपनी सफलता समझ ली थी. यदि मराठे दिल्ली के सम्राट बनते तो अंग्रेजों के खिलाफ सभी छत्रपों एवं राज्यों को एक साथ ला सकते थे.

1-9-4– अयोग्य नेतृत्व

किसी भी राजनैतिक व्यवस्था में उसके नेतृत्व की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है. 18वीं सदी के अंत तक महादजी सिंधिया, अहिल्याबाई होल्कर, पेशवा माधव राव, तुको जी होल्कर तथा नाना फड़नवीस जैसे योग्य मराठा सरदारों की मृत्यु हो चुकी थी. पेशवा बाजीराव द्वितीय, दौलत राव सिंधिया तथा जसवंत राव होल्कर जैसे सरदारों का नेतृत्व पूरी तरह से दुर्बल एवं स्वार्थों से भरा था. यह आपस में ही संघर्ष करते थे. इनका नैतिक रूप से पतन हो चुका था. जनता इनके लूट, कुशासन और उत्पीड़न से त्रस्त हो चुकी थी. दूसरी तरफ आंग्ल सेना के पास एलफिस्टन, माल्कम, आर्थर वैलेजली, जनरल लेक, लार्ड वैलेजली जैसा योग्य राजनीतिक एवं सैन्य नेतृत्व प्राप्त था. मराठों के अयोग्य नेता कूटनीति, कौशल एवं युद्ध क्षेत्र में अंग्रेजों के सामने ठहर नहीं पाए.

1-9-5– मराठा सैन्य व्यवस्था

आंग्ल सैन्य व्यवस्था मराठों की तुलना में अत्यधिक अनुशासित, प्रशिक्षित एवं तकनीकि रूप से सुसज्जित थी. आंग्ल सैन्य नेतृत्व भी मराठा नेतृत्व से कुशल था. दूसरा मराठों की गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को छेड़कर यूरोपियन तरीके से युद्ध करना एक भारी भूल थी. अल्फ्रेंड लायन ने अपनी

पुस्तक त्पेम ंदक म्•चंदेपवद व िठतपजपेी चवूमत पद प्दकपं में इस मत का समर्थन किया है परंतु उत्तर भारत में गुरिल्ला युद्ध प्रणाली से युद्ध नहीं हो सकता था. वास्तव में दुर्बलता का कारण यूरोपियन तरीके अपनाने के बाद उचित मात्रा में फैक्ट्रियों में हथियार का उत्पादन न होना भी था. तोपों एवं बारूद के कारखाने लगाए गए लेकिन इनमें जरूरत के हिसाब से उचित समय पर उत्पादन नहीं हुआ. मराठे यूरोपियन पद्धति एवं हथियारों के प्रयोग के लिए प्रायः फ्रांसीसियों पर निर्भर थे, जो आवश्यकता पड़ने पर काम नहीं आ सके.

1-9-6– अंग्रेजों की श्रेष्ठ कूटनीति एवं गुप्तचर व्यवस्था

अंग्रेजों की कूटनीति उत्तम श्रेणी की थी. वे युद्ध प्रारंभ करने से पहले प्रायः दूसरे राज्यों से मित्रता करके उन्हें अलग कर देते थे. साथ ही वह मराठा सरदारों के आंतरिक फूट डालने का प्रयास करते थे. वे इस प्रयास में प्रायः सफल भी रहते थे. द्वितीय एवं तृतीय मराठा युद्ध में ऐसा ही हुआ. अंग्रेज अपनी कूटनीति के कारण ही विभिन्न भारतीय शासकों को एक–दूसरे के खिलाफ संघर्ष एवं युद्ध करवाते रहे. वहीं दूसरी तरफ मराठे ये समझ ही नहीं सके कि उनके सबसे शक्तिशाली शत्रु कोई और नहीं बल्कि ये अंग्रेज ही थे. मराठे शेष भारतीय शासकों मसलन मुसलमानोंया राजपूतों को अपनी ओर मिला भी नहीं सके.

दूसरे अंग्रेजों की गुप्तचर व्यवस्था भी मराठों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ थी. वह मराठों के आंतरिक मामलों, मतभेदों की पूरी खबर रखते थे. अंग्रेजों ने मराठी भाषा का भी अध्ययन किया. कई अंग्रेज अधिकारी मराठी भाषा अच्छे से बोलते और समझते थे. जबकि मराठे अंग्रेजों की शक्ति से, नीति तथा योजना से अनजान रहते थे. इस तरह से सही और सटीक आंतरिक सूचनाएं भी अंग्रेजों के विजय में सहायक सिद्ध हुईं. जबकि मराठों के पास अंग्रेजों की इस तरह की कोई जानकारी नहीं मिल पाती थी.

अतः हम कह सकते हैं कि अंग्रेज साम्राज्यवादी विचारों से प्ररित होकर तकनीकि एवं वैज्ञानिक तरीके से अपनी शक्ति का प्रयोग करके उपनिवेश विस्तार में जुटे हुए थे, वहीं मराठे परंपरागत मध्ययुगीन विचारों में ही जकड़े हुए थे. आंग्ल–मराठा संघर्ष से पूर्व ही मराठों की निष्क्रियता और आंतरिक कमजोरी स्पष्ट थी, जो उन्हें पराजय की ओर ले जाने में सहायक सिद्ध हुई.

1-10 सारांश

इस प्रकार आपने अध्ययन किया कि सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा राज्य औरंगजेब की मृत्यु के बाद पुनः एक बार पेशवाओं ने अपने नेतृत्व में प्रभुत्व स्थापित किया. मुगलों के पतन के बाद भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य के रूप में उदय हुआ. जिसमें प्रारंभिक पेशवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही. परंतु पानीपत के तृतीय युद्ध में पराजय, पेशवा माधव राव की मृत्यु तथा मराठा सरदारों के आंतरिक मतभेद ने मराठा शक्ति को कमजोर किया. अंग्रेजों ने ऐसे अवसर का लाभ उठाते हुए अपने विस्तार हेतु मराठों पर आक्रमण किए.

प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध अंग्रेजों के पक्ष में निर्णायक नहीं रहा परंतु द्वितीय आंग्ल–मराठा युद्ध ने अंग्रेजों को महत्वपूर्ण स्थिति में ला दिया. तीसरे एवं अंतिम आंग्ल–मराठा युद्ध (1817–18) में अंग्रेजों ने मराठों को निर्णायक रूप से पराजित कर मराठा शक्ति, जो कि अंग्रेजों के लिए एक चुनौती थी, की संभावना ही समाप्त कर दिया.

नोट– निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें.

1- प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध (1775–82 ई.) में मराठा पेशवा .....थे.

2- 1775 ई. सूरत की संधि ..... और ..... के मध्य हुई थी.

3- प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध का अंत ..... की संधि के द्वारा हुआ.

4- पेशवा ..... पूना से भागकर बेसिन चला गया और अंग्रेजों से मदद मांगी.

5- प्रथम आंग्ल–मराठा युद्ध के दौरान कंपनी का गर्वनर जनरल ..... था.

6- तृतीय आंग्ल–मराठा युद्ध का तत्कालीन कारण ..... था.

7- मराठा साम्राज्य का अंतिम पेशवा ..... था.

8- गर्वनर जनरल ..... के नेतृत्व में मराठा साम्राज्य को अंग्रेजी राज्य में विलय कर लिया गया.

1-11 पारिभाषिक शब्दावली

छत्रपति– मराठा शासक की राजकीय उपाधि

पेशवा– मराठा शासन में छत्रपति का प्रधानमंत्री

गुरिल्ला युद्ध– परोक्ष युद्ध की एक तकनीक, जिसमें मराठों को महारथ हासिल थी.

पिण्डारी– मराठों के अस्थाई सैनिक

1-12 स्वमूल्यांकित प्रश्न के उत्तर

1- माधव राव द्वितीय 2- रघुनाथ राव (रघोबा) और अंग्रेज 3- सालबाई

4- बाजीराव द्वितीय 5- वारेन हेस्टिंग 6- पिण्डारियों का दमन 7- बाजीराव द्वितीय 8- लार्ड हेस्टिंग्स

1-13 संदर्भ ग्रंथ की सूची

शेखर बंदोपाध्याय–प्लासी से विभाजन तक

राम लखन शुक्ला– आधुनिक भारत का इतिहास

बीएल ग्रोवर एवं यशपाल– आधुनिक भारत का इतिहास

एलपी शर्मा– आधुनिक भारत का इतिहास

Grant Duff- History of The Marathas (2 Vols)

GS Sardesai- New History of Maratha People

सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री दृ

Stewart Gordon- The Marathas 1600-1800

GS Sardesai- Main currents of Maratha History

1-14 निबंधात्मक प्रश्न

1- 1772–1818 ई. के मध्य आंग्ल–मराठा संघर्ष की विवेचना करिए. उसके क्या परिणाम हुए.

2- आंग्ल–मराठा संघर्ष में मराठों के पराजय के क्या कारण थे.

3- द्वितीय आंग्ल–मराठा संघर्ष के कारण एवं परिणाम की विवेचना करिए.

इकाई दोः लार्ड हेस्टिंग्स और ब्रिटिश सर्वोच्चता

2-1– प्रस्तावना

2-2– उद्देश्य

2-3– लार्ड हेस्टिंग्स एवं भारतीय चुनौतियां

2-4– आंग्ल–नेपाल युद्ध

2-5– पिण्डारियों का दमन

2-6– पठानों को कंपनी के अधीन लाना

2-7– हेस्टिंग्स द्वारा मराठों पर प्रभुत्व स्थापित करना

2-7-1– पेशवा को कंपनी के अधीन लाना

2-8– राजपूत रियासतों पर प्रभुत्व स्थापित करना

2-9– मुगल सम्राट की सर्वोच्चता को चुनौती देना

2-10– प्रशासनिक सुधारों के द्वारा कंपनी को सुदृढ बनाना

2-11– सारांश

2-12– स्वमुल्यांकित प्रश्न

2-13– परिभाषिक शब्दावली

2-14– संदर्भ ग्रंथ सूची

2-15– निबंधात्मक प्रश्न

2-1–प्रस्तावना

मार्किस्व हेस्टिंग्स सन 1813 से 1823 तक ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में गवर्नर जनरल रहा. सिद्धांततः वह ' हस्तक्षेप न करने की नीति' को मानता था परन्तु अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में ही उसने अहस्तक्षेप की नीति का त्याग कर अग्रगामी तथा साम्राज्यवादी नीति का

अनुसरण कर लिया. लार्ड हेस्टिंग्स के आधिकारिक नीति को 'सर्वोच्चता की नीति' के नाम से जाना जाता है. जिसमें कंपनी सर्वोच्च थी तथा समस्त भारतीय राज्यों का शासक कंपनी के अधीन था. कंपनी की सर्वोच्चता इस नीति के तहत कंपनी राज्यों के अधिग्रहण हेतु अधिकृत थी. उसे यह अधिकार था कि यदि कोई भारतीय राज्य कंपनी के विरूद्ध षणयंत्र में संलग्न पाया जाता है तो कंपनी उस राज्य को अधिगृहित कर ले. इसके लिए कुछ संधियों के प्रवधान भी थे, परंतु हेस्टिंग्स ने कंपनी के एकतरफा हित में संधियों के प्रवधानों की उपेक्षा कर भारतीय राज्यों को अधगृहित करके उपनिवेश का विस्तार किया. इस प्रकार अपने पूर्व अधिकारियों कि योजना को आगे बढ़ाते हुए उसने भारत में कंपनी की राजनैतिक श्रेष्ठता स्थापित की.

2-2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विस्तार के क्रम में ईस्ट इंडिया कंपनी के गर्वनर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा भारत में कंपनी की राजनैतिक श्रेष्ठता एवं सर्वोच्चता स्थापित करने के नीतियों एवं प्रयासों के बारे मं अवगत कराना है. इसी इकाई के अध्ययन के बाद आप लार्ड हेस्टिंग्स के द्वारा छोटी–छोटी रियासतों को अंग्रेजी संरक्षण में लाना, पिण्डारियों के दमन तथा मराठों को कंपनी के अधीन लाने के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे. इसके अतिरिक्त हम सर्वप्रथम हेस्टिंग्स द्वारा नेपाल पर आक्रमण एवं सगौली की संधि का भी विश्लेषण करेंगे.

2-3– लार्ड हेस्टिंग्स एवं भारतीय चुनौतियां

लार्ड हेस्टिंग्स जब भारत में कंपनी का गर्वनर जनरल बनकर आया, तब भारत में कंपनी से सामने विभिन्न प्रकार की चुनौतियां थीं. मराठे एकबार पुनः अपनी शक्ति को एकजुट करने का प्रयास कर रहे थे, पिण्डारियों के लुटेरे दल मध्य भारत में खुलेआम लूटमार मचा रहे थे. सीमा पर गोरखा एवं बर्मियों के आक्रमण शुरू हो गए थे. लोगों को ऐसा प्रतीत होने लगा था कि अंग्रेज पूरी तरह से शक्तिहीन हो गए हैं. हेस्टिंग्स ने इन समस्याओं के प्रति आक्रामक रूख अपनाया. वह युद्धों के द्वारा भारत में अंग्रेजी शक्ति की श्रेष्ठता को स्थापित करने में सफल रहा. उसने मराठा शक्ति को सदा के लिए समाप्त कर दिया और पिण्डारियों को मौत के घाट उतार दिया गया. नेपाल से युद्ध करके न केवल महत्वपूर्ण भूमि प्राप्त कि बल्कि उत्तर में सीमाओं को भी सुरक्षित किया. पीई राबर्टस ने लिखा है,"उसने भारत में अंगीकृत सबसे महान और युक्तिपूर्ण सैनिक अभियान की योजना बनाई तथा उसे वास्तविकता में परिणत किया. उसने बिना असफलता के 28 युद्ध लड़े और 120 किलों को जीता. लार्ड हेस्टिंग्स का उद्देश्य भारत में अंग्रेजी प्रभुत्व और शक्ति की सर्वोच्चता स्थापित करना था. इस दृष्टि से वेलेजली के अधूरे पड़े कार्यों को पूरा किया.

2-4– आंग्ल–नेपाल युद्ध (1814–1816 ई

हेस्टिंग्स ने पहला युद्ध नेपाल के साथ किया क्योंकि जब लार्ड हेस्टिंग्स भारत आया, उस समय तक नेपाल एक शक्तिशाली राज्य के रूप में स्थापित हो चुका था. उसका विस्तार पूर्व में तीस्ता नदी से लेकर पश्चिम में सतलज नदी तक था. अतः भारत की उत्तरी सीमाओं के संपूर्ण पहाड़ी प्रदेशों पर नेपाल का आधिकार था. नेपाल ने उत्तर में चीनियों को आगे बढ़ने से रोका तो वहीं बंगाल और अवध के अनिश्चित सीमाओं का लाभ उठाकर गोरखपुर तथा बस्ती जिले प्राप्त कर लिए. अब अंग्रेजी राज्य की सीमाएं नेपाल से मिल गईं. हिमालय की तराई भाग पर अपने अधिकार को लेकर दोनों शक्तियां अपना दावा करती थीं. तराई के जो भी जिले गोरखा या अंग्रेजों,जिसके भी कब्जे में आ रहे थे. वो उसे अपने कब्जे में लेने का प्रयास कर रहा था. ऐसी स्थिति में दोनों शक्तियों के बीच युद्ध तो होना ही था.

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अंग्रेजों ने पहली बार नेपाल पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास नहीं किया था. इससे पूर्व में भी अंग्रेज अफसर गोल्डिंग के नेतृत्व में अंग्रेजों ने आक्रमण किया था, परंतु उसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली. इसके बाद 1792 ई. में एक व्यापारिक संधि के द्वारा अंग्रेजों ने नेपाल से एक व्यापारिक संधि स्थापित करने का प्रयास किया. कर्नल क्रिक पैट्रिक को दूत बनाकर काठमांडू भेजा गया परन्तु नेपाल पर ब्रिटिश प्रभुत्व नहीं कायम हुआ. 1802 ई. में कैप्टन नोक्स को रेजिडेंट ऑफिसर बनाकर नेपाल भेजा गया, परंतु इसका भी कोई विशेष लाभ नहीं मिला. इसके उपरांत लार्ड वैलेजली ने 1804 ई. में नेपाल के साथ व्यापारिक संधि को समाप्त कर दिया. नेपाल पर राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित नहीं होने के बहुत से कारण थे, जिसमें भौगोलिक परिस्थितियां भी एक थी. जिसके कारण किसी भी आक्रमाणकारी सेना को बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था. पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण मार्ग बहुत ही दुर्गम थे, जिससे बड़ी सेना सरलता से एक जगह से दूसरी जगह पर नहीं जा सकती थी.

आंग्ल–नेपाल युद्ध का तात्कालिक कारण बस्ती के उत्तर में दो जिले बुटवाल और शेरोज पर अधिकार को लेकर था. इन दोनों जिलों पर गोरखों ने अधिकार कर लिया था, बाद में अंग्रेजों ने उस पर अपना अधिकार कर लिया. मई 1814 ई. में गोरखों ने पुनः बुटवाल पर अधिकार को लेकर पुलिस चौकियों पर हमला कर दिया. लार्ड हेस्टिंग्स ने युद्ध का निर्णय लिया और अक्टूबर 1814 ई. में नेपाल के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी. लार्ड हेस्टिंग ने अलग–अलग युद्ध दल गठित कर अगल–अलग दिशाओं से आक्रमण किया. कर्नल आक्टरलोनी को सतलज नदी की तरफ से भेजा गया तथा मेजर जनरल जिलेस्पी को मेरठ से आक्टरलोनी की मदद के लिए एक सैन्य दल के साथ भेजा, जो नेपाली सेनापति अमर सिंह थापा के विरूद्ध युद्ध लड़ रहा था. दूसरा सैन्य आक्रमण मेजर जनरल मार्ले के नेतृत्व में पटना से काठमांडू की तरफ किया गया. तीसरी सैन्य टुकड़ी ने जॉन वुड के नेतृत्व में गोरखपुर की तरफ से हमला किया.

पूरे युद्ध का संचालन हेस्टिंग खुद कर रहा. अंग्रेजों ने कुटनीतिक रूप से नेपाली सेनापतियों को भी अपनी तरफ मिलाने का प्रयास किया परन्तु इसमें कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई. नेपाली गोरखों ने बहादुरी से सामना किया. मार्ले और वुड को पीछे हटना पड़ा. मेजर जनरल जिलेस्पी मारा गया परन्तु बाद में अंग्रेजों ने अपनी सेना में कुछ पहाड़ी सैनिकों को शामिल किया. जिसके कारण 1815 ई. में कर्नल निकोलस एवं गार्डनर ने कुमांयू एवं अल्मोड़ा पर अधिकार कर लिया. मई 1815 ई. में आक्टर लोनी ने गोरखों को मात देते हुए अमर सिंह थापा से मालोन का किला जीत लिया. अब तक दोनों पक्ष एक–दूसरे की सैनिक क्षमता को जान चुके थे. अतः संधि वार्ता शुरू हुई और नवंबर 1815 ई. में 'सगौली की संधि' हुई.इस संधि की शर्तों के अनुसार –

–अंग्रेजों को गढवाल, कुमांयू के जिले तथा तराई का अधिकांश क्षेत्र मिले.

–दोनों राज्यों की सीमाएं निश्चित कर दी गईं और सीमाओं पर पक्के खंभे लगा दिए गए.

–नेपाल ने सिक्किम राज्य से अपने समस्त अधिकार वापस ले लिए.

–नेपाल सरकार ने राजधानी काठमाडू में अंग्रेज रेजिडेंट ऑफिसर रखना स्वीकार कर लिया.

आंग्ल–नेपाल युद्ध में अंग्रेजों को सैन्य एवं आर्थिक दृष्टी से काफी नुकसान हुआ. इस युद्ध को लेकर लार्ड हेस्टिंग्स की काफी आलोचना हुई. परंतु इसमें संदेह नहीं की ब्रिटिश राज्य की सीमाओं का विस्तार हुआ. अंग्रेजों को शिमला, मसूरी, नैनीताल, अलमोड़ा, रानीखेत, लैंसडाउन, पौड़ी इत्यादी क्षेत्र प्राप्त हुए. सिक्किम पर से नेपाल का दावा समाप्त हो गया. अंग्रेजों ने सिक्किम के राजा से संधि कर उसे अधीन राज्य बना लिया.

सर्वाधिक महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि अब अंग्रेजी सेना को वीर लड़ाके गोरखा सैनिक प्राप्त होने लगे, जो आवश्यकता पड़ने पर विश्वसनीय सिद्ध हुए

.2-5– पिण्डारियों का दमन

पिण्डारी मध्य भारत में लूट–मार करने वाला एक समुदाय था. इनका धर्म विशेष से कोई संबंध नहीं था. इसमें हिंदू और मुसलमान दोनों थे. ये बड़े ही सुनियजित तरीके से अचानक हमला कर लूटते थे. इनका सर्वप्रथम विवरण मुगल–मराठा संघर्ष में मिलता है. सर्वप्रथम पेशवा बाजी राव प्रथम ने इनका प्रयोग अनियमित घुड़सवार के रूप में किया था. पानीपत के युद्ध के बाद पिण्डारी मालवा में बस गए तथा आवश्यकता पड़ने पर सिंधिया, होल्कर तथा निजाम के लिए सैनिक सेवा देते थे. मराठा शक्ति के कमजोर होते ही ये लोग मराठा प्रदेश में भी लूट–मार और डकैती करने लगे. क्रमशः इनके कार्य क्षेत्र में विस्तार होता जा रहा था. मैलकम ने पिण्डारियों को 'मराठा शिकारियों के साथ शिकारी कुत्तों' की संज्ञा दी है. इनका कोई स्थाई संगठन नहीं था, जो मराठा सरदार इनको संरक्षण का आश्वासन देता था, वे उसी के साथ हो जाते थे. ये प्रायः घुड़सवारी करते थे और शांतिपूर्ण गांव या नगरों पर अचानक आक्रमण कर लूटते और

भाग जाते थे. हेस्टिंग्स के भारत आने के समय मध्य भारत पिण्डारियों के अत्याचार से पीड़ित था. उनके लूटमार की सफलताओं से उनके कार्य क्षेत्र, संख्या एवं शक्ति में विस्तार होता जा रहा था. कई बार तो ये गांव और नगरों में आग तक लगा देते थे. इनको मराठा सरदारों का संरक्षण प्राप्त था. हेस्टिग्स के समय उनके प्रमुख नेता चित्तू, वासिल मुहम्मद, करीम खां और हीरू थे. उन्होंने समय–समय पर अंग्रेजों के अधीन राज्यों में भी लूटमार की. निजाम के भी राज्य में लूटमार करके वापस चले जाते थे. 1812 ई. में उन्होंने अंग्रेजों के अधीन शाहाबाद एवं मिर्जापुर जिलों में लूटपाट की. 1815–16 ई. में हैदराबाद के निजाम के क्षेत्र में इनका आतंक बढ़ गया था. 1817 ई. में इन्होंने उत्तरी सरकार में लूटमार की.

लार्ड हेस्टिंग्स को यह भी ज्ञात था कि पिण्डारियों को मराठों का संरक्षण प्राप्त है और ऐसे समय जब मराठा स्वयं भी अंग्रेजी शक्ति से मुकाबले की तैयारी कर रहे थे, तो अंग्रेजों को अच्छे से मालूम था कि पिण्डारी आंग्ल–मराठा संघर्ष में मराठों के मददगार होंगे. हेस्टिंग्स ने यह भी कुटनीतिक प्रयास किया कि पिण्डारी और मराठे एक साथ न हो पाएं. इसके लिए उसने मराठा सरदारों से संधि भी की.

हेस्टिंग्स ने कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स से अनुमति लेते हुए 1817 ई. में पिण्डारियों के विरूद्ध अभियान की शुरूआत कर दी.

सेना को दो भागों में विभाजित कर उत्तरी सेना का नेतृत्व स्वयं संभाला तथा दक्षिणी सेना का नेतृत्व सर टॉमस हिंसलोप कर रहे थे. सैनिक योजना इस तरह बनाई गई कि उत्तर एवं दक्षिण की सेनाएं एक घेरा बनाते हुए आगे बढ़ें. जिससे की पिण्डारी इस घेरे से बाहर ही न निकल पाएं. 1818 ई. के प्रारंभ तक पिण्डारियों का क्रूरता से दमन कर दिया गया. उन्हें कठोरता से मारा गया, वासिल मोहम्मद को पकड़ कर जेल में डाल दिया गया, जहां उसने आत्म हत्या कर ली. चितू जंगल में भाग गया, जहां जंगली जानवर उसे खा गए. वहीं करीम खां ने अंग्रेजों के सामने आत्मसमपर्ण कर दिया. मालकम ने लिखा है कि पिण्डारी इतनी अच्छी तरह दबा दिए गए कि कुछ ही समय में लोग उनका नाम तक भूल गए. डफ के अनुसार कुछ पिण्डारी आम जनसमूहों के साथ सम्मिलित हो गए तथा उनकी कुछ टुकड़ियां दक्कन में पेशवा से युद्ध समाप्त होने तक दिखाई देती रहीं.

2-6– पठानों को कंपनी के अधीन लाना

पिण्डारियों की तरह पठानों का भी एक संगठित समूह था, जो मुख्य रूप से राजपूताना क्षेत्र में सक्रिय था. पिण्डारी आम जनता को लूटते थे, जबकि पठान मुख्य रूप से राज्यों के बीच पारस्परिक झगड़े एवं विवादों में धन लेकर सैन्य मदद देते थे. ये सरकारों एवं शक्तिशाली सरदारों पर हमला करते एवं लूटते थे. ये अलग–अलग समय पर भिन्न–भिन्न राजपूत दलों का साथ देते थे. अमिर खां एवं मुहम्मद शाह खां के नेतृत्व में इनकी शक्ति काफी बढ़ गई थी.

1809 ई. में जोधपुर के राजा ने सिंधिया के आक्रमण को रोकने के लिए मोहम्मद शाह खां कि मदद ली थी. अमिर खां ने जयपुर के राजा जगत सिंह को जोधपुर के विरूद्ध सहायता दी. इससे पूर्व अमिर खां जसवंत राव होल्कर के साथ भी था. राजपूतों के आपसी संघर्ष का लाभ उठाकर पठान लड़ाके उनसे अधिकतम लाभ लेने की कोशिश करते. संपूर्ण राजस्थान में इनका आतंक था. इनके पास सैनिक होते थे और किसी संगठित सेना से इनका संगठन कम नहीं था. मुहम्मद शाह खां की तो 1814 ई. में मृत्यु हो गई. उसके बाद इसका मुख्य नेता अमिर खां था. हेस्टिंग्स ने चॉर्ल्स मेटकॉफ के द्वारा बातचीत शुरू की. नवंबर 1817 ई में अंग्रेजों एवं अमिर खा के मध्य संधि हो गई. इस संधि के अनुसार अमिर खां अपनी सेना समाप्त करने पर सहमत हो गया. अंग्रेजों ने होल्कर से प्राप्त भूमि को अमिर खां के पास रहने दी और साथ ही उसे टोंक का नवाब स्वीकार कर लिया. इस तरह हेस्टिंग्स ने पठानों को अंग्रेजों का मित्र बना लिया एवं होल्कर और मराठों से उन्हें अलग कर दिया. अंग्रेजों ने 1818 ई. में मंदसौर की संधि में होल्कर से अमिर खां को टोंक के नवाब होने की स्वीकृति दिलवा दी.

इस तरह हेस्टिंग्स ने पिण्डारियों के साथ–साथ पठानों के शक्तिशाली दल को समाप्त करके राजपूताना में शांति स्थापित की और साथ ही अंग्रेजों के प्रभाव में वृद्धि भी की. राजपूत सरदार पुनः अंग्रेजी संरक्षण में आ गए, जिससे मराठों को पराजित करने में आसानी हुई.

2-7– हेस्टिंग्स द्वारा मराठों पर प्रभुत्व स्थापित करना

हेस्टिंग्स का उद्देश्य भारत में कंपनी की सर्वोच्चता स्थापित करना था और यह तभी संभव था जब मराठों के राजनैतिक अस्तित्व को समाप्त कर दिया जाए. इसलिए उसने मराठों एवं पठानों को समाप्त करने की योजना बनाई. उसके बाद उसने सिंधिया, भोंसले और होल्कर के राजनैतिक अस्तित्व को समाप्त करने का प्रयास किया. उधर वैलेजली की सहायक संधि एवं पूर्व के आंग्ल–मराठा युद्धों से मराठों ने कोई सीख ली हो ऐसा प्रतीत नहीं होता. इन सबके बाद भी मराठों ने अपने शक्ति को संगठित करने का कोई सुदृढ प्रयास नहीं किया. उनमें अभी भी एकता का अभाव था, व्यक्तिगत मतभेद काफी गहरे थे. आंतरिक प्रशासन में सुधार का कोई प्रयास नहीं किया गया तथा योग्य सरदारों का अभाव था. जसवंत राव होल्कर की मृत्यु पागलपन से हुई. उसके बाद उसका बेटा मल्हाव राव द्वितीय, जो अल्पआयु था, शासक बना. शासन का वास्तविक नियंत्रण उसकी पत्नी के हाथों में था. दौलत राव सिंधिया का नियंत्रण अपने सरदारों पर ही नहीं था और न ही उसने सेना को मजबूत करने का प्रयास किया. पेशवा बाजीराव द्वितीय अपने प्रधानमंत्री त्रियंबक जी का गुलाम बना हुआ था और गायकवाड़ पूरी ईमानदारी से अंग्रेजों के साथ हुए सहायक संधि का निर्वाह कर रहा था. ऐसी स्थिति में मराठा सरदार अंग्रेजी सेना का मुकाबला करने में अक्षम थे. मराठे अपना सबसे बड़ा शत्रु अंग्रेजों का

मानते थे. वे उनसे असंतुष्ट थे और अवसर की तलाश कर रहे थे. परंतु इन सब से कोई लाभ नहीं था क्योंकि मराठों की सैनिक तैयारी ही सवालों के घेरे में थी. हेस्टिंग्स ने सर्वप्रथम मराठा सरदार रघुजी भोंसले के राज्य नागपुर में हस्क्षेप किया. रघुजी भोंसले की मार्च 1816 ई. में मृत्यु हो गई. उसके बाद उसका पुत्र परशु जी गद्दी पर बैठा. परंतु वह एक कमजोर शासक था. राजमाता बुकाबाई एवं उसके चचेरे भाई अप्पा साहिब में संरक्षक बनने का झगड़ा था. अप्पा साहब अपने को परशु जी का उत्तराधिकारी मानता था. अप्पा साहब अंग्रेजों से मदद चाहता था. अतः भोसले दरबार के मतभेदों का लाभ उठाते हुए कंपनी ने मई 1816 ई. में 'नागपुर की संधि' की. इस संधि के अनुसार 6 बटालियन घुड़सवार रेजिमेंट तथा यूरोपि तोपखाने का दस्ता नागपुर में रहेगा तथा इसके बदल में भोसले कंपनी को 7-50 लाख देना स्वीकार कर लिया. भोसले के विदेशी मामलों पर भी कंपनी का नियंत्रण स्थापित हो गया. अतः नागपुर जो एक महत्वपूर्ण मराठा केंद्र था, अब कंपनी के अधिपत्य में था. यह मराठों पर सर्वोच्चता स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था.

2-7-1– पेशवा पर नियंत्रण

भोंसले पर नियंत्रण स्थापित करने के बाद लार्ड हेस्टिंग्स ने मराठा पेशवा बाजीराव द्वितीय पर ध्यान केंद्रित किया, जो पहले तो अंग्रेजों का मित्र था, परंतु अब मराठा सरदारों में अंग्रेजों का सबसे बड़ा विरोधी बन गया था. उसने प्रधानमंत्री त्रियंबक जी के सलाह पर अपने दूत भोंसले, सिंधिया और होल्कर के पास भेजे. बाजीराव द्वितीय सभी लोगों का मिलाकर एक मराठा संघ बनाना चाहता था. इधर अंग्रेजों के मित्र गायकवाड़ ने अंग्रेजों के कहने पर अपने दूत गंगाधर शास्त्री को पूना भेजा, परंतु पूना से लौटते समय नासिक के पास गंगाधर शास्त्री की हत्या कर दी गई. अंग्रेजों का यह मानना था कि यह हत्या त्रियंबक जी ने करवाई है.

ब्रिटिश रेजिडेंट अफसर एल्फिस्टन ने पेशवा से त्रियंबक जी को सौंपने की मांग की. पेशवा ने कुछ दिनों के दबाव के बाद त्रियंबक जी को अंग्रेजों के हवाले कर दिया. अंग्रेजों ने उसे थाने के किले में कैद कर दिया परंतु त्रियंबक जी अक्टूबर 1816 में किसी प्रकार से अंग्रेजों के कैद से भाग निकला. एल्फिस्टन को यह शक था कि त्रियंबक जी बिना पेशवा के मदद के भाग नहीं सकता था. वहीं दूसरी तरफ लार्ड हेस्टिंग्स आंग्ल–नेपाल युद्द से मुक्त हो चुका था. उसने एल्फिस्टन को लिखा कि वह पेशवा से त्रियंबक जी को निश्चित समय सीमा में पुनः लौटाने की मांग करे. यदि पेशवा ऐसा न करे तो उसे शत्रु घोषित करते हुए युद्ध का एलान कर दे. 7 मई 1817 ई. को एल्फिस्टन ने पेशवा से एक महीने के भीतर त्रियंबक जी को सौंपने की मांग की. इसके साथ ही उसने रायगढ़, सिंहगढ़ और पुरंदर के किलों को जमानत के रूप में अंग्रेजों को सौंपने की भी मांग की.

इधर दूसरी ओर पेशवा मराठा संघ बनाकर अंग्रेजो के खिलाफ युद्ध की तैयारी में लगा हुआ था. उसने इस मामले में पिण्डारियों और पठानों से भी बातचीत शुरू कर दी थी. पेशवा अभी मराठा संघ का गठन कर पाया ही था कि कर्नल स्मिथ ने पूना को चारों तरफ से घेरा और किले पर कब्जा कर लया. इसके परिणामस्वरूप पेशवा ने हथियार डाल दिए. पेशवा और अंग्रेजों के बीच एक संधि हुई. जिसे 'पूना की संधि' कहा जाता है. इस संधि के अनुसार–

– मराठा संघ समाप्त हो गया और मराठों पर पेशवा का नेतृत्व भी खत्म हो गया.

– पेशवा ने त्रियंबक जी को अंग्रेजों को सौंपने का वादा किया.

– पेशवा अंग्रेज रेजिडेंट की स्वीकृती के बिना किसी भी विदेशी शक्ति से कोई संबंध नहीं रखेगा.

– पेशवा ने गायकवाड़ पर से सारे अधिकार छोड़ दिए.

– पेशवा ने अहमदनगर दुर्ग, मालवा और बुंदेलखंड पर कंपनी का अधिपत्य स्वीकार कर लिया.

इस प्रकार पहले भोंसले और अब पेशवा से संधि करके कंपनी अपनी सर्वोच्चता की ओर तेजी से अग्रसर थी और इसके बाद कंपनी का अगला लक्ष्य सिंधिया था.

सितंबर 1817 ई. में लार्ड हेस्टिंग्स एक विशाल सेना के साथ कानपुर पहुंचा तथा सिंधिया को संधि करने पर मजबूर कर दिया. अंत में कोई रास्ता न देख दौलत राव सिंधिया ने नवंबर 1817 ई. को अंग्रेजों के साथ एक अपमानजनक संधि कर ली. इस संधि को 'ग्वालियर की संधि' के नाम से जाना जाता है. इस संधि के अनुसार–

–सिंधिया ने 5000 सैनिकों का एक दल पिण्डारियों के विरूद्ध अभियान के लिए देना स्वीकार कर लिया.

–सिंधिया अपनी सेना में कोई वृद्धि नहीं करेगा.

–असीरगढ़ एवं हिंदिया के किलों को अंग्रेजों को पिण्डारियों के विरूद्ध अभियान के दौरान प्रयोग करने की छूट होगी.

–राजस्थान के रियासतों उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी आदि पर सिंधिया अपने दावे नहीं करेगा. औपचारिक रूप से सिंधिया अभी भी स्वतंत्र थे परंतु वास्तविक स्थिति काफी दयनीय थी. सभी मराठा सरदार अंग्रेजों के सामने लाचार नजर आने लगे. अलग–अलग संधियों ने सभी मराठा सरदारों को पूरी तरह से कमजोर एवं अलग–थलग कर दिया. तृतीय आंग्ल–मराठा युद्ध से पूर्व ही हेस्टिंग्स आधा युद्ध जीत चुका था. सभी मराठा सरदार अपमान के आग में जल रहे थे. अतः उन्होंने पेशवा के नेतृत्व में अंग्रेजों से टक्कर लेने का निर्णय लिया. नवंबर 1817 ई. में पेशवा ने किरकी की रेजिडेंसी पर आक्रमण करके उसे जला दिया परंतु कर्नल स्मिथ के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने उसे परास्त कर दिया और स्मिथ ने पूना पर भी अधिकार कर लिया. उधर अप्पा साहिब

भोंसले ने नागपुर में और मल्हाव राव होल्कर ने इंदौर में अंग्रेजों के खिलाफ हथियार उठा लिया. दोनों ने अंग्रेजों को कड़ी टक्कर दी लेकिन अंग्रेजी सेना ने अप्पा साहिब को सीताबर्डी के युद्ध में तथा होल्कर को महीदपुर के युद्ध में पराजित किया. पेशवा किरकी से पराजित होकर सतारा की ओर भागा और अंततः 18158 ई. के प्रारंभ में ही कोरेगांव और फिर आस्थी के मैदान में अंग्रेजों के हाथों से पराजित होना पड़ा. जून 1818 ई. में पेशवा ने अंग्रेजों के सामने समर्पण कर दिया. भोंसले जोधपुर भाग गया, जहां उसकी मृत्यु हो गई. होल्कर एवं सिंधिया ने भी हथियार डाल दिए. अंततः यह मराठों की निर्णायक हार थी.

हेंस्टिंग्स ने पेशवा का पद ही समाप्त कर दिया और बाजीराव द्वितीय को भी सत्ता से बेदखल करके कानपुर के समीप बिठुर नामक जगह पर 18 लाख वार्षिक पेंशन पर भेज दिया. सतारा की गद्दी शिवाजी के वंशज प्रताप सिंह को देकर शेष प्रदेश का अंग्रेजी राज्य में विलय कर दिया गया. होल्कर से मंदसौर की संधि जनवरी 1818 ई. में की गई.

होल्कर ने अपने यहां सहायक सेना रखना, उसका व्यय देना तथा अपनी विदेश नीति अंग्रेजों के हाथों में सौंप दी. होल्कर ने राजपूत राज्यों से अपने सारे अधिकार खत्म कर लिए तथा होल्कर को अब पेशवा से स्वतंत्रा दे दी गई. ज्ञात हो कि यह संधि पेशवा को पराजित करने से पहले ही की गई थी. इस प्रकार भोंसले और सिंधिया को भी कठोर और अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया और अब वो पूरी तरह से अंग्रेजों के नियंत्रण में थे.

इस प्रकार अंग्रेजों के द्वारा एक–एक मराठा सरदारों को पराजित करके पूर्णतः शक्तिहीन कर दिया गया. पेशवा का पद समाप्त करके मराठा संघ को भंग कर दिया गया. भोंसले, होल्कर और सिंधिया अंग्रेजों की कठपुतली बन गए. इसके साथ ही भारत में अंग्रेजों के साथ संघर्ष करने वाली अंतिम शक्ति को भी समाप्त कर दिया गया. इस तरह से हेस्टिंग्स ने मराठों को पराजित करके कंपनी की राजनैतिक सर्वोच्चता को स्थापित किया.

2-8– राजपूत रियासतों से संबंध

राजस्थान के राजपूत प्रदेश अलग–अलग मराठा सरदारों के नियंत्रण में थे और उनके कर देते थे. सर्वप्रथम लार्ड वैलेजली ने इन पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया परंतु वैलेजली के हाथ कोई खास सफलता नहीं लगी. लार्ड हेस्टिंग्स कंपनी की सर्वोच्चता की नीति के तहत इन राज्यों को कंपनी के अधिन लाना चाहता था तथा उन पर सैनिक नियंत्रण स्थापित करना चाहता था. हेस्टिंग्स ने नवंबर 1817 ई. में सिंधिया के साथ संधि की थी. इस संधि के शर्तों के अनुसार सिंधिया राजपूत राज्यों पर अपना प्रभुत्व छोड़ देगा. अतः इस राज्यों पर कंपनी का नियंत्रण हो गया. हेस्टिंग्स मराठों को अपना शत्रु मानता था. अतः उसने मराठों से राजपूत राज्यों को अलग कर मराठों को कमजोर किया. जिससे कंपनी के राज्यों का विस्तार हुआ. उसने अलग–अलग राजपूत राज्यों से अलग–अलग संधियां कीं. हेस्टिंग्स ने चार्ल्स मेटकाफ को

मारवाड, जयपुर, जोधपुर तथा उदयपुर से संधि करने के लिए अधिकृत किया. उसने जनवरी 1818 ई. में जोधपुर से संधि की. जिसके अनुसार राज्य को 1500 घुड़सवारों की एक सेना कंपनी को देना तथा जरूरत पड़ने पर और भी सैनिक देना शामिल था. इसके साथ ही कंपनी को सालाना कर के तौर पर 1 लाख आठ हजार रूपये देना भी शामिल था.

जोधपुर से संधि करने के बाद कुछ दिनों के बाद ही उदयपुर से भी कंपनी ने संधि की. उदयपुर के शासक ने अगले 5 वर्ष तक अपनी आय का आधा भाग तथा उसके बाद 3/8 भाग कंपनी को देना स्वीकार किया. अंत में जयपुर के महाराजा को भी कंपनी के साथ संधि करना पड़ा. इसके अतिरिक्त अन्य छोटी–छोटी रियासतों जैसे कोटा, बूंदी, बीकानेर, जैसलमेर, बासवाड़ा, डुंगरपुर तथा प्रतापगढ़ के साथ भी कंपनी ने संधि करके अपनी सर्वोच्चता स्थापित की.

2-9– मुगल सम्राट की सर्वोच्चता को चुनौती देना

कंपनी भारत में अब तक निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी थी परंतु भारत में अभी भी बादशाह के रूप में मुगलों का नाम आता था. गवर्नर जनरल भी मुगल सम्राट के सामने अर्जी या प्रार्थना पत्र देता था और सम्राट अभी भी कंपनी के लिए कृपापात्र जैसे शब्दों का प्रयोग करता था. गवर्नर जनरल की मुद्रा में भी "सम्राट का भृत्य"शब्द लिखे होते थे. अतः औपचारिक रूप से मुगल बादशाह के सामने कंपनी की सर्वोच्चता प्रस्थापित करने की चुनौती थी. लार्ड हेस्टिंग्स ने मुगल सम्राट से मिलने से तब तक मना कर दिया, जब तक पुराने शिष्टाचार एवं परंपरा को समाप्त कर समानता की स्थिति में न मिले. वैसे हेस्टिंग्स के कार्यकाल में तो ऐसा नहीं हो पाया परंतु इसका परिणाम यह हुआ कि हेस्टिंग्स का उत्तराधिकारी लार्ड एमहर्स्ट 1827 ई. में मुगल सम्राट से समानता के आधार पर मुलाकात की.

2-10– प्रशासनिक सुधारों के द्वारा कंपनी को सुदृढ बनाना

लार्ड हेस्टिंग्स ने प्रमुख रूप से न्याय, भू राजस्व, प्रेस एवं शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करके कंपनी को भारत में और सुदृढ करने का प्रयास किया. हेस्टिंग्स को इसके लिए टामस मुनरो, चार्ल्स मेटकाफ, एल्फिस्टन और मेलकम जैसे योग्य एवं प्रतिभाशाली प्रशासकों का सहयोग प्राप्त था.

हेस्टिंग्स ने कार्नवालिस द्वारा स्थापित न्याय प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार किए. उसने प्रत्येक थाने में एक मुंशी की नियुक्ति की, जो 64 :पये तक के मुकदमें की सुनवाई कर सकता था. प्रत्येक जनपद एवं नगर में एक सदर अमीन की नियुक्ति की गई. जिसे 150 :पये तक के मुकदमे सुनने का अधिकार था. रजिस्ट्रार को 500 :पये तक तथा जिला दीवानी अदालतों को 5000 रुपये तक के मुकदमें सुनने का अधिकार दिया गया. इसके उपर का विवाद सदर दीवानी अदालतों द्वारा

निपटारे की व्यवस्था की गई. उसी समय बंगाल में न्यायाधीश एवं दंडनायकों की पृथकता को समाप्त कर दिया तथा कलकटरों को दंड नायक को कार्य करने की अनुमति दी गई.

हेस्टिंग्स ने भू–राजस्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए व बंगाल में लागू स्थाई बंदोबस्त व्यवस्था का विस्तार कर आगरा एवं पंजाब के क्षेत्रों में लागू करना चाहता था परंतु कंपनी के निदेशक मंडल से इसकी स्वीकृती नहीं मिली. अतः पंजाब व आगरा के क्षेत्र में महालवाड़ी व्यवस्था लागू की गई. जिसमें गांव के सम्मिलित समूह को इकाई मानकर उसके मुखिया के द्वारा लगान वसूली की व्यवस्था की गई. इसी समय टामस मुनरो जो मद्रास का गवर्नर था, मालाबार, कन्नड, कोयंबटूर, मदुरै, डिंडीगुल में रैय्यतवाड़ी व्यवस्था लागू किया. जिसमें कंपनी सीधे किसानों से लगान वसूल करती थी. हेस्टिंग्स ने 1822 ई. में बंगाल काशतकारी अधिनियम पारित किया. जिसके द्वारा किसानों के हितों की सुरक्षा की गई. इस अधिनियम में यह निश्चित किया गया कि यदि किसान अपना लगान देते रहते हैं तो उन्हें जमीन से विस्थापित नहीं किया जाएगा. अल्फिस्टन जो पूना का गवर्नर था, उसने पेशवा से प्राप्त भूमि पर महालवाड़ी एव रैय्यतवाड़ी व्यवस्था का मिश्रित रूप लागू किया. इस व्यवस्था में 'पाटिल' समुदाय को महत्वपूर्ण दायित्व प्रदान किया गया.

हेस्टिंग्स ने शिक्षा एवं प्रेस के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण प्रयास किया. उसने बंगाल में वर्नाक्यूलर स्कूल स्थापित करवाए. इसी से प्रेरित होकर बंबई और मद्रास में भी स्कूल खोले गए. उसने कलकत्ता के पास में अंग्रेजी शिक्षा के लिए कॉलेज की स्थापना करवाई. हेस्टिंग्स ने प्रेस लगाए प्रतिबंध को 1818 ई. में एक कानून के द्वारा समाप्त कर दिया. परंतु समाचार पत्रों के प्रकाशन हेतु दिशा–निर्देश के रूप में कुछ नियम बनाए गए.

2-11– सारांश

लार्ड हेस्टिंग्स का कार्यकाल ब्रिटिश भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है. भारत में आगमन के समय वह 60 वर्ष का था, परंतु अपने अदम्य साहस एवं कूटनीतिक सफलता के कारण भारत पर कंपनी के प्रभुत्व को स्थापित करने में सफल रहा. मुगल साम्राज्य के अवशेष पर जो भारतीय शक्तियां राजनीतिक साम्राज्य स्थापित करने का स्वपन देख रहे थे. वे अब ब्रिटिश अधिपत्य को स्वीकार कर चुके थे. नेपाल को अपनी सीमा बता दी गई थी. जबकि मराठा शक्ति को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया था. राजपूत राज्य भी कंपनी की सर्वोच्चता स्वीकार कर चुके थे. अब ब्रिटिश प्रभुत्व उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तथा पूर्व में ब्रम्हपुत्र नदी से लेकर पश्चिम में सतलज नदी तक विस्तृत हो गया.

यद्यपि हेस्टिंग्स लार्ड वैलेजली की नीतियों का कटु आलोचक था, परंतु वैलेजली के अधूरे साम्राज्य विस्तार के कार्य को उसी ने पूरा किया. उसने 28 युद्ध लड़े तथा 120 किलों को जीता और भारत में निर्विवाद रूप से कंपनी को एक सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्थापित करने में

सफलता पाई. जो भी संभावित शक्तियां अंग्रेजों के लिए चुनौती बन सकती थीं, उन्हें कुचल दिया गया. इसके अतिरिक्त एक कुशल प्रशासक के रूप में भी उसने शासन के विभिन्न क्षेत्रों न्यायिक एवं भू–राजस्व के क्षेत्र में सुधार की. शिक्षा तथा प्रेस के क्षेत्र में भी हेस्टिंग्स का उल्लेखनीय योगदान है. महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इन कार्यों में सहयोग के लिए हेस्टिंग्स के पास सर टामस मुनरो, सर जान मेलकम, एल्फिस्टन और मेटकाफ जैसे योग्य एवं प्रतिभाशाली सहयोगी थे. पीई राबर्ट्स के अनुसार लार्ड हेस्टिंग्स एक चतुर प्रशासक, बहुत इमानदार तथा कड़ा परिश्रमी शासक था. वह व्यक्तियों का पारखी था तथा उसका नाम संभवतः सबसे विशिष्ठ गवर्नर जनरलों में से एक ही चरण नीचे माना जाना चाहिए. जेएस मिल का मानना है कि जिस योजना की नींव क्वाइव ने रखी तथा उसे वारेन हेस्टिंग एवं वैलेजली ने कार्यान्वित किया. उसे पूर्ण करने का श्रेय लार्ड हेस्टिंग्स को जाता है. लार्ड हेस्टिंग्स के कार्य की प्रमुख सफलता यह थी कि भारत में कंपनी की सर्वश्रेष्ठता स्थापित हो गई.

2-12– स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट– निम्नलिखित में रिक्त स्थानों की प्रश्नों पूर्ति करें.

1- आंग्ल–नेपाल युद्ध के समय बंगाल के गवर्नर जनरल –––––––––––– थे.

2- गवर्नर जनरल ––––––––––––––––––––––– ने मुगल सम्राट से समानता के आधार पर मिलने की शर्त रखी थी.

3- गवर्नर जनरल ––––––––––––––––– जो प्रथम बार मुगल सम्राट से समानता के आधार पर मिला.

4- बंगाल काश्तकारी अधिनियम ––––––––––––––––––– में पारित किया गया.

5- ––––––––––––––––– ने रैय्यतवाड़ी व्यवस्था की शुरूआत की.

6- लार्ड हेस्टिंग्स के नेतृत्व में ––––––––––––––––– आंग्ल–मराठा युद्ध हुआ.

2-13– पारिभाषिक शब्दावली

गोरखा– नेपाल में रहने वाली एक जाति

रैय्यत– किसान

अमीन– राजस्व विभाग का कर्मचारी

दीवानी– अर्थ एवं भूमि से संबंधित मामले

दण्डनायक– न्यायाधीश

बंदोबस्त– भूमि से संबंधित व्यवस्था

भृत्य– सेवक

स्वमूल्यांकित प्रश्न के उत्तर

1- लार्ड हेस्टिंग्स

2- लार्ड हेस्टिंग्स

3- लार्ड एमहर्स्ट (1827)

4- 1822 ई.

5- टामस मुनरो

6- तृतीय

2-14– संदर्भ ग्रंथ की सूची

शेखर बंदोपाध्याय– प्लासी से विभाजन तक

राम लखन शुक्ला– आधुनिक भारत का इतिहास

बीएल ग्रोवर एवं यशपाल– आधुनिक भारत का इतिहास

एलपी शर्मा– आधुनिक भारत का इतिहास

M S Mehta – Lord Hastings and The Indian States

P E Roberts- History of British India

Stewart Gordon- The Marathas 1600-1800

G S Sardesai- Main currents of Maratha History

Grant Duff- History of The Marathas (2 Vols)

G S Sardesai- New History of Maratha People

2-15– निबंधात्मक प्रश्न

1-लार्ड हेस्टिंग्स ने वैलेजली के अधूरे कार्यों को पूरा कर दिया. क्या आप इस विचार से सहमत हैं.

2-आंग्ल–नेपाल युद्ध के कारण एवं परिणाम के विवेचना करिए.

3-लार्ड हेस्टिंग्स ने भारत में कंपनी की सर्वोच्चता की नीति को सफल बनाने के लिए क्या–क्या प्रयास किए. व्याख्या करिए.

इकाई तीनः विलियम बैंटिक

3-1 प्रस्तावना

3-2 उद्देश्य

3-3 आर्थिक सुधार

3-4 प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार

3-5 शैक्षणिक एवं सामाजिक सुधार

3-5-1 शिक्षा में सुधार

3-5-2 सामाजिक सुधार

3-6 भारतीय रियासतों के प्रति नीति

3-7 समाचार पत्रों के प्रति नीति

3-8 सारांश

3-9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

3-10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3-11 निबंधात्मक प्रश्न

3-1 प्रस्तावना

विलियम केवेंडिश बैंटिक को लार्ड एम्हर्स्ट के बाद बंगाल का गवर्नर जनरल (1828–35) बनाया गया. 1833 ई. के चार्टर एक्ट के द्वारा उसे भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया. उसने अपने जीवन की शुरूआत ब्रिटिश सेना से किया और शीघ्र ही लेफ्टिनेंट कर्नल के पद पर पहुंच गया. 1796 ई. में वह ब्रिटिश संसद का सदस्य बना. उसने फ्रांस के विरूद्ध सिसली (इटली) में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व भी किया. उसे 1803 ई. में मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया था परंतु 1806 ई. में वैल्लोर में सैनिकों पर धार्मिक चिन्ह जैसे तिलक लगाने या दाढ़ी रखने पर

लगे प्रतिबंध के कारण उपजे सैनिक विद्रोह के कारण कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने उसे अचानक वापस बुला लिया. 1828 ई. में उसे पुनः गवर्नर जनरल बनाकर भारत वापस भेजा.

विलियम बैंटिक एक उदारवादी व्यक्ति था. वह मिल और बेल्थम के उपयोगितावादी विचारों से प्रभावित था. जब बैंटिक भारत आया उस समय उसके पूर्ववर्ती लार्ड हेस्टिंग्स एवं लार्ड एमहर्स्ट के लगातार युद्धों के कारण कंपनी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी. वहीं दूसरी तरफ भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का काफी विस्तार हो चुका था. इसलिए उसने भारत में सुधार एवं शांति का शासन स्थापित करने का प्रयास किया. 1828 ई. में उसने भारत की जो स्थिति देखी, उससे उसने सभी क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता महसूस की. उसने कंपनी के आर्थिक सुधार पर तो ध्यान दिया ही साथ ही उसने कंपनी के पुराने प्रचलित कानून व्यवस्था एवं प्राशानिक दोषों को समाप्त करने का निर्णय लिया. उसने समाज में प्रचलित कुरीतियों के विरूद्ध कानून बनाए. उसने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके भारत के नैतिक एवं बौद्धिक जीवन को प्रभावित किया. न्यायिक सुधार के अलावा उसने समाचार पत्रों के स्वतंत्रता के बारे में श्रेष्ठ भावनाएं व्यक्त कीं.

उसने सरकारी सेवाओं में भेदभाव की नीति को समाप्त करने का प्रयास किया.

भारतीय रियासतों के प्रति उसने अहस्तक्षेप की नीति अपनाई. राज्यों के आंतरिक मामलों में उसने यथा संभव हस्तक्षेप नहीं किया और संभवतः युद्धों को टालने का प्रयास किया. अतः बैंटिक को एक सुधारवादी प्रशासक भी कहा जाता है.

बैंटिक ने नए कानून बनाकर या सैनिकों द्वारा लोगों को कुचलकर ही नहीं बल्कि नैतिक व सामाजिक स्थिति में आंतरिक प्रगति करके, व्यय में कटौती करके, उपयोगी शिक्षा को प्रोत्साहित करके, न्याय प्रशासन में व्यापक सुधार करके तथा उदारवादी विचारधारा अपनाकर एक सुदारवादी प्रशासक की छवि स्थापित करने में सफल रहा.

उसने भारत में शासन को उदारवादी बनाने या राजनैतिक स्वतंत्रा देने का कोई ऐसा प्रयत्न नहीं किया. उसके सुधारों का उद्देश्य कंपनी की स्थिति और शासन को सुदृढ करने के लिए था परंतु परोक्ष रूप से इसका लाभ भारतीयों को भी मिला.

3-2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भारत में लार्ड विलियम बैंटिक के गवर्नर जनरल के रूप में किए गए विभिन्न सुधारों एवं नीतियों से आपको अवगत कराना है. इस इकाई के अन्तर्गत आप बैंटिक के निम्नलिखित प्रयासों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे.

- आर्थिक सुधार
- प्राशासनिक एवं न्यायिक सुधार
- शैक्षणिक एवं सामाजिक सुधार

- भारतीय रियासतों के प्रति नीति
- सरकारी सेवाओं में सुधार
- समाचार पत्रों के प्रति नीति

3-3 आर्थिक सुधार

जब विलियम बैंटिक भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ, उस समय कंपनी की स्थिति अच्छी नहीं थी. लार्ड हेस्टिंग्स और लार्ड एमहर्स्ट के लगातार युद्ध के कारण कंपनी पर आर्थिक दबाव बहुत ज्यादा बढ गया था. नेपाल युद्ध, तृतीय मराठा युद्ध, वर्मा का प्रथम युद्ध तथा पिंडारियों के विरूद्ध कार्यवाही ने कंपनी के कोष को रिक्त कर दिया था. जब बैंटिक भारत आया तो कंपनी का बजट घाटे में चल रहा था. आय कम और खर्च अधिक की नीति ने कंपनी को प्रति वर्ष 1 करोड़ रूपए का घाटा देना शुरू कर दिया था. आर्थिक घाटे से मुक्ति पाने के लिए बैंटिक ने आय में वृद्धि एवं खर्च में कटौती का प्रयास किया. बर्मा में युद्ध के कारण कंपनी की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी. उसका सामना करने के लिए उसने सबसे पहले सेना में छटनी की. बैंटिक ने सेना को घटाने का काम अपनी बदनामी को ध्यान में रखते हुए किया. बैंटिक से पहले के गवर्नरों ने भी व्यय को कम करने का प्रयत्न किया था परंतु वो सभी इसमें असफल रहे थे. बैंटिक ने कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के आदेश से नवंबर 1828 ई. में आदेश जारी किया. जिसके द्वारा कलकत्ता के 400 मील के क्षेत्रों में नियुक्त होने पर सैनिक भत्तों में 50 फीसदी तक की कटौती की गई. इसी प्रकार असैनिक भत्ते भी कम कर दिए गए. सिर्फ वेतन और भत्तों में कटौती करके 1]20]000 पाउंड की वार्षिक बचत की गई. नस्लीय भेदभाव के कारण भारतीयों को सेना एवं न्यायालयों में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था. बैंटिक ने यह अनुभव किया कि भारतवासियों की छोटे महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की जानी चाहिए. इस कार्य के दो लाभ हुए. एक तो पढ़े–लिखे कंपनी के प्रशासन में कार्य करने के योग्य हो गए, जो उसी पद पर किसी युरोपियन से कम वेतन पर कार्य करने को तैयार थे. दूसरे इससे कंपनी के खर्च में भारी बचत हुई. बैंटिक ने अदालतों के खर्च को भी कम कर दिया तथा अनेक व्यर्थ अदालतें बंद कर दीं. उसने भारतीयों को सदर अमीन तक के पदों पर नियुक्त किया.

उसने ऐसे समस्त भूमि पर कर लगाया, जो भारतीय राजाओं द्वारा अपने नजदीकी व्यक्तियों को उपहार में या फिर मंदिरों को दिए गए थे और लगान मुक्त थे. इस तरह की सारी भूमि को जब्त की गई, जिसपर किसी का अधिकार प्रमाणित नहीं किया जा सकता था. इस कदम से भी कंपनी के आय में वृद्धी हुई. बैंटिक ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में भूमि कर संग्रहण की व्यवस्था में सुधार किया. उसे पश्चिमोत्तर प्रांत (आगरा एवं अवध का वह भाग जो अवध राज्य

से प्राप्त किया गया था.) में मार्टिन बर्ड की देखरेख में भूमि का माप व लगान व्यवस्था में सुधार किया गया. इसके अतिरिक्त उसने मलक्का के उपनिवेश के शासन पर अभी तक काफी खर्च हो रहा था. उसने ज्यादा वेतन पाने वाले अंग्रेजों के स्थान पर यथासंभव कम वेतन पर भारतीयों को नियुक्त कर व्यय में कमी की.

अंग्रेज भारत से अफीम चीन ले जाकर बेचते थे. चीनी नागरिक इस मादक पदार्थ का अधिक प्रयोग करते थे. मध्य भारत से अफीम कराची और वहां से पुर्तगाली जहाजों से चीन को निर्यात होती था. बैंटिक ने इस लंबे तरीके को समाप्त कर मालवा से सीधे बंबई बंदरगाह पर भेजने की व्यवस्था की तथा वहां से चीन को आपूर्ति होने लगी. अतः अफीम ले जाने में होने वाले व्यय में काफी कमी आई. मध्यस्थ और ठेकेदार समाप्त हो गए जिससे उसके मुल्य में काफी कमी आई और ज्यादा मात्रा में निर्यात करके अधिक लाभ कमाया गया.

इस प्रकार विलियम बैंटिक ने विभिन्न क्षेत्रों में सुधार किए. जब वह 1828 ई. में गवर्नर जनरल के रूप में भारत आया. उस समय कंपनी को 1 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष का घाटा हो रहा था किंतु 1835 ई. में उसने कंपनी को 2 करोड़ प्रतिवर्ष लाभ की स्थिति में पहुंचा दिया.

3-4 प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार

भारत में अंग्रेजी शासन का एक प्रमुख उद्देश्य कानून व्यवस्था स्थापित करके ब्रिटिश शासन को मजबूत बनाना था. इसी उद्देश्य के तहत ब्रिटिश सरकार ने 1833 ई. के चार्टर अधिनियम के द्वारा पहली बार गवर्नर जनरल के पद को अधिकार देकर उसके महत्व को स्थापित किया गया. अब बंगाल का गवर्नर जनरल भारत का गवर्नर जनरल बन गया तथा उसे भारत के सभी ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों के लिए कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया. यह कानून अंग्रेज, भारतीय, विदेशी तथा सभी कंपनी कर्मचारियों पर लागू होंगे. प्रांतीय सरकारें पूर्णतया गवर्नर जनरल एवं उसके काउंसिल के नियंत्रण में होंगे. उसकी सहायता के लिए काउंसिल में एक नये सदस्य की नियुक्ति की गई, जिसका कार्य पूर्णतया वैधानिक था. विधि विधान की भूमिका रखने वाले इस सदस्य, लार्ड मैकाले ने बैंटिक के साथ प्रशासनिक नियमों एवं शिक्षा नीति में सुधार के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा की.

लार्ड कार्नवालिस के बाद भारत में प्रशासनिक एवं न्याय व्यवस्था पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया. कार्नवालिस जहां तक संभव था, प्राशासनिक पदों पर अंग्रेजों को ही नियुक्त करने की नीति का पालन करता था. कार्नवालिस भारतीयों को भ्रष्ट एवं इमानदारी से कार्य करने में असमर्थ बताता था, जबकि कंपनी यूरोपियन अधिकारी काफी भ्रष्ट थे. यही कारण था कि बैंटिक ने इस व्यवस्था को आर्थिक एवं न्याय की दृष्टि से उपयुक्त नहीं माना. 1833 ई. के चार्टर एक्ट की धारा 87 के अनुसार– 'योग्यता ही सेवा का आधार' को सम्मिलित किया गया और

सिद्धांततः यह स्वीकार किया गया कि अब जाति, धर्म, रंग, जन्म एवं वंश के आधार पर किसी भी व्यक्ति को कंपनी की सेवाओं से वंचित नहीं किया जाएगा. इस प्रकार बैंटिक ने प्रशासन में भारतीयों की नियुक्ति करके आर्थिक एवं सामाजिक लाभ प्राप्त करने में मदद की. बैंटिक की इन नीतियों ने भारतीयों के लिए वृहद अवसर प्रदान किए.

बैंटिक के प्रशासकीय नेतृत्व ने 1833 के चार्टर अधिनियम द्वारा पहली बार सिविल सर्विस में प्रतियोगिता के द्वारा नियुक्ति का सिद्धांत आया. अभी तक इसपद पर केवल मनोनयन होता था. परंतु यह प्रतियोगिता बहुत सीमित अर्थों में थी. आवश्यक पदों पर चार गुना प्रत्याशियों का मनोनयन कर इनके मध्य प्रतियोगिता परीक्षा आयोजित की जाती थी. इसमें से एक चौथाई लोगों को अंतिम रूप से सिविल सर्विस के लिए चुना जाता था.

बैंटिक ने जिले को पूर्ण रूप से कलक्टर के नियन्त्रण में दे दिया. मैजिस्ट्रेट एवं पुलिस अधीक्षक भी कलक्टर के अधीन कर दिए गये. कलक्टर एवं तहसीलदार के बीच डिप्टी कलक्टर की नियुक्ति होने लगी तथा अनुभवी भारतीयों को भी इस पद पर नियुक्त किया जाने लगा. बैंटिक ने स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल प्रशासन को ढालने के लिए, स्थानीय समस्याओं की भारतीयों को बेहतर समझ तथा प्रशासन में होने वाले खर्च के कारण भारतीयों की प्रशासन में भागीदारी को सार्वजनिक तौर पर स्वीकार किया. इसे न्याय एवं नैतिकता का आवरण देकर निचले पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया जाने लगा.

बैंटिक ने न्यायिक सुधार के तहत कार्नवालिस द्वारा प्रारंभ किए गए प्रांतीय अपीलीय न्यायालय तथा सर्किट न्यायालय को समाप्त कर दिया क्योंकि इनमें न्याय महंगा था और कार्य प्रणाली सही नहीं होने के कारण समय का व्यय बहुत ज्यादा होता था. उसने राजस्व तथा सर्किट कार्यों के लिए कमिश्नर नियुक्त किए. बैंटिक ने बंद न्यायालयों का कार्य मजिस्ट्रेट तथा कलेक्टरों को दे दिया. 1831 ई. में एक आदेश द्वारा जिला तथा नगर अदालतों में प्रतिष्ठित भारतीयों की नियुक्ति की अनुमति प्रदान की. भारतीयों को 300 रुपए तक के मुकदमें सुनने का अधिकार था. आधुनिक उत्तर प्रदेश के लिए इलाहाबाद में एक सदर दीवानी अदालत और एक सदर निजामत अदालत की स्थापना की गई ताकि यहां के लोगों को कलकत्ता नहीं जाना पड़े. 1832 ई. के एक कानून के द्वारा बंगाल में ज्यूरी पद्धती को प्रारंभ किया गया. यूरोपियन न्यायधीशों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे स्थानीय पंचायतों को मुकदमा भेजकर आवश्यक जांच–पड़ताल करवाए तथा उक्त सूचना के आधार पर न्याय करें. बैंटिक ने अदालती भाषा के रूप में प्रयोग में लाए जाने वाली फारसी को छोड़कर लोगों को अपनी प्रादेशिक भाषा में मुकदमा पेश करने की स्वतंत्रता दे दी. इससे अदालतों का कार्य लोगों के लिए आसान हो गया. बैंटिक ने 1833 ई. में लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया. जिसने भारतीय दंड संहिता और सैनिक एवं असैनिक कानूनी नियमों का संकलन किया.जिसे संपूर्ण

ब्रिटिश भारत में प्रत्येक भारतीय पर जातिगत या सामाजिक भेदभाव के बिना समान रूप से लागू किया गया. सिद्धांत के तौर पर यह क़ानून एवं न्याय के शासन की बात थी परन्तु समानता के इस सिद्धांत से यूरोपवासी मुक्त थे. उनके लिए अलग कानून और न्यायालय थे. महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस न्यायिक सुधार से न्याय बहुत महंगा हो गया तथा साधारण व्यक्ति की पहुंच से बाहर हो गया. अब अदालतों में लोगों को अदालती शुल्क देना पड़ता था. कानून साधारण व्यक्ति की समझ से परे था. अतः वकील भी रखना पड़ता था, इससे सामान्य व्यक्ति के खर्च में वृद्धि हुई. इस सुधार की एक उपलब्धि यह थी कि इससे भारत में न्यायिक एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ.

3-5 शैक्षिक एवं सामाजिक सुधार

बैंटिक का काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा एवं सामाजिक सुधार था. निःसंदेह कंपनी को आर्थिक घाटे से उबारने के लिए छोटी नौकरियों पर भारतीयों को लेने की आवश्यकता थी, जिससे कंपनी के व्यय में कमी आए. यदि भारतीय शिक्षित होंगे तो यह काम और आसान होगा साथ ही साथ अंग्रेजी सभ्यता का प्रसार कर अंग्रेजी शासन को सुदृढ बनाया जा सकता है. एलफिंस्टन ने 1825 ई. में ही कहा था कि सामाजिक सुधार का सबसे प्रभावशाली मार्ग शिक्षा है. अतः शिक्षा एवं सामाजिक सुधार उसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है.

3-5-1 शिक्षा में सुधार

1813 ई. के चार्टर एक्ट में यह निश्चित किया गया था कि कंपनी प्रतिवर्ष एक लाख रुपया भारतीयों की शिक्षा के लिए व्यय करेगी परंतु बैंटिक के भारत आने तक इस तरह का कोई प्रयास नहीं किया गया. 1823 ई. में भी भारत में शिक्षा के विकास के लिए 'जनरल कमेटी ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन' गठित की गई परंतु इस कमेटी के ज्यादातर सदस्यप्राच्यवादी शिक्षा के पक्ष में थे. 1833 के चार्टर अधिनियम में शिक्षा पर खर्च को एक लाख रुपये से बढ़ाकर 10 लाख रुपये प्रतिवर्ष कर दिया गया.बैंटिक ने भारतीयों के शिक्षा के लिए कदम उठाने का निर्णय किया. सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि इस धन को किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की जाए? भारतीयों के प्राचीन ग्रंथों, पाठशालाओं, मकतबों पर धन व्यय किया जाएगा या पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आधार पर स्कूल, कालेज खोला जाए. एक विवाद शिक्षा के माध्यम को लेकर भी था. शिक्षा का माध्यम संस्कृत एवं फारसी हो या फिर अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए ?

इन प्रश्न के निराकरण के लिए लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में बैंटिक ने 'सार्वजनिक शिक्षा समिति'के नाम से एक समिति बनाई परंतु इस समिति के सदस्यों के बीच गहरे मतभेद थे. एक वर्ग जिसका नेतृत्व विल्सन और प्रिंसेप बंधु कर रहे थे. प्राच्य विद्या (भारतीय शिक्षा) का समर्थन

कर रहा था जबकि दूसरा वर्ग जिसका नेतृत्व ट्रेवेलियन कर रहे थे, पाश्चात्य शिक्षा (आंग्ल शिक्षा) का समर्थन कर रहे थे और उन्हें राजाराम मोहन राय जैसे उदारवादियों का समर्थन भी प्राप्त था. अंत में मैकाले ने 2 फरवरी 1835 ई. को अपने प्रसिद्ध स्मरण पत्र में अपने विचारों को प्रस्तुत किया. इस विख्यात वाद–विवाद में मैकाले ने अंग्रेजी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान को भारत में लाने का निर्णय किया तथा अंग्रेजी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रयास किया. उसने अपने विवरण में भारत के आयुर्वेद विज्ञान, गणित, ज्योतिष, इतिहास तथा भूगोल की खिल्ली उड़ाई और कहा," क्या हमें यह मित्था धर्म से संबंधित इतिहास, गणित, ज्योतिष और आयुर्वेद पढ़ाना है."उसने कहा कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शिक्षा का सर्वथा अभाव है और ज्ञान की दृष्टी से वे बहुत निम्न श्रेणी की है. मैकाले ने कहा," यूरोप के अच्छे पुस्तकालय की आलमारी का केवल एक भाग ही भारत और अरब के समस्त साहित्य के बराबर है." अपने प्रस्तावों में मैकाले की यह योजना थी कि इस शिक्षा व्यवस्था के द्वारा एक ऐसा वर्ग उत्पन्न होगा जो रंग तथा रक्त से तो भारतीय होगा परंतु प्रवृत्ति, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि से अंग्रेज हो. अतः मैकाले के समर्थन के कारण 7 मार्च 1835 ई. को अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम एवं पाश्चात्य शिक्षा को भारतीय शिक्षा व्यवस्था के आधार पर स्वीकार कर लिया गया. यहीं से भारत में अंग्रेजी शिक्षा की शुरूआत हुई. 1835 ई. में ही कलकत्ता में एक मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई.

बैंटिक द्वारा 1835 ई. में घोषित प्रस्ताव के अनुसार राजभाषा के रूप में फ़ारसी का स्थान अंग्रेजी को दिया गया.अंग्रेजी पुस्तक का प्रकाशन निःशुल्क कर दिया गया ताकि कम से कम कीमत पर लोगो को उपलब्ध हो. अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जाने लगी, जबकि प्राच्य विद्या के लिए अब वित्तीय सहायता नहीं दी जाएगी.

अतः स्पष्ट है कि मैकाले ब्रिटेन और अंग्रेजी शिक्षा का भक्त था. कंपनी को शिक्षित क्लर्कों की आवश्यकता थी. मैकाले का यह मानना था कि पाश्चात्य शिक्षा द्वारा भारतीय सभ्यता एवं विचारों को प्रभावित करके, भारत में अंग्रेजी शासन, संस्कृत एवं धर्म की सुरक्षा तथा विस्तार में सहजता होगी. मैकाले का उद्देश्य जो भी था परंतु यह स्पष्ट था कि उसका उद्देश्य कम से कम भारतीय समाज का हित तो नहीं था.इस अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था ने व्यापक जन शिक्षा के महत्व की उपेक्षा की. इस व्यवस्था के तहत कुछ गिने–चुने लोगों को ही शिक्षित किया जाना था. ऐसा माना गया कि इन गिने–चुने लोगों द्वारा धीरे–धीरे सामान्य जन समुदाय तक शिक्षा का प्रसार होगा. परन्तु या व्यावहारिक रूप से असफल रहा. समाज का व्यापक समुदाय बुनियादी शिक्षा के वंचित रहा. अतः उद्देश्य आम जनता को शिक्षित करना नहीं अपितु औपनिवेशिक प्रशासन के हितों की पुष्टि करना था.परंतु इस निर्णय से भारत को जो लाभ हुए उसका वर्णन करना कठिन

है. इसने राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया और आज भी यह देश की सरकारी भाषा बनी हुई है.

3-5-2 सामाजिक सुधार

बैंटिक ने सामाजिक सुधारों के अंतर्गत पुरानी प्रचलित कुरीतियों को जड़ से समाप्त करने का प्रयास किया. इसके साथ ही भारत में सामाजिक सुधारों के लिए मजबूत एवं सफल रास्ता तैयार किया. समाज में सति प्रथा, शिशु वध, नर बलि, ठगी प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियां समाज एवं देश को कलंकित कर रही थीं. इससे पूर्व किसी भी गवर्नर जनरल ने सामाजिक समास्याओं को इतने दृढता से निपटाने का प्रयास नहीं किया था क्योंकि गवर्नर जनरल भारत की सामाजिक परंपराओं में हस्तक्षेप करना कंपनी के हितों में नहीं मानते थे परंतु बैंटिक ने इसकी परवाह न करते हुए इन कुरीतियों को समाप्त करने का साहसिक कदम उठाया. बैंटिक ने सबसे पहला प्रयास सती प्रथा को समाप्त करने के लिए किया. सती प्रथा एक ऐसी अमानवीय एवं क्रूर प्रथा थी, जिसमें स्त्री पति की मृत्यु के बाद स्वयं को उसके शव के साथ जला कर मर जाती थी.हिंदू परंपरा में ऐसा माना जाता है कि स्त्री–पुरूष का संबंध शाश्वत एवं जन्मान्तर काहै. संभवतः कई बार स्त्रियां स्वेच्छा से चिता में जलती थीं परंतु कई बार सामाजिक असम्मान, रिश्तेदारों का भय और ईर्ष्या आदि के कारण जलने को बाध्य कर दिया जाता था. अनेकों बार मादक द्रव्य पिलाकर अचेत करके पति की चिता में बल पूर्वक फेंक दिया जाता था. 1795 ई. में कॉलब्रुक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि सती प्रथा वैदिक परंपरा का हिस्सा नहीं है. कार्नवालिस के कार्यकाल में कुछ कलक्टरों ने सती प्रथा को रोकने का प्रयास किया. परंतु उन्हें निर्देश था कि दमन की बजाय आग्रह एवं बातचीत की नीति अपनाई जाए. विलियम कैरे काफी सर्वेक्षण एवं अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि हिंदू धर्म में सती प्रथा कहीं से भी आवश्यक नहीं है. उसने वेलेजली से इस पर रोक लगाने की मांग की थी. 1819 एवं 1821 ई. में सुप्रीम कोर्ट के न्यायिक अधिकारियों द्वाराइस प्रथा पर रोक लगाने की मांग की गई. लार्ड हेस्टिंग्स के समक्ष भी इस पर रोक लगाने का प्रस्ताव था. परन्तु जन असंतोष एवं धार्मिक उन्माद के भय से वह पीछे हट गया. इससे पूर्व में भी अकबर, जहांगीर, गुरु रामदास, मराठे, पेशवा तथा गोवा के पुर्तगाली शासकों ने भी इस अमानवीय प्रथा को रोकने का प्रयास किया.तत्कालीन समय में राजा राम मोहन राय, देवेंद्र नाथ टैगोर जैसे उदारवादियों ने भी सती प्रथा का विरोध करा प्रारंभ कर दिया तथा इस पर रोक लगाने की मांग की. राजा राम मोहन राय के नेतृत्व में बंगाली बुद्धिजीवियों के एक वर्ग ने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए आन्दोलन खड़ा कर दिया. उन्होंने इस प्रथा को समाप्त करने के लिए सरकार के पास ज्ञापन भेजा तथा रुढ़िवादियों के तर्कों का खंडन किया. उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध

जनमत तैयार करने के लिए पर्चे निकाले, समाचार पत्रों में लेख लिखे. समाचार–दर्पण एवं बंग दूत जैसे प्रगतिशील समाचार पत्रों ने भी इस अभियान का समर्थन किया.

भारत और ब्रिटेन में सती प्रथा पर रोक लगाने की इस मुहिम के बावजूद भी इंग्लैंड की सरकार इसमें हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थी. उन्होंने स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बैंटिक को निर्णय लेने के लिए अधिकृत किया.बैंटिक ने सती से संबंधित तथ्यों को एकत्रित कर उनका अध्ययन किया साथ ही धार्मिक ग्रंथों, हिंदू कानूनों के अंतर्गत स्त्री के अधिकारों का पूरा अध्ययन किया. उसने न्यायाधिशों, पुलिस अधिकारियों तथा सैनिक अधिकारियों से भी चर्चा की तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस प्रथा पर रोक लगाने से विद्रोह की कोई संभावना नहीं है. दिसंबर 1829 ई. में नियम 17 द्वारा विधवाओं को जलाना अवैध घोषित कर दिया गया. इसको प्रेरणा देने वाले लोग भी हत्या के दोषी पाए जाएंगे, प्रारंभ में यह कानून केवल बंगाल प्रेसिडेंसी में लागू हुआ परंतु 1830 ई. में इसे बंबई एवं मद्रास प्रेसिडेंसी में भी लागू कर दिया गया. जैसा कि रूढीवादी लोग पहले से यह आशंका जता रहे थे कि इसपर रोक से अव्यवस्था एवं विद्रोह फैल जाएगा, गलत निकला. कुछ रूढीवादियों ने इस कानून के विरूद्ध लंदन में प्रिवी कांउसिल में अपील भी की परंतु दूसरी तरफ भारतीय उदारवादियों का समूह राजा राम मोहन राय एवं देवेंद्र नाथ टैगोर के नेतृत्व में इस कानून के समर्थन में खड़े रहे. उन्होंने बैंटिक तथा ब्रिटिश सम्राट को पत्र लिखकर आभार प्रगट किया. वूलजले हेग ने लिखा है कि ' यह कंपनी सरकार द्वारा भारत की सामाजिक तथा धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप करने का अत्यंत साहसिक कदम था. '

भारतीय समाज में अनेक जगहों पर देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नर बलि दिए जाने की प्रथा का कुछ विशेष वर्ग में प्रचलन था. इसी प्रकार राजपूत राज्यों में सम्मान की रक्षा के लिए लड़कियों को जन्म लेते ही मार दिया जाता था. बैंटिक ने इस बाल हत्या एवं नर बली की अमानवीय प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर समाप्त करने का प्रयास किया.

भारत में ठगी प्रथा के आतंक से व्यापार एवं यात्रा सुरक्षित नहीं था. ठग डाकूओं एवं हत्यारों का ऐसा समूह था, जो धोखा देकर व्यक्तियों को लूट लेते थे और हत्या कर देते थे. ठगों के लिए 'फांसीगर'शब्दों का प्रयोग किया गया है क्योंकि वो रूमाल के फंदे से शिकार का गला घोंटकर हत्या कर धन–संपदा लूट लेते थे. ये अवध से लेकर हैदराबाद, राजपूताना तथा बुंदेलखंड में सक्रिय थे. मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत में शक्तिशालि केंद्रीय प्राशासनिक व्यवस्था तथा पुलिस व्यवस्था लगभग समाप्त हो गई थी. छोटी–छोटी रियासतें इन समस्याओं से लड़ने में अक्षम सिद्ध हो रहे थे. जबकि ठग लोग समूहों में संगंठित हो रहे थे तथा इनकी संख्या बढ़ती जा रही थी. इसमें हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग शामिल थे. परंतु वास्तव में ये लोग काली या दुर्गा के उपासक थे और प्रायः व्यक्ति का शिकार सिर काटकर

देवी को बली के रूप में चढ़ाते थे. ठगों का दल पूर्ण रूपेण संगठित था, कुछ लोग यात्रियों के मुखबिरी या भेदिये का काम करते, कुछ गला घोंटने में निपुण होते तथा कुछ कब्र खोदकर मृतक को तुरंत ठिकाने लगे देते ताकि कोई साक्ष्य न रहे. ठगों का अनुशासन काफी कठोर था. इसलिए इनके असफल होने की संभावना नहीं के बराबर थी.

सती के प्रश्न पर समाज में मतभेद भी थे, परंतु ठगी के प्रश्न पर जनता कंपनी सरकार के साथ खड़ी थी. विलियम बैंटिक ने कर्नल विलियम स्लीमैन को एक विशाल सेना देकर योजनाबद्ध ढंग से ठगों को समाप्त करने का दायित्व सौंपा. स्थानीय रियासतों को भी इस अभियान में शामिल किया गया. उसनें 1500 ठगों को पकड़ा, जिन्हें आजीवन कारावास या मृत्युदंड दिया गया. कुछ को आजीवन निर्वासित कर दिया गया. सतत प्रयासों के उपरांत 1837 ई. के पश्चात संगठित रूप में ठगों का अंत कर दिया गया और इस प्रकार जनता ने इस आतंक से राहत की सांस ली.

3-6 भारतीय रियासतों के प्रति नीति

विलियम बैंटिक ने भारतीय रियासतों के संबंध में हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाई. 1829 ई. में हैदराबाद के निजाम सिंकदर शाह की मृत्यु के बाद नाजिरूद्दौला निजाम बना. उसने कुछ ब्रिटिश अधिकारियों को राज्य से हटाने की प्रार्थना की. बैंटिक ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली. जयपुर में रानी तथा उसके प्रेमी को फांसी दे दी गई थी,इससे उपजे विवाद के कारण ब्रिटिश रेजिडेंट पर आक्रमण किया गया. ऐसी परिस्थिति के बाद भी बैंटिक ने अहस्तक्षेप की नीति अपनाई. इसी प्रकार भोपाल में सिकंदर बेगम ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली. स्थिति अत्यंत उलझी हुई थी फिर भी बैंटिक तटस्थ रहा. उसने जोधपुर, बूंदी और कोटा में भी तटस्थता की नीति का ही पालन किया. यद्यपि वहां हस्तक्षेप करने के पर्याप्त कारण मौजूद थे.

बैंटिक ने मैसूर, कुर्ग तथा कछाड़ की रियासतों को तटस्थता की नीति के विपरीत जाकर कंपनी शासन में मिला लिया क्योंकि इन राज्यों में भारी अव्यवस्था थी. मैसूर में राजा के कुशासन से प्रजा तंग थी. अतः प्रजा के हित में बैंटिक ने शासन व्यवस्था अपने हाथ में ले ली. कुर्ग का शासक पागल हो गया था उसने राजपरिवार के प्रत्येक पुरूष सदस्य को मार डाला तथा प्रजा पर भी अत्याचार करता था. बार–बार चेतावनी के बाद भी जब राजा ने स्वयं में सुधार नहीं किया तो बैंटिक ने उसके विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी. बैंटिक ने महाराजा रणजीत सिंह से 1831 ई. में इस उद्देश्य से मित्रता स्थापित की ताकि रूस के आक्रमण के समय एक–दूसरे को सहयोग दिया जा सके. बैंटिक का रणजीत सिंह से मिलना एक ऐतिहासिक घटना थी. इस प्रकार बैंटिक ने अपने शासनकाल में कंपनी के उपनिवेशों में स्थिति को मजबूत बनाया और भारतीय शासकों के साथ शातिपूर्ण संबंध बनाए.

3-7 समाचार पत्रों के प्रति नीति

समाचार पत्रों के प्रति भी बैंटिक ने उदारता की नीति अपनाई. वह इस बात में विश्वास करता था कि समाचार पत्र असंतोष से रक्षा का अभिद्वार हैं. उसे पूर्व विश्वास था कि कर्मचारियों या लोगों की भावनाएं सार्वजनिक रूप से व्यक्त करने से वास्तविक तथ्य सामने आएंगे और राज्य विद्रोह जैसी स्थिति से बच सकता है परंतु सैनिक भत्ता बंद करने के पश्चात उसने इसकी आलोचना पर रोक लगा दी. भारतीय एवं यूरोपिय पत्रकारों ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की तो उसने इस विषय में कानून बनाने का आश्वासन दिया. जिससे निष्पक्ष पत्रकारों को संरक्षण मिल सके. बैंटिक को मार्च 1835 ई. में स्वास्थ्य कारणों से त्यागपत्र देना पड़ा और समाचार पत्रों से समाप्त करने का श्रेय उसके उत्तराधिकारी चार्ल्स मेटकाफ को प्राप्त हुआ.

3-8 सारांश

बैंटिक का सात वर्षों का शासनकाल भारत में सुधारों का युग था. बैंटिक ने युद्धों को तिलांजलि देकर सुधारों के द्वारा जिस तरह से कंपनी की स्थिति को सुदृढ किया. वह सराहनीय है. बैंटिक संभवतः भारत का एकमात्र गवर्नर जनरल था, जिसने यह स्वीकार किया कि बारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव शक्ति पर नहीं वरन जनसमर्थन और जनसहभागिता पर होनी चाहिए. इसने जनकल्याण को भारत में कंपनी का प्रमुख कार्य माना. उसने बारत में जो सुधार किए, उससे रूढीवादी परंपराओं पर एक कठोर प्रहार हुआ. उसने आर्थिक मितव्ययता एवं पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के द्वारा एक नए अध्याय की शुरूआत की. पी ई राबट्र्स ने लिखा है किनिःसंदेह वह प्रथम गवर्नर जनरल था, जो प्रत्यक्ष रूप से इस सिद्धांत का अनुसरण करता था कि प्रजा की हित उसका मुख्य ही नहीं, संभवतः अंग्रेजों का भारत में प्रथम कर्तव्य है. आर सी दत्त ने उसके कार्यों को संक्षेप में इस प्रकार वर्णित किया है. 'विलियम बैंटिक के साथ वर्षों का शासन शांति, अल्प व्यय तथा सुधार का युग था. उसने ईस्ट इंडिया कंपनी के उपनिवेशों में शांति स्थापित की तथा भारतीय शासकों के साथ शांतिपूर्वक रहा. उसने सार्वजनिक ऋण को घटा दिया, वार्षिक व्यय को कम कर दिया तथा कंपनी को लाभ की स्थिति में पहुंचा दिया.'मैकाले ने तो उसकी अद्वितिय प्रशंसा की है. प्राशासनिक एवं सामाजिक सुधारों के कारण बैंटिक का नाम भारतीय इतिहास में दिर्घकाल तक याद किया जाएगा.

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1- ब्रिटिश भारत का प्रथम गवर्नर जनरल ..... था.

2- 1829 ई. में सती प्रथा को नियम.....के तहत अवैध घोषित किया गया.

3- भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रवर्तक.....को माना जाता है.

4- भारत में पाश्चात्य शिक्षा.....के काल में प्रारंभ हुई.

5- ठगी प्रथा का अंत करने का दायित्व बैंटिक ने.....को सौंपा.

6- भारतीय उदारवादी नेता.....जिन्होंने बैंटिक के सुधारों का समर्थन किया.

7- विलियम बैंटिक को 1803 ई. में ..... का गवर्नर बनाया गया.

3-9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1- लार्ड विलियम बैंटिक

2- 17

3- लार्ड मैकाले

4- विलियम बैंटिक

5- कर्नल विलियम स्लीमैन

6- राजा राम मोहन राय

7- मद्रास

3-10 संदर्भ ग्रंथ सूची

P.E. Roberts: History of British India

J. Rosehli: Lord William Bentick

Sekhar BandyoPadhyay: From Plassey to Partition

वी. एल. ग्रोवरः आधुनिक भारत का इतिहास

एल.पी. शर्माः आधुनिक भारत

3-11 निबंधात्मक प्रश्न

1- विलियम बैंटिक के आर्थिक, प्रशासकीय और न्यायिक सुधारों का वर्णन कीजिये.

2- 'विलियम बैंटिक एक उदार गवर्नर जनरल था' इस कथन के आधार पर बैंटिक के शैक्षिक एवं सामाजिक सुधारों का वर्णन कीजिये.

3- विलियम बैंटिक के सुधारों का मूल्यांकन कीजिये.